RNI No. MPHIN/2008/25073 डाक प्रेषण : प्रतिमाह की 7 तारीख डाक पंजीयन क्रमांक मालवा डिवीजन/324/2016-2018

AISECT GROUP OF UNIVERSITIES
India's Leading Higher Education Group
CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

The AISECT Group of Universities is India's leading higher education group whose mission is to establish world-class and affordable universities at locations that are in dire need of quality higher education. The Group's core ideology across all its higher education endeavors has been to groom its students into responsible, proficient and ethical professionals. With over three decades of unparalleled experience in skill development and job placement, the Group offers its students immense opportunities through its extensive industry linkages and expertise in entrepreneur development.

Awards & Accolades
Most Innovative University of Central India by News 18
RNTU awarded Madhya Pradesh Gaurav Samman 2018
ASSOCHAM INDIA Excellence in Education, Training & Development Award 2018
World Education Summit 2017 (Dubai)
World Education Summit 2016 (Dubai)
World Education Summit 2015 Award
NIELIT Award 2014
ASSOCHAM Excellence in Education Award 2014

32 Skill Courses in these skill-based universities
9 Centres of Excellence and Skills housed in the universities
15 International & 30 National Level collaborations
Huge in-house funding to promote research
State of Art Studio and Centre for e-Learning
Students from 23 states and 10 countries
Where aspirations become achievements!
First to establish IoT Lab by Frugal and Intel, Cloud Computing Lab by Microsoft
Established Niti Aayog's prestigious Atal Incubation Centre
Over 1000 papers and 50 books published by faculty and students
Project Unnat Bharat awarded by MHRD
Excellent Hostel facility, canteen and sports facilities of International standard
Publication of 2 UGC Approved Copernicus Indexed Journals
A pool of 400+employers

Exclusive Campus Radio Channel 90.4
Microsoft Ed-Vantage Platinum Partnership Microsoft

Global University Linkages
• ICE WaRM (Australia) • University of SIGEN (Germany) • NCTU (Taiwan) • Rensselaer Polytechnic Institute (USA) • KAIST (South Korea) • KYIV University (Ukraine) • Tribhuvan University (Nepal) • Benaka Biotechnologies Inc. (USA) • Moi University Eldoret (Kenya)

Our Universities
DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY — Chhattisgarh, Bilaspur — AN AISECT GROUP UNIVERSITY
Rabindranath TAGORE UNIVERSITY — MADHYA PRADESH, BHOPAL (Formerly known as AISECT University) — AN AISECT GROUP UNIVERSITY
AISECT UNIVERSITY — JHARKHAND, HAZARIBAG — AN AISECT GROUP UNIVERSITY — Recognized by : UGC
DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY — Bihar, Vaishali — AN AISECT GROUP UNIVERSITY — Recognized by : UGC
DR. C.V. RAMAN UNIVERSITY — Madhya Pradesh, Khandwa — AN AISECT GROUP UNIVERSITY

AISECT Group of Universities Headquarters :
RNTU Campus, Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph.: 0755-6766100, 6766113
Tel: +91-755-2499657, 3293214/16/72, 3207080, Fax: +91-755-2429096, Email: aisect@aisect.org, Web: www.aisect.org
For more information, call: 09893350135, 09993233374, 09113342042, 09827948482

प्रेषक : मुकेश वर्मा (प्रधान संपादक)
'समावर्तन' (हिन्दी मासिक)
माधवी, 129, दशहरा मैदान
उज्जैन (म.प्र.) 456 010

पुस्त–प्रेष्य

यहां पते चिपकाएं

स्वामी, प्रकाशक और मुद्रक अजय भट्टाचार्य द्वारा आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन से मुद्रित एवं माधवी 129, दशहरा मैदान, उज्जैन से प्रकाशित। सम्पादक : श्रीराम दवे।

अनवरत प्रकाशन का ग्यारहवाँ वर्ष
128 वाँ अंक

ISSN - 2348-8638

समावर्तन

मासिक पत्रिका

वर्ष 11 ■ अंक 08 ■ पूर्णांक 128 ■ नवम्बर 2018 ■ ₹ 60/ –(व्यक्ति) ₹ 150/ –(संस्था)

मनोराग-14
(चिन्तन केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तंभ)

मनोभूमि : रमेश दवे
कहानी की कहानी : अवधारणा और संरचना : मालती शर्मा
श्रुति : महेन्द्र शर्मा
उर्दू शायरी में वेदान्त और गंगाजमनी तहज़ीब : राकेश भारतीय

अभिमुख : रमेश दवे
अनन्तिम : मुकेश वर्मा
मेरा नमन : अजय भट्टाचार्य
रेखांकित : गणेश गनी की कविताएँ
चयन : निरंजन श्रोत्रिय

प्रतिश्रुति : 'दस्तावेज' पत्रिका पर विशेष धारावाहिक आलेख : अभिषेक कुमार गौड़
विवेचन : 'कथा मध्यप्रदेश' खण्ड छः - छबिलकुमार मेहेर
लघुकथाएँ : योगेन्द्रनाथ शुक्ल, कोमल वाधवानी

कविताएँ : राजकुमार कुम्भज, दिनेश श्रीवास्तव
समकाल-कथाकाल : रजनी मोरवाल की कहानी : साथिन
चयन : मुकेश वर्मा
प्रथम पृष्ठ, वीक्षा, साहित्यिक हलचल

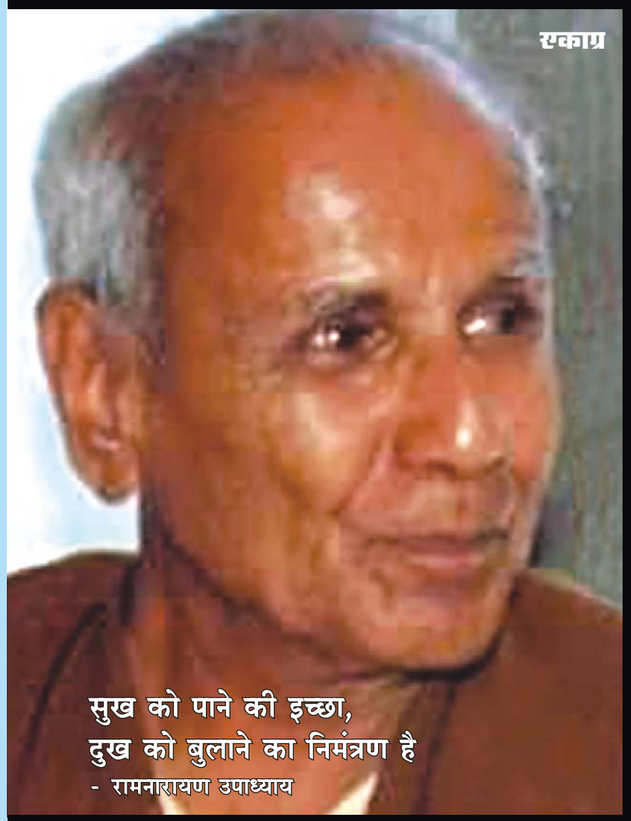

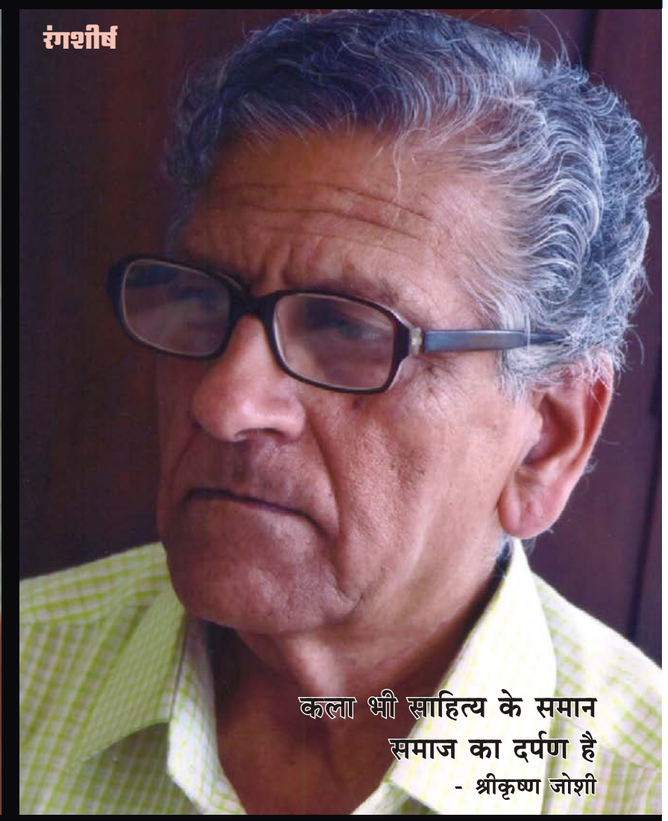

ISSN - 2348-8638

वर्ष 11 ■ अंक 08 ■ पूर्णांक 128 ■ नवम्बर 2018 ■ रू. 60/- (व्यक्ति) रू. 150/- (संस्था)

समावर्तन

मासिक पत्रिका

केन्द्रीय हिन्दी निदेशालय, नयीदिल्ली द्वारा मान्यता प्राप्त
दुष्यंत कुमार स्मारक पाण्डुलिपि संग्रहालय भोपाल द्वारा कमलेश्वर पुरस्कार वर्ष -2010
महाराष्ट्र राज्य हिन्दी साहित्य अकादमी द्वारा मान्यता प्राप्त

सम्पादक मण्डल

संस्थापक : सम्पादन समन्वयक
प्रभातकुमार भट्टाचार्य, उज्जैन

अध्यक्ष : सम्पादक मण्डल
रमेश दवे, भोपाल
मो. 94065 23071

निदेशक प्रबन्धन
रमेश सोनी, इन्दौर
मो. 99264 97611

प्रधान सम्पादक
मुकेश वर्मा, भोपाल
मो. 94250 14166

मुख्य सम्पादक
निरंजन श्रोत्रिय, गुना
मो. 98270 07736

सम्पादक
श्रीराम दवे, उज्जैन
मो. 94259 15010

कार्यकारी सम्पादक
हरीशकुमार सिंह, उज्जैन
मो. 94254 81195

प्रबन्ध सम्पादक
सदाशिव कौतुक, इन्दौर
मो. 98930 34149

कला सम्पादक
अक्षय आमेरिया, उज्जैन
फो. 0734 2561120

जनसम्पर्क अधिकारी
प्रकाश बांठिया, उज्जैन
मो.98260 69558

सह सम्पादक
राजीव शुक्ला (संस्कृति), इन्दौर
निवेदिता वर्मा (सरोकार), उज्जैन
राधेश्याम मिश्र (प्रबन्ध), उज्जैन

सहायक सम्पादक
वाणी दवे शर्मा, हरदीप दायले, उज्जैन

कार्यालय सहायक
संजय मालवीय,उज्जैन

सम्पादक मण्डल के सभी पद अवैतनिक है।

सम्पादकीय : प्रकाशकीय कार्यालय
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010
फोन : 0734 2524457
(समय प्रातः 10 से 2 बजे तक)
ईमेल : samavartan@yahoo.com
वेबसाइट : www.samavartan.com

सह संस्थापक : सम्पादन परामर्शी
अभिलाष भट्टाचार्य, मुम्बई

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक
डॉ. अजय भट्टाचार्य, सूरत

मुख्य संरक्षक
संतोष चौबे, भोपाल

संरक्षकद्वय
ओम अमरनाथ, उज्जैन
राजू पटेल, मुम्बई

परामर्श मण्डल
गिरिराज किशोर (कानपुर), रश्मि वाजपेयी (दिल्ली), नन्दकिशोर नौटियाल (मुम्बई), विश्वनाथ सचदेव (मुम्बई), सादिक (दिल्ली), मंजु तिवारी (भोपाल), उर्मिला शिरीष (भोपाल), महेन्द्र गगन (भोपाल), सत्यमोहन वर्मा (दमोह)

समावर्तन का मूल्य
व्यक्तिगत सदस्यता प्रति अंक : 60 रु. वार्षिक : 600/-
संस्थागत प्रति अंक 150/- वार्षिक 1500/-
विदेश के लिए प्रति अंक : 10 $ वार्षिक : 100/- $

चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखें तथा चेक अथवा मनिआर्डर निम्नलिखित पते पर भेजें
डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य
''माधवी'', 129, दशहरा मैदान,
उज्जैन (म.प्र.) 456010

समावर्तन का संचालक मण्डल
प्रनति भट्टाचार्य - अध्यक्ष, उज्जैन
कृष्णा बैनर्जी - संचालक, मुम्बई
तुहिन भट्टाचार्य - प्रबंध संचालक,सूरत

विशेष सम्पादक- वक्रोक्ति
सूर्यकान्त नागर, इन्दौर मो. 98938 10050

विशेष सम्पादक- साहित्य विचार
शैलेन्द्रकुमार शर्मा, उज्जैन मो. 98260 47765

विशेष सम्पादक- नाट्यराग
भारतरत्न भार्गव - नयीदिल्ली, मो.98116 21626

विशेष परामर्शी - घरोंदे
प्रतापसिंह सोढ़ी, इन्दौर, मो.94795 60623

विशेष परामर्शी -लोकराग
शिव चौरसिया, उज्जैन, मो. 97700 78000

निदेशक - समावर्तन संकुल (प्रतिनिधि मण्डल)
प्रकाश रघुवंशी, उज्जैन, मो. 94250 91114

दिल्ली ब्यूरो चीफ
परवेज़ अहमद
219, समाचार अपार्टमेन्ट मयूर विहार फेज़-1
दिल्ली-110054, मो. 098111 -54371

मुद्रणालय
आकृति ऑफसेट, 5 नईपेठ, उज्जैन (म.प्र.)
© सर्वाधिकार सुरक्षित
प्रकाशित सामग्री के उपयोग के लिए लेखक एवं प्रकाशक की अनुमति आवश्यक है।
प्रकाशित रचनाओं के विचार से 'समावर्तन' का सहमत होना आवश्यक नहीं।
समस्त विवाद उज्जैन न्यायालय के अन्तर्गत विचारणीय।

समावर्तन

नवम्बर -2018

इस अंक में

प्रथम पृष्ठ : लक्ष्मी बसती है पवित्र वाणी में : मुरलीधर चाँदनीवाला 05
अभिमुख : औद्योगिक घराने और पत्रिकाएँ : रमेश दवे 06
मेरा नमन : इनसे मिलिये : अजय भट्टाचार्य 07

एकाग्र

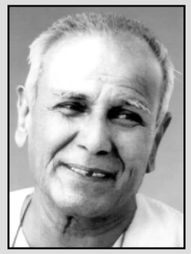

रामनारायण उपाध्याय

परिचय : रामनारायण उपाध्याय : 08
रामनारायण उपाध्याय की कविताएँ एवं लघुकथाएँ : 09
रामनारायण उपाध्याय की डायरी में जड़े मोती : 10
चैतन्य कर देने वाली हँसी और
अनुभव की आँच : डॉ.श्रीराम परिहार : 11
अब दादा की चिट्ठी नहीं आएगी : वसन्त निरगुणे : 12
निमाड़ माटी की सौंधी सुवास : पूरन सहगल : 13
सायकिलों के दौर का वो इन्दौर और दादा : वेद हिमांशु : 15
परिजनों की दृष्टि में दादा : 16
सुधीजनों की दृष्टि में रामा दादा : 19

रंगशीर्ष

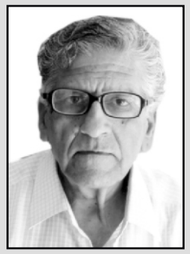

श्रीकृष्ण जोशी

परिचय : श्रीकृष्ण जोशी : 27
आत्मकथ्य : मेरे लिए कला ही पूजा है : 28
दृश्य चित्रण में महारत : अल्पना उपाध्याय : 29
मालवा में दृश्य चित्र-कला का विकासः डॉ श्रीकृष्ण जोशी : 30
परिजनों की दृष्टि में श्रीकृष्ण जोशी : 32
श्रीकृष्ण जोशी की कलाकृतियों पर सुधिजनों की टिप्पणियाँ : 33
साक्षात्कार : डॉ.श्रीकृष्ण जोशी से
जगदीशचन्द्र पण्डया की बातचीत : 34
श्रीकृष्ण जोशी की पेंटिंग्स : 35

मनोराग-14

(समावर्तन के अधबीच चिंतन केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तंभ) 39-48

रेखांकित : गणेश गनी की कविताएँ : चयन : निरंजन श्रोत्रिय : 20
पाठ स्मृति : विजय देव नारायण साही : 24
समकाल-कथाकाल : रजनी मोरवाल की कहानी : साथिन : चयन : मुकेश वर्मा : 49
लघुकथाएँ : योगेन्द्रनाथ शुक्ल, कोमल वाधवानी : 54
कविताएँ : राजकुमार कुम्भज, दिनेश श्रीवास्तव : 55
प्रतिश्रुति : 'दस्तावेज' पत्रिका पर विशेष : अभिषेक कुमार गौड़ 56
विवेचन : कथा मध्यप्रदेश खण्ड-6 : छबिल कुमार मेहेर : 59
वीक्षा : मनीष वैद्य, रेखा प्रियश्री, संतोष सुपेकर : 62
साहित्यिक हलचल : 67 अनंतिम : मुकेश वर्मा : 70

अक्षर विन्यास : विवेक शर्मा * मुद्रण संशोधक : गरिमा दवे, ऋषि तिवारी

लक्ष्मी बसती है पवित्र वाणी में

ऋग्वेद के दशम मंडल का ७१ वाँ सूक्त बृहस्पति सूक्त या ज्ञानसूक्त के नाम से जाना जाता है । यहाँ पहली बार शब्द को प्रतिष्ठा मिली ,और ज्ञान की महिमा को विस्तार मिला। इस सूक्त की काव्यात्मक उपमाओं ने आगे लम्बी यात्रा की है। पवित्र और सार्थक वाणी के महत्व को प्रतिपादित करते हुए इस सूक्त ने शब्दशास्त्र की नींव रखी । वेदवाणी में गुम्फित ऋत और सत्य के सन्धान का मार्ग प्रशस्त करता हुआ यह सूक्त रोचक भी है ,और विचारोत्तेजक भी।

बृहस्पते प्रथमं वाचो अग्रं यत्प्रैरत नामधेयं दधानाः ।
यदेषां श्रेष्ठं यदरिप्रमासीत्प्रेणा तदेषां निहितं गुहाविः ॥
ऋग्वेद : ज्ञानसूक्त ,10.71.1

सबसे पहले शब्द आया ,
वही नाम था ,
वही परिभाषित धर्म ,
वही प्रेरणा थी ,वही विद्या थी।
जो श्रेष्ठ था सर्वथा दोषमुक्त
छुपा था हृदय की गुहा के भीतर ,
प्रगट हुआ वेदवाणी के रूप में ।।1।।

चलनी से छने हुए सत्तू की तरह
मन में छनकर स्वच्छ होते हैं शब्द ,
जो सत्य के सखा हैं
जानते हैं वे भलीभाँति कि
लक्ष्मी बसती है पवित्र वाणी में ।।2।।

यज्ञ करते हुए
खोज लिया गया वेदवाणी को ,
मिली वह ऋषियों के हृदय में ,
निकलकर वहाँ से
सप्त छंदों में मुखरित हुई ।।3।।

कोई उसे देखता है ,
किन्तु नहीं देख पाता ।
कोई उसे सुनता है ,
किन्तु नहीं सुन पाता ।
किसी के सम्मुख खुल जाती वह
पति के सम्मुख अनावृत कामिनी की तरह।।4।।

जो कर चुके ज्ञानामृत का पान ,
वे होते नहीं पराभूत विद्वत्सभा में ।
शेष तो सुनते रहते
पुष्पहीन निष्फल वाणी को
और भटकते फिरते
दुग्धरहित धेनु के पीछे-पीछे ।।5।।

छोड़ दिया तुमने सच्चे साथी को,
तुम्हारी वाणी में सत्य का अंशमात्र नहीं ,
जो कुछ सुनते हो वह सब अनृत ,
नहीं जानते ,
मंगलमय पथ वह है कहाँ ।।6।।

यज्ञ के सत्र में
सब देख रहे , सुन रहे ,
किन्तु ज्ञान-सरोवर में
कुछ मुँह तक पानी में खड़े ,
कुछ कटिप्रदेश तक।
कुछ ही हैं जो डूब कर नहा रहे ।।7।।

सहृदय, मनस्वी जन
चल पड़ते हैं सत्य की खोज में ।
मंदगति छूट जाते हैं पीछे ,
आगे निकलते हुए मेधावी
पहुँच ही जाते अपने बिन्दु पर ।।8।।

ज्ञान की महिमा जो नहीं जानते ,
वे जीत न पाते इहलोक को
न उस ब्रह्म को
जो व्याप्त है शून्य से शिखर तक ,
वे फैलाते रहते शब्दजाल
जैसे धागों का जाल फैलाती बुनकर औरतें ।।9।।

फैल जाता प्रकाश ,
होने लगती जयजयकार
जब आता कोई सच्चा ज्ञानी सभा में ।
वही हमारा मित्र, वही उद्धारक ,
वही हमारा संकटमोचक।।10।।

कोई ऋचाओं को पोषित करता ,
कोई भिन्न-भिन्न छंदों को
गाता सस्वर ।
कोई देता समाधान ,
तो कोई माप रहा जीवन को
शब्दयज्ञ से।।11।।

डॉ.मुरलीधर चाँदनीवाला
मधुपर्क, 7, प्रियदर्शिनीनगर, रतलाम

औद्योगिक घराने और पत्रिकाएँ

रमेश दवे

भारत की धार्मिक एवं आध्यात्मिक छवि के अतिरिक्त ज्ञान और दर्शन की छवि भी रही है। ज्ञान की सर्जना भी दो प्रकार से हुई - एक भौतिक एवं ऐसे विषयों द्वारा जो मनुष्य से सम्बद्ध रहे - जैसे विज्ञान, इतिहास, दर्शन, समाजशास्त्र, काव्य-शास्त्र, व्याकरण आदि। दूसरी छवि सर्जना साहित्य और कलाओं की है। हमारे पूर्वजों ने उत्कृष्ट साहित्य की रचना से साहित्य-साधना को जीवित रखा। कलाएँ लोक से लेकर राजवंशों के संरक्षण और उनकी रूचि से इतनी समृद्ध हुई कि हमारा स्थापत्य, शिल्प, चित्रकारी, संगीत, नृत्य, लोक-कलाएँ लोकप्रियता का इतिहास बन कर विश्व विख्यात हो गईं। अब प्रश्न यह है कि कला-युग बीत गया तो क्या भारत साहित्य और कला-शून्य हो गया या उसे नए नए भौतिक धन-कमाऊ आकर्षण से तकनीकी कूड़ेदान में फेंक देने की तैयारी है ? साहित्य के प्रति यह हिंसक उपेक्षा चिन्ता पैदा करती है।

हमारे ज्ञान, विज्ञान, कल्पना, संवेदन और सौन्दर्य से जुड़ा क्षेत्र साहित्य रहा है और आज भी है। हमारी इस सर्जनात्मक वृत्ति और रूचि को सर्वाधिक प्रश्रय उद्योगिपतियों ने दिया था। वे पूंजीपति ही नहीं, उद्योगपति भी थे और मात्र उद्योगपति भी नहीं ज्ञान-पति भी थे। उनकी इसी संवेदना की ही तो प्रतिनिधि थीं वे हिन्दी की महान पत्रिकाएँ, जिन्होंने देश का बौद्धिक-मानस रचा जिनके माध्यम से हमें भारतेन्दु, महावीर प्रसाद द्विवेदी, रामचंद्र शुक्ल, प्रेमचंद, प्रसाद, निराला, पंत, महादेवी से लेकर आधुनिक साहित्य की महान विभूतियों को पढ़ने, समझने और उन पर गर्व करने का अवसर मिला। 'धर्मयुग' एक समय पढ़े लिखे घरों के घर में ज्ञान का धर्म बन गया था, साप्ताहिक हिन्दुस्तान हमें हमारी समृद्ध परम्परा से साक्षात्कार करवाता था। साहित्य की पत्रिकाओ में बीसवीं सदी में सर्वाधिक लोकप्रिय हिन्दी पत्रिकाएँ थीं ज्ञानोदय, माध्यम, सारिका, सरस्वती, कादम्बिनी, नवनीत आदि और आज भी नया ज्ञानोदय, वागर्थ, समावर्तन, वीणा, नवनीत, समकालीन भारतीय साहित्य जैसी अनेक पत्रिकाएँ लोकजीवन में व्याप्त हैं, उनके पाठक हैं और ऐसे सर्जक भी हैं जो श्रेष्ठ साहित्य रचना कर रहे हैं। मध्यप्रदेश की साहित्यिक पत्रिका - पूर्वग्रह, साक्षात्कार, अक्षरा, समास (भोपाल से संपादित) अक्षर शिल्पी, प्रेरणा, मनस्वी, पहला अंतरा एवं अनेक मासिक त्रैमासिक पत्रिकाओं ने अपना पाठक वर्ग बनाया है, यहाँ तक कि जो पत्रिकाएँ आर्थिक संकट से ग्रस्त हैं वे भी संघर्ष के साथ अपने को जिन्दा रखे हुए हैं। 'रंग-संवाद' एवं 'कला-समय' ने भी साहित्य के पाठक वर्ग में नया उत्साह पैदा किया है। दिल्ली तो पत्रिकाओं का सर्वाधिक प्रकाशन क्षेत्र है मगर बिहार, उत्तरप्रदेश, हिमाचल प्रदेश, राजस्थान आदि राज्यों ने भी सरकारी और गैर-सरकारी स्तर पर साहित्य की सृजन भूमि को उर्वरा रखा है।

यह इतिहास का गौरवशाली अध्याय है कि साहित्य, कला नाटक, फिल्म, बाल-साहित्य आदि की लोकप्रिय पत्रिकाओं को सरकारों से अधिक बड़े उद्योगपतियों का संरक्षण, संपोषण, प्रकाशन और प्रोत्साहन मिला है। उन उद्योगपतियों और उद्योगों की बौद्धिक और रचनात्मक छवि का निर्माण भी पत्रिकाओं ने ही किया है। वे उनके उद्योगों का गौरव रही हैं, पहचान रही है, प्रतिष्ठा रही हैं । स्व. धनश्यामदास बिड़ला, दिनेशनंदिनी डालमिया, अज्ञेय, धर्मवीर भारती, रघुवीर सहाय जैसे बड़े साहित्यकार औद्योगिक घरानों की पत्रिकाओं से न केवल साहित्य की बल्कि औद्योगिक घरानों के लिए भी गौरव बने थे। भारतीय भाषा परिषद कोलकाता का योगदान भी सराहनीय रहा है। आज जब वेब साइट, नेट, तकनीक आदि का आक्रमण है और उद्योगों के मालिकों ने जिस प्रकार बाजार की धन-दौड़ को अपनाया है उससे देश की लोकप्रिय हिन्दी पत्रिकाओं का संकट पैदा हो गया है। माना कि रियल -इस्टेट, कम्प्यूटर, मोबाइल और तकनीकी संसाधनों में धन-वर्षा है लेकिन कोई भी देश अपनी पहचान केवल धन से ही नही रचता। उसका बौद्धिक स्वरूप तो धन के साथ बजाए ज्ञान के साधन ही करते हैं। यदि इतिहास की मृत्यु, साहित्य की मृत्यु, साहित्यकार की मृत्यु जैसे नारे दुनियाभर में छाए हुए हैं, तो पत्रिकाओं की मृत्यु एक अत्यंत करूण और क्षुब्ध मृत्यु होगी। उद्योगपतियों, पूंजीपतियों, सम्पन्नों और सरकारों के छोटे मन से यह सिद्ध होगा कि बड़े लोग देश, को बौद्धिक रूप से छोटा कर रहे हैं और साहित्य का इतिहास उसी रचना के अंत का मृत्यु-लोक भी वे ही लिख रहे हैं। उद्योगपतियों ने पत्रिकाओं से जिस प्रकार की प्रतिष्ठा और गौरव कमाया है, उसे केवल लाभ के भौतिक लालच से समाप्त न होने दें और जितना धन वे अपने उद्योग और उत्पाद के लिए लगाते हैं, उसका आधे से भी कम प्रतिशत यदि वे पत्रिकाओं के विज्ञापन के जीवन जीने पर लगा दें तो वे अपने ऐतिहासिक योगदान के पुण्य को जारी रख सकेंगे और हमारी भाषाएँ और अधिक अच्छा साहित्य रचकर देश को प्रतिष्ठा प्रदान करेंगी। समावर्तन को उम्मीद है कि बड़े घराने अपना बड़प्पन दिखाकर साहित्य और साहित्यिक पत्रिकाओं को जीवन दान देंगे जो देश और भाषा की सेवा होगी।

इस अंक में लोकधर्मी व्यक्तित्व एवं शताब्दी पुरुष स्व.रामनारायण उपाध्याय के कृतित्व और व्यक्तित्व पर जहाँ एकाग्र संयोजित कर उन्हें विनम्रता के साथ स्मरण किया गया है वहीं ख्यात चित्रकार एवं कला शिक्षक डॉ.श्रीकृष्ण जोशी की कला साधना पर 'रंगशीर्ष' प्रस्तुत किया जा रहा है। चिंतन केंद्रित अर्द्धवार्षिक स्तम्भ 'मनोराग' भी इस अंक को समृद्ध कर रहा है। सभी लेखकों के प्रति आभार।

(अध्यक्ष, सम्पादक-मण्डल)
मो.94065-23071

इनसे मिलिये ....

डॉ.अजय भट्टाचार्य
स्वामी-प्रकाशक-मुद्रक 'समावर्तन'

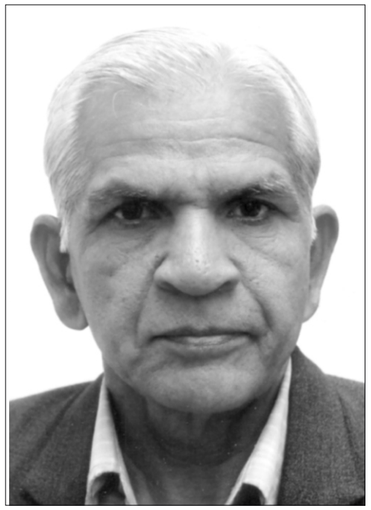

युगेश शर्मा

मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल के बहुमुखी रचनाकार श्री युगेश शर्मा जी भी समावर्तन के सहयोगी हैं, यह देख-सुनकर मुझे अच्छा लग रहा है यद्यपि मैं शर्मा जी से कभी नहीं मिला किन्तु उनके बारे में समावर्तन के सम्पादक भाई सा.श्रीराम दवे जी कुछ इस तरह बता रहे हैं-

''प्रदेश के आदिम जाति कल्याण विभाग में मीडिया प्रभारी से लेकर म.प्र. जनजाति आयोग के सचिव और अपर संचालक जैसे महत्त्वपूर्ण प्रशासनिक पदों पर कार्य कर 16 वर्ष पूर्व सेवानिवृत्त हो चुके युगेश शर्मा जी पत्रकार, कथाकार, नाटककार, व्यंग्यकार और जागरुक लेखक के रूप में न केवल सक्रिय हैं बल्कि सर्वप्रिय व्यक्तित्व के रूप में भी प्रतिष्ठित हैं। तीन नाटक, तीन कहानी संग्रह, एक उपन्यास सहित व्यंग्य प्रधान कृतियों के लेखक शर्मा जी आकाशवाणी और दूरदर्शन पर भी अपने कई नाटकों, शब्दचित्रों, वार्ताओं तथा फीचर आलेखों एवं टेलिफिल्मों के प्रसारण के साथ सक्रिय और लोकप्रिय भी हैं।

इन्दौर से प्रकाशित दैनिक समाचार पत्र 'इंदौर समाचार' के सह सम्पादक रहे युगेश जी शासकीय कर्मचारियों की पत्रिका 'राजरथ' के सम्पादक होने के साथ दिल्ली, मुम्बई के कुछ पत्र-पत्रिकाओं के संवाददाता भी रहे हैं। संप्रति स्वतंत्र पत्रकार के साथ-साथ हिन्दी भवन न्यास भोपाल के मासिक बुलेटिन 'हिन्दी भवन संवाद' के सम्पादक के रूप में सक्रिय हैं।

समावर्तन के संपादक मंडल के यशस्वी अध्यक्ष और कथाकार आलोचक प्रो.रमेश दवे के अभिनंदन ग्रंथ का सम्पादन कर चुके युगेश जी समावर्तन के 'एकाग्र' 'सरोकार' तथा 'रंगशीर्ष' स्तम्भों के लिए आवश्यक सामग्री जुटाते रहे हैं। 77 वर्षों की आयु में भी युवाओं जैसी कार्यशैली रखने वाले इस सदाबहार व्यक्तित्व को कई सम्मान और पुरस्कारों से समय-समय पर अलंकृत किया जाता रहा है जिनमें कई सम्मान/पुरस्कार, राष्ट्रीय एवं राज्य स्तर के भी हैं।

सौम्य व्यक्तित्व के धनी, सदैव सहयोगी तथा स्वाभिमानी साहित्यिक व्यक्तित्व श्री युगेश शर्मा जी की सक्रियता, सदाशयता तथा सज्जनता के प्रति हमारा नमन एवं असंख्य मंगलकामनाएँ...।

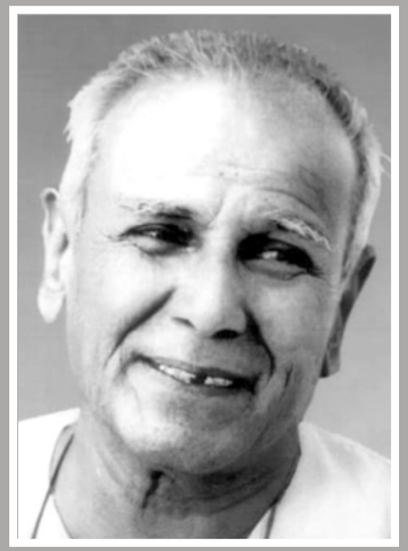

शताब्दी पुरुष

रामनारायण उपाध्याय

खण्डवा से सुदूर उत्तर में 40 कि.मी. रोशनी के गहन वन के मध्य बहती हुई पुण्यसलिला कावेरी के पचिम तट पर बसा हुआ है ग्राम कालमुखी। लोक-संस्कृति से ओत-प्रोत इस गाँव में दिनांक **20 मई, 1918** को मालगुजार पं. सिद्धनाथ उपाध्याय एवं सौ. दुर्गाबाई के दाम्पत्य क्षितिज में निमाड़ के सूर्य पं. रामनारायण उपाध्याय का जन्म हुआ। वे पं. सिद्धनाथ जी के तीन पुत्रों में से मँझले थे। बड़े भाई पुरुषोत्तम एवं छोटे भाई शिवनारायण से एकदम अलग-थलग सोच-विचार एवं तीक्ष्ण दृष्टि रखने वाले रामनारायण आगे चलकर लोक-संस्कृति एवं हिन्दी-साहित्य के पुरोधा कहलाए।

गाँव से जुड़े रहने के कारण उनके साहित्य में लोक-साहित्य की गहरी पैठ रही। उन्होंने अपनी लोक बोली ''निमाड़ी'' में अपना निजी शोध किया जो कि विश्वविद्यालयीन शोध से अलग हटकर था। उन्होंने निमाड़ का सांस्कृतिक इतिहास रचा और अनेक शोधकर्ता उससे लाभान्वित हुए। उन्हें इस शोध-प्रबन्ध पर राजस्थान लोक-संस्कृति-शोध संस्थान कलकत्ता द्वारा वर्ष 1982 में झवेरचन्द्र मेघाणी स्वर्ण पदक अलंकरण से सम्मानित किया गया, उन्होंने ललित गद्य को अपनी मूल विधा बनाते हुए अनेकों निबन्ध लिखे जिनमें गाँव और माटी की मधुरिम गूँज आज भी स्पष्ट सुनाई देती है।

ललित गद्य में उनकी पुस्तक कुंकुम - कलश और आम्र-पल्लव, हम तो बाबुल तोरे बाग की चिड़ियाँ प्रमुख हैं। 'मन के मृगछौने' उनकी ललित गद्य रूपक की सर्वाधिक प्रचलित पुस्तक है। व्यंग्य विद्या में उन्होंने शालीनता से कलम चलाई। 'बख्शीनामा' और 'नाक का सवाल' ने उन्हें व्यंग्यकार के रूप में स्थापित किया। उन्होंने मध्यप्रदेश की लोक-भाषा संस्कृतियों को एक मंच पर लाने में महती भूमिका निभाई। उनके भागीरथी प्रयास से ही वर्ष 1979-80 में मध्यप्रदेश आदिवासी लोक परिषद् का गठन हुआ, जिसमें तत्कालीन प्रदेश की 5 लोक बोलियों मालवी, निमाड़ी, बुन्देली, बघेली एवं छत्तीसगढ़ी को एक मंच मिला और इन भाषाओं की संस्कृतियों का संरक्षण हुआ एवं इन भाषाओं के लोक कलाकारों ने देश ही नहीं, वरन् विदेशों में भी अपनी संस्कृति की अमिट छाप छोड़ी।

पं. रामनारायण उपाध्याय आ.लो.क. परिषद् के प्रथम उपाध्यक्ष एवं तत्कालीन मुख्यमंत्री श्री अर्जुनसिंह अध्यक्ष रहे। पं. रामनारायण उपाध्याय जो कि कालान्तर में ''रामा दादा'' कहलाए, ने निमाड़ लोक संस्कृति न्यास की स्थापना की जिसमें उन्होंने एक समृद्ध लायब्रेरी स्थापित की एवं उसके माध्यम से निमाड़ी संस्कृति के संरक्षण, उन्नयन में आजीवन लगे रहे। निमाड़ी बोली में लिखने वाले एवं निमाड़ी संस्कृति के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करने वाले सृजनधर्मियों के लिए गणगौर सम्मान की स्थापना की गई, जिससे लगभग 40 निमाड़ी लोकभाषा की पुस्तकें प्रकाशन में आईं। इसी प्रकार निमाड़ में हिन्दी-साहित्य की अन्य विधाओं में लिखने वाले एवं कार्य करने वाले साहित्यकारों को सिंगाजी सम्मान से नवाजा गया।

उनकी संपूर्ण साहित्यिक उपलब्धियों को देखते हुए उन्हें वर्ष 1991 में राष्ट्रपति द्वारा पद्मश्री से अलंकृत किया गया। सहज, सरल, विनोदी, अतिभावुक रामा दादा दिनांक **20.06.2001** को साहित्याकाश में विलीन हो गये।

अच्छी किताब

एक अच्छा आदमी
खिले हुए फूल की तरह
सबको सुख पहुँचाता है।
एक अच्छी किताब
खुशमिजाज आदमी की तरह
लिखने की प्रेरणा देती है।
एक अच्छे आदमी की अच्छी किताब
एक ऐसी इबारत है
जिसे उस तरह जीकर ही
पढ़ा जा सकता है।

आभास

अगर कहीं पर्वत है
तो निश्चित मानिये
आस-पास कहीं नदी भी होगी
बिना हृदय में गहरा दर्द संजोये
कोई इतना ऊँचा उठ नहीं सकता।

यादों का इत्र

तुमने खत लिखा
खुशी हुई,
मिल लिये
सुख हुआ।
यह खुशी और सुख ही
तुम्हारी अनुपस्थिति में
यादों का इत्र बनकर
महकता है।

पिल्ले

काली बिल्ली की तरह
रात भागी जा रही थी,
और झबरे कुत्ते की तरह
दिन उसका पीछा कर रहा था।
इतने में मुस्कराते हुये उषा आई
और दोनों पिल्लों को जुदा कर दिया।

गुलाबी चुम्बन

घुँघराले बालों वाले आसमान ने
जब सांझ पड़े
धरती के अधरों पर
डूबते सूरज का
गुलाबी चुम्बन अंकित कर दिया,
तो धरती ने मदहोश होकर
अपनी पलकें झुका लीं
और
अँधेरा छा गया।

बाँधो मत

कविता में बाँधो मत
मैं तो वह गीत हूँ
जो ग्वाले ने गाया।
वाद्यों पर कसो मत
मैं तो वह स्वर हूँ
जो दिगदिगन्त छाया।
शिला पर उकेरो मत
मैं तो वह अमूर्त हूँ
जो मूर्त बन आया।

जुलाहा

आलोचक बोला
उसने एक दिन के आस-पास
दो रातें क्यों बनाई
जैसे गोरे जज को
काला चोगा पहना दिया।
प्रशंसक ने कहा,
एक रात के आस-पास
दो दिन कितने सुन्दर लगते हैं,
जैसे काली लड़की ने
सफेद गाउन पहना हो।
समय का जुलाहा मुस्कराया और
निवाड़ की तरह
दिन और रात को बुनता ही चला गया।

एहसास

लिखना क्या है ?
अपने आपको दुखी करने का
एक सुखद एहसास।
और
रचना क्या है ?
अपने ही द्वारा कुरेदे गये दर्द को
सहलाने की एक मीठी प्रक्रिया।

खेतिहर किसान का बेटा सूरज

गरमी के दिनों चिलचिलाती धूप में दिन-दिन भर खेतों में काम करने के पश्चात् खेतिहर किसान का बेटा सूरज, पश्चिमी समुद्र में स्नान करता और अस्ताचल की ओट में छिप, धरती की ओर के दरवाजे बन्द कर, खुले आसमान की नंगी खटिया पर इस कदर तान कर सोता कि न तो उसे बिछाने की जरूरत पड़ती न ओढ़ने की। कहते हैं जाड़े के दिनों में ठण्ड से परेशान होकर उसने कपसीले बादलों की एक रजाई बनवाई थी, लेकिन पूरे चार माह तक ओढ़ने के कारण वह इस कदर फटी कि न तो ओढ़ने के काम की रही, न बिछाने के।अतएव वर्षा के लगते ही उसने उसी फटी रजाई को पुनः धुनकवाकर, उसकी इतनी खूबसूरत व गुदगुदाने वाली रजाई बनवाई कि उसे देखकर उषा और संध्या जैसी रंगीन मिजाज लड़कियाँ भी उस पर मरने लगीं।

धूप के वस्त्र

कपड़े ले जाने वाली धोबिन की तरह, उस दिन संध्या आई और घरों तथा वृक्षों की अलगनी पर टँगे धूप के वस्त्रों को इकट्ठा कर अपनी रंगीन चादर में बाँध, सुदूर आकाशगंगा के किनारे, अँधकार के गहरे-काले शिलाखण्डों पर धोने के लिये ले गई। अपने कपड़े छिन जाने से झेंपकर भागने वाले नंग-धड़ंग बच्चों की तरह, धरती ने लजाकर रात की चादर से अपना मुँह ढँक लिया।

दूसरे दिन बड़ी सुबह दूध लेकर आने वाली ग्वालिन के साथ, जब मंद-मंद मुस्कराते हुये उषा ने आकर रात के धुले कपड़ों की गठरी को खोला, तो उजले धुले धूप के वस्त्रों से धरती पुनः सज उठी तथा अपनी फसलों रूपी केशों को हवा की अँगुलियों से सँवार इतराने लगी।

चाँद और कमीज

एक दिन चाँद ने दर्जी से कहा- ''दर्जी भैय्या, सबके कमीज सीते हो एक मेरा भी सी दो।''

दर्जी बोला - ''चाँद भैया, तुम तो रोज-रोज घटते-बढ़ते हो तुम्हारा नाप कैसे लिया जा सकता है ?''

सुनते ही चाँद को बेहद गुस्सा आया और उसने कमीज सिलवाने के लिए लाये गये, बादलों के थान को चिन्दे-चिन्दे कर आसमान में फेंक दिया।

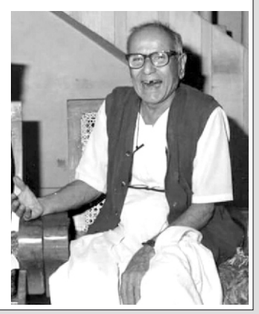

कहते हैं, तभी से चाँद उघाड़े बदन है और बादलों को सिया नहीं जा सकता।

रामनारायण उपाध्याय की डायरी में जड़े मोती

शब्द
मछली की तरह है
जीवन की नदी से कटने पर
तड़फ कर मर जाते हैं।

***

जब तुम किसी के बारे में निर्णय करो तो सोचो कि
तुम्हारे पास बुद्धि का कितना छोटा-सा बाट है।

***

वृक्ष ने आग को पिया और अंगारे फूल बन कर खिल उठे ।
आदमी ने दर्द को पिया और ओठों की डाली पर मुस्कराहट खिल आई।

***

सुख क्या है ?
दुःख की बगिया में खिला एक फूल।

***

सूरज ने
प्रकाश की नदी में स्नान किया
और दूसरे किनारे पर पहुँच कर
जब समय के टॉवेल से अपना शरीर पोंछा
तो उसका बदन लाल था।

***

रात क्या है
कपास के फूल को
चुन लेने के बाद का
बचा हुआ काला डंठल।

***

रात एक काले तकिये की तरह है,
जो सुख और दुख दोनों को
सिरहाना देते आई है।

***

जिस हाथ से हम देते हैं, वह लौटाता नहीं,
लौटाने वाला हाथ दूसरा होता है।

शाब्दिक प्रशंसा से वह निन्दा भली
जिसे रस लेकर तो किया जाता है।

सुख को पाने की इच्छा
दुःख को बुलाने का निमंत्रण है।

***

बसंत में
घर की डाली से
बिछुड़ना पड़ेगा
इसी व्यथा से
पत्तों का चेहरा
पीला पड़ गया है।

***

समय की बुढ़िया ने
रात की चक्की में
जब सितारों की ज्वारी को पीसा
तो सुबह
धरती पर प्रकाश का
आटा ही आटा बिखरा पड़ा था।

***

समय की बुढ़िया
सितारों की छलनी से
रात भर अँधेरे को
छानती रही
इसी मे सबेरा हो गया।

***

धरती ने अपनी मुट्ठी बाँधी
तो उसमें
हीरे जवाहरात सिमिट आये।
आसमान ने अपनी मुट्ठी खोली
तो हथेली पर सूरज चमक रहा था।

***

हँसी एक किश्ती है,
जो तूफानों से पार लगाती है।

***

भविष्य के लिए लिखने की बात फिजूल है।
क्यों सोचते हो कि,
भविष्य जब आयेगा, खाली हाथ आयेगा,
अरे वह अपना लेखक, अपनी बात साथ लायेगा।
अगर लिखना ही है तो आज के लिए लिखो।
और बजाय अतीत और भविष्य की
कगारें बनने के,
बीच के सेतुबन्ध बनो।

***

साहित्यकार की ख्याति रबर की तरह है,
उसे आप खींचकर,
चाहे जितनी ऊँचाई तक ले जा सकते हैं,
लेकिन जहाँ हाथ छोड़ा, कि स्थिति यथावत।

(‘मन के मृगछौने’ से)

डॉ.सुमन के साथ रामनारायण जी।

चैतन्य कर देने वाली हँसी और अनुभव की आँच

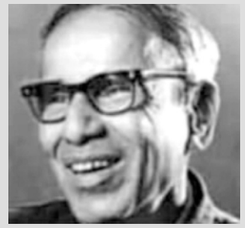

डॉ. श्रीराम परिहार

एक जोरदार ठहाका और बातों का अनवरत् सिलसिला। पूरे कमरे को चैतन्य कर देने वाली हँसी और अनुभवों की आँच में तपी जमाने की खरी-खरी बातें। बूढ़े शरीर में बच्चों-सा सरल मन। गेहुएँ रंग वाले मझोले कद पर धोती और कुरते में लिपटी सांस्कृतिक कविता। आदमी को भीतर तक भिगो देने की क्षमता वाली स्निग्ध दृष्टि। सर्जन को आराधना मानते हुए साहित्य देवता की पूजा। जीवन के आखिरी पड़ाव तक निरंतर लेखन। साहित्य और संस्कृति की परम्परा को जिन्दा रखने और समृद्ध करने की मन में ईमानदार ललक। भारत की माटी की पहचान को पूरी शिद्दत के साथ कायम करने की पुरजोर कोशिश।

लोक-साहित्य और लोक-संस्कृति की जमीन पर अंकुरित पं. रामनारायण जी उपाध्याय का लेखन साहित्य का बरगद बन गया है। उन्होंने अनुभव और लेखन की संघर्षपूर्ण लम्बी यात्रा तय की है। उन्होंने जिन्दगी को बहुत पास से देखा। लोक जीवन के प्रति आत्मीय रुख और संवेदनशीलता ने उन्हें माटी पुत्र बनाया। अन्याय और दुःख के खिलाफ एक जूझ जीवन के आरंभ से बनी रही। किसानों के छोटे-छोटे दुःख, गाँव की समस्याओं के लिए वे सबसे पहले खड़े हुए थे। इससे उनमें सच का पक्ष लेने का उत्साह प्रबल हुआ और निर्भीकता तथा आत्मविश्वास पैदा हुआ। इस देश की प्रकृति के अनुसार जीवन की आचार-संहिता उन्होंने तय की है। जो अपना है, अपने आस-पास है, जिससे हम बने हैं, जिससे हमारी पहचान और औकात है, उसका सम्मान और सुरक्षा जरूरी है। उनकी सोच है कि हम पहले गंगा-नर्मदा की बात करें, अपनी जमीन-आकाश की तासीर के अनुसार जिएँ। जो चीजें हमारे जीने के ढ़ंग को सुनिश्चित करती हैं, उन्हें मरने न दें, उनका पुनर्स्मरण करें। इन बातों ने पं. रामनारायण उपाध्याय को लोक-संस्कृति का पुरोधा बना दिया। हिन्दी-साहित्य की विभिन्न विधाओं पर आधिकारिक रूप से लेखनी चलाते हुए उन्होंने साहित्य संस्कृति के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। निमाड़ी साहित्य और संस्कृति का इतिहास उनकी हिन्दी-साहित्य को दी गयी अनुपम भेंट है। उन्होंने जिस विधा पर लेखनी चलायी उसे लोक, पुराण, इतिहास उनकी हिन्दी-साहित्य को दी गयी अनुपम भेंट है। उन्होंने जिस विधा पर लेखनी चलायी उसे लोक, पुराण, इतिहास और कला का स्पर्श देते हुए अनूठी बना दी। लोक की गहरी और व्यापक समझ उनके पास है। निमाड़ी लोक-साहित्य और संस्कृति पर उन्होंने सर्वथा नवीन, प्रथम और प्रामाणिक कार्य किया। उन्होंने निमाड़ी लोक और बोली को संपूर्ण भारतीय लोक और बोलियों की बिरादरी में बराबरी पर लाकर बैठा दिया। इस गुरुतर कार्य को करते हुए उन्होंने भारतीयता और मनुष्यता के उन मूल्यों को बार-बार रेखांकित किया है, जिससे व्यक्ति का विस्तार क्षितिज तक होता है और यह धरती माता बन जाती है तथा मनुष्य उसका पुत्र।

दुनिया को सुन्दर और स्वस्थ बनाये रखने के लिए आदमी का आदमी होना जरूरी है। साहित्यकार जीवन के समानान्तर एक नये जीवन की सृष्टि रचना में करता है। जीवन को एक मानक इकाई के रूप में स्थापित करता है। रचना का प्रभाव और रचनाकार का व्यवहार दूर तक अपने युग पर असर डालता है। अतः साहित्यकार का आदमी होना जरूरी है। रामनारायण उपाध्याय जी आदमी से आदमी बनकर जुड़ते हैं। साहित्यकार होने की पोटली को सिर पर लादे नहीं घूमते। उनकी सहजता एवं निरभिमानता ने उन्हें जन से जोड़े रखा। वे मूल्यों की तलाश साहित्य और व्यक्ति दोनों में करते हैं। मूल्यों के प्रति आस्थाओं, जीवन की विसंगतियों एवं संघर्ष भरी यात्राओं के अनुभव कलम से व्यंग्य, ललित निबन्ध, कविता, कहानी, लघुकथा, संस्मरण, जीवनी आदि की शक्ल में निकले हैं। इन सबमें वे भारत की जमीन और उसके लोगों की बात करते हैं।

उन्हें जो भारतीय परम्परा से हटकर लगता है जो इस देश की अस्मिता पर चोट करता है उसके प्रति उनके मन में बड़ा रोष है। वे आयातीत आचार-विचार को कतई स्वीकार नहीं करते। उनका विश्वास है कि जीवन के प्रगतिशील मूल्य और जीवन का परम सत्य भारतीय विचार और दर्शन के पास है। जीवन का चरम स्वरूप भारतीय लोक के राम के पास है। सृष्टि का तत्त्व-चिन्तन ऋषि के पास है। कारुणिक रूप लोकगीतकार की सीता के पास है और माँ का स्वरूप धरती के पास है। इस मायने में वे भारतीयता के बहुत आस-पास घूमते नजर आते हैं। पं. रामनारायण उपाध्याय मूलतः निबन्धकार हैं। उनके निबन्ध संवेदनाओं की उन पर्तों को खोलते हैं, जिनसे मानवीय रिश्ते और सामाजिकता उजागर होती है। एक तरह का पनीलापन निबन्धों में व्याप्त है। उनके निबन्ध मन-बादल की तरह हैं, जिनमें व्यक्ति की सामाजिक होती अनुभूतियों का पानी लबालब भरा हुआ है। कहीं कोई विचार अपने थोड़े विस्तार में लघु निबन्ध बन गया है। कहीं कोई भाव बादल की उनिहार में लघु आलेख। इनमें जीवन का जो उदात्त और अनुकरणीय है, वह बार-बार बिजुरी-सा कौंध जाता है। ये निबन्ध पाठक को ठण्डक तो देते ही हैं, आर्द्र भी करते हैं। परिवार और जीवन के एकान्तिक क्षणों में जब-जब स्मृतियों के बादल बरसते हैं, संवेदना की जमीन पूरी तरह भींग जाती है। पारिवारिकता के बीच में जीवन को संपूर्णता में देखना और उसकी निजता को खण्डित न होने देने की गहरी समझ निबन्धों में है। लेखक अपने प्रौढ़अनुभवों को निष्कर्ष रूप में रखता है। वे विषयों और वस्तुओं के प्रति अपने दृष्टिकोण में एकदम स्पष्ट हैं। उनके लिए जीवन और संसार सिर्फ हाहाकार नहीं है। उनमें केवल खराब ही खराब है, ऐसा नहीं है। वे उन्हें इनकी समग्रता में देखते हैं। भले ही वर्णन वे स्थिति विशेष का कर रहे हों, लेकिन उनका संकेत जीवन-जगत् के उन पहलुओं की ओर रहता है, जिनसे उन्हें विपरीतताओं में संबल मिलता है।

अपने निबन्धों में लेखक ने निजी अनुभूतियों को व्यापकता देते हुए उनका सामान्यीकरण ही नहीं, बल्कि सार्वजनीकरण कर दिया है। साहित्य का प्रेम भी यही है। निबन्धों में निहित ललित प्रसंग लेखक के हो सकते हैं, लेकिन वे साहित्य के मंच पर आते ही सबके हो जाते हैं। इसके लिए लेखकीय कौशल और सामाजिक दृष्टि की जरूरत होती है। निजी अनुभूतियों के निजीकरण से रचनाकार को बचना चाहिए। केवल भावुकता और उद्दीपन साहित्य नहीं है, जरूरी यह है कि वह किस सीमा तक रसायन बनकर सामने आ रहा है। अनुभूतियाँ अर्थ में घुल जाएँ और वे अपने निजीपन के रंग को सबके सुख-दुःख में, मिलाकर अभिव्यक्त हों, तब ही साहित्य के आस्वाद की सही स्थिति आती है।

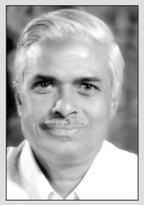

वैचारिक स्तर पर पं. रामनारायण उपाध्याय के निबंध मनुष्य को सबसे ऊपर निरूपित करते हैं। वे साहित्य के माध्यम से व्यक्ति को आदमी बनाने की तड़पन लिये हुए हैं। सारे वाद मानवतावाद से कमतर हैं, बशर्ते कि वह मानवतावाद छद्म न हो। वे जीवन को विकासमान और सहज बनाने के सूत्र बताते हैं। ये सूत्र मंत्र नहीं, बल्कि दैनिक जीवन की वे सहज क्रियाएँ हैं, जो जीवन की जड़ों में सिंचन का कार्य करती हैं।

आजाद नगर,खण्डवा-450001
मो.94253-42748

अब दादा की चिट्ठी नहीं आएगी

वसन्त निरगुणे

यह बात पत्नी ने उस क्षण कही थी, जिस दिन रामनारायण उपाध्याय के निधन का समाचार मिला था। सप्ताह में दो-तीन पत्र आते थे, तो सबसे पहले मेरी पत्नी ही दादा के पत्र पढ़ती थी। कुछ लिखावट समझ में ना आने पर मुझे पूरा पत्र उसके लिए जोर से पढ़कर सुनाना पड़ता था। असल बात यह है कि दादा के लेखन से पत्नी को अप्रतिम लगाव हो गया था। रामनारायण उपाध्याय के देश भर में कई, अन्तरंग होंगे, जिन्हें रामनारायण जी के सबसे अधिक पत्र लिखे जाने का गर्व हो सकता है। उत्तर देने में रामनारायण उपाध्याय ने एक साधारण से कार्ड को टेलीफोन अथवा फैक्स के जवाब में बदल दिया था। उनके पत्र लिखने की गति कुछ ऐसी थी। इधर पत्र आया नहीं कि पढ़कर उसका उत्तर तुरन्त लिख भेजने की त्वरितता रामनारायण उपाध्याय के स्वभाव में बदल गई थी। उन्होंने एक जगह लिखा है- ''मुझे अपने जीवन में दो ही वस्तुओं के प्रति मोह रहा है, एक पुस्तक था दूसरे पत्र। पुस्तकें तो कहीं से भी खरीदी जा सकती हैं, लेकिन पत्र बिना मित्रों के स्नेह के नहीं पाए जा सकते हैं।''

ये पत्र क्या हैं ? मानो स्नेह के ऐसे पंछी हैं, जो दूर-दूर से अपनों का प्यार लेकर आते हैं, मेरे कमरे का चक्कर काटते और मनप्राण पर छा जाते हैं। ये जिस दिन आते थे उस दिन इनकी चंचलता देखते ही बनती है। ये कभी भी मेरे टेबल पर उधम मचाते हैं, कभी सिरहाने छिपकर बैठकर जाते हैं। यह मुझे तब तक चैन नहीं लेने देते जब तक कि मैं इनका जवाब ना दे दूँ।'' किसी के खत का जवाब नहीं देना मुझे ऐसा लगता है जैसे कोई हमारे दरवाजे पर आकर पुकारा और हम घर में होकर भी न बोले। मैं अपने नाम आने वाले हर पत्र का जवाब प्रायः उसी दिन या अधिक से अधिक दूसरे दिन दे दिया करता हूँ। पत्र के जवाब में देरी करने पर मुझे कुछ ऐसा लगता है जैसे कोई हमसे मिलने आए और हम उसे बैठाए रखें। हर आने वाले से हम सब काम छोड़कर मिलना, हर खत का जवाब देना मेरा स्वभाव बन चुका है, सोचता हूँ, सबसे मिल चलो, ना जाने किस रूप में भगवान मिल जाएँ।''

रामनारायण उपाध्याय ने लिखने को बहुत ऊँची सगाई माना है, जिसमें भक्त की सी तन्मयता और भगवान जैसी अनुभूति का सम्बन्ध है। पत्र लिखना रामनारायणजी के मिशन में शामिल था। चाहे पत्र परिचित-अपरिचित का ही क्यों ना हो ? इसमें से मैं भी एक सौभाग्यशाली हूँ जिसे रामनारायण उपाध्याय ने सबसे अधिक पत्र लिखें। रामनारायण जी पत्रों को यादों का इत्र मानते थे, उन्हें चिट्ठी-पत्री पुस्तक के प्रथम पृष्ठ पर लिखा है-

तुमने खत लिखा है/खुशी हुई, / मिल लिए/सुख हुआ। / यह खुशी और सुख ही/तुम्हारी अनुपस्थिति में/यादों का इत्र बनकर/ महकता है।

रामनारायणजी सबसे अधिक कार्ड लिखते थे। कार्ड उनके लिए सबसे छोटा किन्तु विश्वसनीय और भरोसेमंद दूत की तरह रहा है। कार्ड उनके लिए उन कबूतरों की तरह थे, जो किसी काल में संदेश एक जगह से दूसरी जगह ले जाया करते थे। उनका विश्वास था कि कार्ड कबूतर की तरह पंख लगाकर सुनिश्चित उस स्थान तक पहुँचेगा। कम से कम कुशल क्षेत्र के साथ कार्ड मूल संदेश पहुँचाने में जरा-सा भी विलम्ब नहीं करता है। सूचना का यह कार्य कार्ड अपने जन्म के समय से ही अच्छी तरह से कर रहा है। कार्ड में एक चीज होती है, कार्ड किसी के लिए गोपनीय नहीं होता। उनका तन, मन दोनों खुला होता है। डाकिया चाहे तो मजमून पढ़सकता है, लेकिन शायद ही किसी डाकिया को इतना समय मिलता हो जो हर चिट्ठी पढ़ता फिरे। फिर भी कई लोग कार्ड लिखने-मिलने से चिढ़ते हैं। उनके घर में कार्ड का आना जैसे कीचड़ भरे पेड़ लिए किसी गरीब गलीच आदमी के आने के बराबर है।

खण्डवा की गुरु - शिष्य परम्परा
"एक भारतीय आत्मा " पं माखनलाल चतुर्वेदी
एवं निमाड़ के लोक - संस्कृति पुरुष
पं रामनारायण उपाध्याय "रामा दादा"

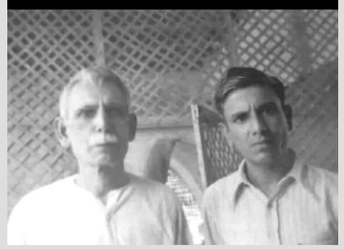

मेरे एक मित्र ऐसे ही हैं यहाँ उनके नाम लेने का कोई औचित्य नहीं, गलती से मैंने उन्हें एक कार्ड लिख दिया, उल्टे पाँव उनका खीजभरा मुझे अन्तर्देशीय पत्र मिला। उनके स्टेटस का सवाल था, उन्होंने चेतावनी के साथ लिखा मुझे कार्ड कभी मत लिखना। लिखना हो तो अन्तर्देशीय अथवा लिफाफे में लिखा करें। तब मेरे मन में आया था कार्ड पर केन्द्रीय सरकार व्यर्थ में बजट लगाती है। ऐसे विभेदी लोगों के लिए कार्ड छापना ही बंद कर देना चाहिए। ऐसे लोगों को जब कभी एक कोना फटा कार्ड मिलता होगा, तब ऐसे लोग उसकी पीड़ा को किस प्रकार झेलते होंगे। खैर ! रामनारायणजी का कार्ड से बहुत गहरा रिश्ता था। बड़े से बड़े लेखक अथवा पदाधिकारी तक को कार्ड पर ही अपने मन की बात लिख देते थे। वह कहते थे- मैं कार्ड के माध्यम से मात्र पच्चीस रुपए में एक सौ लोगों तक पहुँच जाता हूँ। (जब कार्ड की कीमत मात्र पच्चीस पैसे थी) ऐसा नहीं था कि रामनारायणजी अन्तर्देशीय अथवा लिफाफा खरीद कर लिख नहीं सकते थे। उन्हें कहीं रचना भेजनी होती तो वह बाकायदा अपने लेटर हैंड राइटिंग के साथ टाईप की सामग्री भेजते थे, लेकिन रचना नहीं छपती थी तो वे स्मरण कार्ड पर ही लिखते थे।

हिन्दी के प्रख्यात लेखक निबंधकार श्री विद्यानिवास मिश्र को जब पहली बार पत्र लिखा था- '' तो उन्होंने लिखा था आपका कार्ड पाकर मुझे ऐसा लगा कि एक और आत्मीय मिला। एक समानधर्मी से मिलने से जो प्रसन्नता होती है, वही प्रसन्नता मुझे हुई, ''रामनारायणजी को कार्ड लिखने में ही सबसे बड़ा सुख मिलता था। उनके पत्र का संसार बहुत बड़ा था। उनके कार्ड व्यवहार की परिधि में वासुदेवशरण अग्रवाल, राहुल संस्कृत्यायन, हजारीप्रसाद द्विवेदी, सुमित्रानंदन पंत, अज्ञेय, बालकृष्ण शर्मा नवीन, धर्मवीर भारती, कृष्णबलदेव उपाध्याय, देवेन्द्र सत्यार्थी आदि उनके समय के छोटे-बड़े लेखक से लगाकर उत्तरार्ध के नवीनतम लेखक तक रहे हैं। हिन्दी में कार्य करने वाले अर्निशोव, वारान्निकोव से भी उनके पत्र व्यवहार हुए हैं, उनका कहना है- *''लिखना क्या है ?/अपने आपको दुःखी करने का/एक सुखद एहसास।''*

एक व्यक्ति द्वारा अनेक लोगों को लिखे अनेक पत्र संग्रह तो सामने आए हैं, पर अनेक लोगों के लिए एक व्यक्ति को लिखे पत्रों का संग्रह 'चिट्ठी-पत्री' के नाम से केवल रामनारायणजी उपाध्याय का ही छपा है। यहाँ तक मुझे एक ही व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति को लिखे गए पत्रों में से चुने हुए पत्रों के मर्म को आपके समक्ष रखने का सौभाग्य मिला है। इनमें मेरा महत्त्व 'मेरा' नहीं है, महत्त्व तो रामनारायण जी उपाध्याय का ही है। जिन्होंने पत्रों में हृदय की बात बिना लाग-लपेट के कहने का सुखद साधन माना है। रामनारायणजी का पत्रों के प्रति मोह इतना जाग गया था कि जिस दिन कोई पत्र नहीं मिलता था तो उस दिन वे अपनी डाक लेने के लिए डाकघर पहुँच जाते थे। डाक डालने पर भी उनको किसी पर विश्वास नहीं था, घर जाकर तुरंत चिट्ठी लिखकर स्वयं ही जहाँ से जल्दी डाक निकलने वाली होती थी, उस लाल डिब्बे में दादा लिखे पत्र डाल आते थे। यही कारण है कि उत्तर पाने वाला स्वयं हतप्रभ रह जाता था कि रामनारायणजी के पत्र लिखने की गति तार से भी अधिक है। रामनारायणजी का पत्र-प्रेम सारे देश में प्रसिद्ध हो गया था। उन्हें पत्र लिखने में जरा-सा भी आलस्य नहीं था। उन्होंने कहा है- ''अपनी सरलता'' और सादगी के बावजूद हाथ से लिखे पत्र में जो स्नेह होता है, वह और किसी में नहीं। उसके रोम-रोम से प्रेम मानों झरता-सा आया है, और उसके शब्द-शब्द मानो यह कहते से प्रतीत होते हैं कि मैं सिर्फ तुम्हारे लिए हूँ, अपने एकांत के क्षणों में अपने अन्तरात्मा के प्यार के साथ मैं जब लेकर बैठता हूँ तो मेरा आँखों में महज तुम ही तुम थे और अब तुम्हारी याद की पगडण्डी पर फूलों की तरह नाजुक शब्दों के पग धरते मैंने अपने स्नेह को तुम तक पहुँचाया है। ''मैं जब तुमसे मिलता हूँ तो संभव है मिलकर भी नहीं मिल पाऊँ, लेकिन मैं जब तुम्हें लिखता हूँ, तो सचमुच अपनी अन्तरआत्मा की गहराइयों में से तुम्हें प्यार करता आया हूँ।''

लिखने को रामनारायणजी दर्द को कुरेदना मानते हैं। उन्होंने लिखा है- *''रचना क्या है,/अपने ही द्वारा कुरेदे दर्द को,/सहलाने की एक मीठी प्रक्रिया।''* लिखना उनके लिए नितान्त अकेला होता है। यह मानते हैं- ज्यों-ज्यों आदमी लिखता जाता है, त्यों-त्यों नितान्त अकेला होता जाता है। अकेलापन ही उसे कचोटते हुए अधिक से अधिक लिखने और अधिक से अधिक आदमियों से आत्मसात् होने को बाध्य करता है। ऐसे बियाबान मरूस्थल में आने वाले पत्र यदि उसके लिए स्वाति की बूँद की तरह प्राणदायक हो उठें तो उसमें क्या आश्चर्य ? कारण वह अच्छी तरह जानता है। रामनारायण उपाध्यायजी से मेरा सम्बन्ध वैसे सन् 62 से ही हो गया था। तब मैंने चीन युद्ध के समय बच्चों की कविताओं पर केन्द्रित एक छोटी पुस्तक की भूमिका लिखवायी थी। इसके पहले मैंने सन् 1958 में निमाड़ लोक-साहित्य परिषद् के मंडलेश्वर अधिवेशन में रामनारायणजी के केवल दर्शन किए थे। तब मैं आठवीं कक्षा में पढ़ता था। लिखना जानता नहीं था, तुकबाजी किया करता था। सांस्कृतिक और साहित्यिक और साहित्यिक कार्यक्रमों में हिस्सा लिया करता था। इसका परिणाम यह हुआ कि कक्षा दसवीं में विद्यालयीन पत्रिका 'प्रतिभा' का निर्विरोध संपादक चुन लिया गया। मेरे सम्पादन में प्रतिभा के दो अंक निकले भी फिर महेश्वर की पढ़ाई हो गई और मैं खरगोन में अध्यापक हो गया। रामनारायणजी से काफी समय तक कोई पत्राचार नहीं हुआ। सन् 1971 में मेरा नईदुनिया में निमाड़ के लोकचित्रों पर रेखांकन सहित एक विस्तृत लेख प्रकाशित हुआ। इसके पूर्व बच्चों की कविता और कहानियाँ मेरी नईदुनिया में छपती रही पर लोककला पर यह मेरा पहला लेख था। उसे पढ़कर रामनारायणजी एक दिन मेरे घर खरगोन में अचानक आ गए। मैं स्वयं आश्चर्यचकित था कुछ सूझ नहीं रहा था क्या करूँ ? सो संस्कारवश मैंने उनके चरण स्पर्श कर लिये, उन्होंने मुझे उठाया गले लगा लिया मुझे ऐसा लगा जैसे गुरु स्वयं मुझे आशीर्वाद देने मेरे घर आ गए। मैं धन्य हो गया, घर पवित्र हो गया। इसके बाद पत्रों का सिलसिला शुरू हुआ तो अन्त समय तक निरन्तर चलता गया। आपस में बहुत से सुख और दुःख बाँटे। मैंने उन्हें कमजोर और आनन्द के क्षणों में बहुत नजदीक से देखा। खण्डवा के दादा माखनलाल चतुर्वेदी साहित्य के देवता कहे गए। रामनारायण उपाध्याय लोक-साहित्य के देवता हुए।

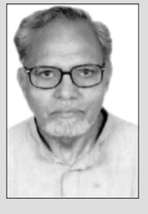

एच-7, उमाविहार, नयापुरा,
कोलार रोड, भोपाल
मोबाइल : 09479539358

निमाड़ माटी की सौंधी सुवास : रामा दादा

डॉ. पूरन सहगल

रामादादा का असल नाम था पंडित रामनारायण जी। दादा बालकविजी ने उन्हें यह आत्मीय नाम दिया । वे अपने आत्मीयजनों में इसी नाम से जाने जाते रहे। मैंने दादा को 1980 में ठीक से देखा, समझा और जाना। इसी वर्ष मेरी पुस्तक छपी थी ''डूँगजी-जवारजी''। मैंने अपनी प्रत्येक पुस्तक दादा को भेजी। उन्हें जब यह पुस्तक मिली तब उन्होंने मुझे ''टण्ट्या भील'' पर ऐसी ही पुस्तक लिखने के लिए आदेशित भी किया और प्रेरित भी किया।

कवि भवानीप्रसाद मिश्र के साथ रामा दादा।

मैंने पूछा दादा यह टण्ट्या था कौन? दादा ने ठहाका लगा दिया। बोले ''तुम ढूँढलाओ मैं बता दूँगा।'' फिर ठहाका ! मैंने पूछा दादा निमाड़ की पहचान क्या है ? दादा थोड़े गम्भीर हुए बोले नर्मदा की पावनता, सिंगाजी की भक्ति और अहिल्या का शौर्य और दानशीलता । इन तीनों के संतुलित मिलाप का नाम है ''निमाड़!'' मैं चाहता हूँ उसमें टण्ट्या का विद्रोही स्वर भी मिल जाए। तब निमाड़ की पूर्णता को प्राप्त होगा। यह चतुर्मुखी ब्रह्मा का सर्जक रूप प्राप्त कर लेगा। निमाड़ मूलतः आदिवासी बहुल क्षेत्र है। टण्ट्या का जीवंत होना आवश्यक है। उसने सामंतों और साहूकारों के विरुद्ध आंदोलन किया था । उसके समय पाटिलों, पटेल, साहूकारों का आतंक व्याप्त था। जुल्म और शोषण चरम पर था। ये सब अंग्रेजी सत्ता को संरक्षण भी दे रहे थे और अंग्रेजी सत्ता द्वारा संरक्षित भी थे।

टण्ट्या ने अकेले दम पर इन सबको हिलाकर रख दिया। बाद में वह तात्याटोपे के सम्पर्क में आने के कारण अंग्रेजों के विरुद्धभी लड़ा। छापामार युद्ध के लिए वह प्रसिद्ध हुआ। तुम टण्ट्या का यही रूप स्थापित करो। उसका लोक-साहित्य ढूँढो। उसे आधार बनाकर लिखो। इतिहास मत पढ़ना। लोक पढ़ना। लोक को आधार मानना। लोक कभी झूठ नहीं कहता। इतिहास कह सकता है। इतिहास सत्ताधारी लिखाते हैं।

मैंने पूछा दादा लोक-साहित्य कौन लिखवाता है? दादा ने तत्काल कहा लोक-साहित्य को लोक लिखवाता है। वह वेदों की तरह श्रुति आधारित होता है। इसीलिए लोक-साहित्य को मैं लोक श्रुति या लोक वेद मानता हूँ। मैंने प्रश्न को विस्तार देने का प्रयत्न किया- दादा क्या किसी का लिखा गीत या कथा भी लोक-साहित्य में मान्य हो जाती है? दादा ने कहा- हाँ ! हो जाती है। बरसों बरस बाद जब लोक मानस किसी गीत को स्वीकार लेता है और उसमें जोड़-बाकी कर लेता है तब वह गीत लोक गंगा में स्नान करने के पश्चात् लोक की पाती बन जाता है। लोक-साहित्य समूह सृजित होता है। यह न तो छंदों का बँधन स्वीकारता है और न व्याकरण की बेड़ियों में जकड़ा जा सकता है। इसमें केवल भाव व लय का महत्त्व सबकुछ होता है।

रामनारायणजी के जन्मशती समारोह पर एकत्रित सृजनधर्मी।

तुम लोक के शोधार्थी हो। लोकमय हो जाओ। लोकगंगा में खूब तैरों, डुबकियाँ लगाओ। खूब आनंद आएगा।

मैं दादा के उस व्यक्तित्व ये चमत्कृत था। ऐसे विशाल व्यक्तित्व पर लिखना बहुत कठिन काम है। गहन सागर का पार या थाह पाने जैसा कठिन है। रामा दादा जैसे चरित्र बार-बार या हर बार जन्म नहीं लेते। माता की पूर्व जन्म की पुण्याई और इस जन्म का धर्म निष्ठा के कारण जो शुभफल प्राप्त होता है वह रामादादा और बालकवि बैरागी जैसा चरित्र होता है। जन्म से लेकर मृत्यु तक संघर्षों के जीवन का लेखा कैसे लिखा जा सकता है? ऐसे चरित्र अपने नंगे पैरों से कठिन यात्राएँ पार कर जाते हैं। न उन्हें मार्ग के काँटे रोक पाते हैं और न कंकर! मार्ग और मंजिल का सेतुबंध बनाने में वे अत्यन्त तत्पर, सक्षम और समर्थ हो जाते हैं। कई बार तो मंजिल उनके निकट स्वयं आ जाती है। किसी शायर ने इसी बात पर यह शेर लिखा होगा।

''खुदी को कर बुलंद इतना, अपनी तकदीर से पहले,
खुदा बंदे से खुद पूछे, बता तेरी रजा क्या है ?''

ये व्यक्तित्व न तो तकदीर पर भरोसा करते हैं न तदबीर पर। इनका भरोसा स्वयं पर रहता है। वह न कभी थकता है और न हारता है।

मैंने पूछा दादा आपको पद्मश्री अलंकरण मिला है, यह तो हमारे लिए गौरव की बात है। आज तो यह अलंकरण आपके यशस्वी व्यक्तित्व के आगे छोटा लगने लगा है। दादा आप यह बताएँ इससे भी बड़ा अलंकरण कौन-सा हो सकता है? दादा ने बिना विलम्ब किए उत्तर दिया ''विनय''! विनय से बड़ा कोई अलंकरण नहीं होता। विनयशील व्यक्ति कठिन से कठिन परिस्थितियों में भी अपना मार्ग खोज लेता है। उसमें खरी से खरी बात कहने की भी विनयशीलता होती है। वह जब विराट रूप धारण करता है तब अनेक पर्वत श्रेणियाँ उसके चरणों में नमित हो जाती हैं। वह हिमगिरि के उतंग शिखर पर पहुँचकर शिव दर्शन कर लौट आता है। उसकी विशालता के समक्ष सागर भी उसके चरण पखारने के लिए आतुर हो उठता है।

मैंने तत्काल प्रश्न किया ऐसा व्यक्ति आपकी दृष्टि में कौन है ? दादा ने कहा वर्तमान में बालकवि बैरागी और अतीत में भगवान राम। मैंने मन ही मन कहा- ''दादा स्वयं भी तो हैं'' ऐसे ही विनयशील व्यक्तित्व।'' मैंने कहा दादा बालकवि बैरागी और भगवान राम की तुलना तो उचित नहीं लगती। यह कैसे संभव है? दादा मुस्कराए। पूरन जी, अपने-अपने युग की चुनौतियाँ होती हैं। किसी भी व्यक्ति का मूल्यांकन उसके युग की परिस्थितियों के आधार पर किया जाना उचित होता है। तुलना तो कैसे संभव हो सकती है?

रामादादा उस दिन बहुत बोल चुके थे। उनकी साँस थकने लगी थी। मैं मौन हो गया। सोचा अब चलना चाहिए। आज्ञा माँगी तो बोले खाना खाकर जाओ। ललित भी खाना खा लेगा। दादा का आग्रह। खाना लग गया, दादा ने दो रोटी खाई और बैठ गए। हम दोनों संकोच में। स्वयं को संयमित करना पड़ा। मुझे याद आया। दादा ने लिखा है- दो रोटी खाता हूँ, दो गोली खाता हूँ। दो कपड़े पहनता हूँ और दो टूक बोलता हूँ। उस दिन प्रत्यक्ष भी देख लिया। दादा ने यह भी लिखा है कि- ''दमा तो दमदार लोगों को होता है। यह सबसे सच्चा मित्र भी है। कभी भी साथ नहीं छोड़ता। दुःख में भी, सुख में भी साथ निभाता है।'' रामादादा पान खाने के पूरे शौकीन थे। अक्सर वे चौराहे पर स्वयं जाकर पान खाते थे। इसका मुख्य कारण उनका कुछ दूर पैदल चलना और लोगों से मेल-मुलाकात भी था। जब टण्ट्या पर पुस्तक तैयार हो गई तब मैं और कृष्णा (मेरी पत्नी) दोनों उन्हें खण्डवा जाकर पुस्तक भेंट करने गए। दादा ने टण्ट्या पर छपी दोनों पुस्तकों (1) 'टण्ट्या भील बड़ो लरैया' और (2) 'टण्ट्या भील' को हमसे लिया। अल्टा-पल्टा और गद्‌गद् हो उठे। हम दोनों उनके चरण स्पर्श करने के लिए झुके, किन्तु उन्होंने हमें बीच में ही थाम लिया और दोनों को एक साथ अपनी बाहों में समेट लिया। दादा के उस पावन स्पर्श में मैंने निमाड़ माटी की जिस सौंधी सुवास का अनुभव किया उसे मैं आज तक नहीं भुला पाया। उसी स्पर्श से मैंने यह भी अनुभव किया कि मालव माटी और निमाड़ माटी की सौंध में किंचित भी अन्तर नहीं है। फिर यह निमाड़-मालवी बोली का विवाद क्यों उठने लगा है?

दादा ने ''टण्ट्या भील बड़ो लरैया'' पुस्तक को तब तक पलट लिया था। उन्होंने मेरे विचार को गति देते हुए कहा ''पूरन जी तुमने लोक से निमाड़ी बोली, मालवी बोली और बंजारी बोली की लोकगाथाएँ, गीत इस पुस्तक में संग्रहीत कर जिस त्रिवेणी की पावन धारा बहाई है, वह अद्भुत है। बधाई !!!'' मुझे बोलने का अवसर मिल गया। मैंने कहा दादा आज्ञा दें तो एक प्रश्न पूँछू ? वे बाले तो नहीं किन्तु स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया। ''मैंने कहा दादा नर्मदा जैसी निमाड़ अंचल के लिए पूज्य है, वैसी ही मालवांचल के लिए भी है। अहिल्याबाई निमाड़ और मालवा दोनों अंचलों में श्रद्धेय हैं। सिंगाजी को मालवा भी निमाड़ की तरह आदर देता है। टण्ट्या खरगोन ही नहीं खण्डवा (सम्पूर्ण निमाड़), मालवा, कांठड़ (प्रतापगढ़), वागड़ (बाँसवाड़ा, डँगरपुर) आँचल, अरावली के भील अचंल तक पहचाना जाता है। फिर यह निमाड़ी-मालवी विवाद क्यों ? दादा इस प्रश्न पर सतर्क हो गए। उन्होंने अत्यन्त संयत भाव से मुझे समझाने का प्रयत्न करते हुए कहा- मालवी-निमाड़ी को जो लोग विवाद का विषय बना रहे हैं वे ठीक नहीं कर रहे। सीधी-सी बात मैं कहता हूँ। ''दो सहोदरा बहनें एक ही कुलवंश में जन्म लेती है। एक ही माता की कोख सकारथ करती हैं, किन्तु वयस्क होने पर उनका अपना परिवार बनता है। तब उनके परिवार की अपनी सम्पन्नता और लोकाचार होते हैं। दोनों माँ जायी बहनें एक-दूसरे की समृद्धि और विकास में बाधक नहीं बनती, बल्कि प्रसन्न होती है। यही बात मालवी और निमाड़ी में भी मानना चाहिए। कोई विवाद या आंदोलन बेतुका और बेअर्था है।''

मैं असहमत होकर भी सहमत था। दादा की बात और तर्क का कोई उत्तर मेरे पास नहीं था। होता तब भी मैं प्रतिवाद नहीं कर पाता। ऐसे थे दादा! रामादादा सचमुच राम ही थे। मैंने कहा दादा आप गाँधीवादी हैं। स्वतंत्रता आंदोलन में भी आपका योगदान रहा है। आज आप क्या सोचते हैं ? क्या गाँधी आज भी युगानुरूप स्वीकार्य हैं? दादा ने कहा ''हाँ ! वे तो कालजयी हैं। उनका दर्शन भारत में ही नहीं अन्य कई देशों में भी तनिक अन्तर से मान्य किया जा रहा है। दादा ने जिस विश्वास के साथ गाँधी का कालजयी कहा था। मैं उसी विश्वास के साथ रामा दादा को भी कालजयी कहना चाहता हूँ। गीता में जिस प्रज्ञा पुरुष की बात भगवान कृष्ण ने कही है वह प्रज्ञापुरुष रामादादा जैसा व्यक्तित्व ही हो सकता है। वे सच में युगपुरुष थे। लोक-साहित्य के पुरौधा थे। हम सबको निदेशक की तरह उनका दिशा बोध हमें सदा मिलता रहा है। आज भी वे हमारे लिए प्रेरक पुरुष हैं। उन्हें शत-शत वन्दन! स

मनासा म.प्र. मो.94240-41310

सायकिलों के दौर का वो इन्दौर और स्व.दादा रामनारायण जी उपाध्याय

वेद हिमांशु

ठीक से याद करूँ तो सन् 1971-72 में मैंने साहित्यिक लेखन प्रारंभ किया था। यह मेरा सौभाग्य ही रहा कि रचनाओं के प्रकाशन और आकाशवाणी से उनके प्रसारण का सिलसिला भी उन्हीं दिनों शुरू हो गया था, जिसके कारण मन का बहुत उत्साहित रहना स्वाभाविक ही था। लेखन तथा साहित्यिक गतिविधियों में सक्रियता बढ़ने लगी और इसे भी अपना अतिरिक्त सौभाग्य ही कहूँगा कि आयु और लेखन के इसी शैशवकाल में ही न केवल नगर, बल्कि प्रदेश के लगभग सभी वरिष्ठ और हमउम्र नवोदित सभी साहित्यकारों से घनिष्ठ सम्बन्ध (मैत्री) भी हो गए। प्रतिदिन मिलना-जुलना और विशेषकर रविवार और छुट्टी के दिन तो निश्चित रूप से एक-दूसरे के घर आना-जाना तयशुदा ही था। डॉ. सरोजकुमार जी, (स्व.) श्याम व्यास, (स्व.) डॉ. श्याम सुन्दर व्यास, (स्व.) डॉ. सतीश दुबे, श्री जगदीश बैरागी, सत्तनजी, सूर्यकांत नागर जी, श्रीराम अवतार पसारी और श्री श्याम शलभ उन दिनों प्रमुख थे।इसी दौरान कुछ समय बाद (आज के प्रसिद्ध लोककला मर्मज्ञ और उस समय के सामान्य संस्कृत शिक्षक) श्री वसंत निरगुणे, खरगोन से स्थानान्तरित होकर इन्दौर आए। तब वे लोककला के साथ ही निमाड़ी और हिन्दी कविता लेखन में भी सक्रिय थे। उनके इन्दौर आते ही परिचय हो गया। संयोग से वे हमारे रहवासी मोहल्ले के पास ही थे। पश्चिमी क्षेत्र बड़े गणपति के पास कड़ाबीन में मेरा घर था और निरगुणे जी जिन्सी (शंकरगंज) में रहते थे। हालाँकि निरगुणे जी उम्र में मुझसे बहुत बड़े थे पर उनकी विनम्रता इतनी कि मेरे साथ दोस्ताना व्यवहार ही नहीं, बल्कि अनुज जैसा आत्मीय व्यवहार रहा (जो आज तक यथावत् है।) उन्हीं के द्वारा श्रद्धेय दादा रामनारायण जी उपाध्याय के बारे में जाना। ऐसा कोई दिन नहीं जाता, जब चर्चा के दौरान दादा का जिक्र नहीं होता। मेरा बालमन जो वरिष्ठ साहित्यकारों के प्रति बहुत उत्साहित था, दादा की बातें सुनता, वे मेरे लिए किंवन्दती पुरुष हो गए थे और अन्ततः वह दिन भी आ गया जब एक शाम निरगुणे जी के घर गया तो वहाँ साधारण श्वेत खादी की बंडी-धोती में एक सौम्य बुजुर्ग विराजमान मिले।

राष्ट्रपति वी.वी.गिरी से पद्म अलंकरण ग्रहण करते हुए रामा दादा

....वेद ! इनसे मिलो - दादा उपाध्याय जी। बस क्या था, आश्चर्य और खुशी के मारे मैं अवाक् ....! तत्क्षण उनके चरण स्पर्श किए। उन्होंने मेरी पीठ पर आशीर्वादसूचक धौल जमाते हुए कहा- तो तुम हो वेद हिमांशु ! जिसकी रचनाएँ हर रविवार को अखबार में पढ़ता हूँ। सोचिए ! मेरी क्या हालत हुई होगी, इतने वरिष्ठ साहित्यकार से यह सुनकर कि दादा मेरी उन बचकानी रचनाओं के पाठक, प्रशंसक हैं। उस दिन निरगुणे जी के घर (जिसका नाम उन्होंने काव्य कुटी रखा था) दादा ने, मैंने और निरगुणे जी ने साथ में भोजन किया। यह सिलसिला फिर चलता ही रहा। दादा जब भी इन्दौर आते निरगुणे जी के घर रुकते और उनके सम्मान में हम हर बार काव्य गोष्ठी करते, जिसमें नगर के कविगण जुटते, कविताएँ होती और दादा अपनी छोटी-छोटी रचनाएँ सुनाते जिन्हें वे 'मन के मृग छौने' कहते थे। बाद में इसी शीर्षक से एक पुस्तक भी प्रकाशित हुई जो दादा ने मुझे भेंट की। पुस्तक की एक रचना मुझे जिन्दगी भर याद रहेगी जो इस प्रकार थी-

'काली कलूटी रात ने सितारों / कैसा कसकर जूड़ा बाँधा है कि / चाँद भी उस पर मँडराने लगा है।'

दादा के सम्मान में आयोजित इन काव्य गोष्ठियों के बाद जो भी रविवार आता नगर के समाचार-पत्रों के साहित्यिक परिशिष्ट में मेरे द्वारा लिखी गई समीक्षात्मक रपट पूरे सम्मान से प्रकाशित होती जिसमें अतिरिक्त भावुक होकर मैं दादा की रचनाओं की चर्चा करता और गदगद रहता। दूसरे, तीसरे दिन दादा का पोस्टकार्ड आता प्रशंसा से भरा हुआ।

एक बात मैं जिन्दगी भर नहीं भूलूँगा। दो-तीन बार ऐसा मौका आया कि दादा इन्दौर आए और शाम को बोले कि 'वीणा कार्यालय (हिन्दी साहित्य समिति) चलना है। मैं और निरगुणे जी टैक्सी का कहते तो दादा कहते 'तुम दोनों के पास सायकिलें हैं तो, चलो इन्हीं से चलते हैं।'

'....ठीक है.....कहकर मैं दादा को पीछे बिठा लेता और चल पड़ते।'

आज सोचकर हँसी भी आती है और शर्मिन्दगी भी कि इस क्रम में दो-तीन बार संतुलन बिगड़ जाने पर हम सायकल समेत गिर पड़े। मैं तो बहुत लज्जित हो जाता पर दादा हँसते हुए उठते, कपड़े झटकारते और पूछते 'वेद ! लगी तो नहीं ?' मैं प्रतिप्रश्न करता, आपको तो नहीं लगी? वे हँसकर कहते, 'अरे नहीं यार चलो बिठाओ!' हम लोग वीणा कार्यालय पहुँचते जहाँ डॉ. सतीश दुबे जी, सूर्यकांत नागर जी और श्री जगदीश बैरागी आदि हमारी प्रतीक्षा करते मिलते। वहाँ दादा पहुँचते ही साइकिल से गिर पड़ने वाली घटना मजे ले लेकर कुछ इस तरह सुनाते-

'..इस वेद से पता नहीं मेरी क्या दुश्मनी है जब भी इसकी साइकिल पर बैठता हूँ नीचे गिरा देता है।' अभी बच्चा साहित्यकार है, समझता नहीं, बड़ा साहित्यकार हो जाएगा तब समझ में आएगी कि साहित्यकार तो पहले से ही गिरे हुए होते हैं! और दादा सहित समवेत कहकहा 'वीणा कार्यालय' में गूँज जाता....! खूब गप्पे-शपें लगाते और रात दस बजे लौटते। लौटते समय राजबाड़ा या सराफा में किसी हलवाई के यहाँ कढ़ाव में खौलता गरम-गरम दूध पीते। बरसों बीत गए हैं, समय की नदी में पानी बहुत बह चुका है। दादा आज नहीं हैं। निरगुणे जी राजधानी में बस गए हैं। दादा की यादें 'मृग छौने' की तरह मन में कुलाँचे भरती रहती हैं। सायकिलों के दौर का वह इन्दौर बहुत याद आता है। स

239, संचार नगर एक्स., कनाड़िया रोड,
(साँई मंदिर के पीछे) इन्दौर-452016

दादा की हर बात हमारी धरोहर है

डॉ.सुमन चौरे

दादा गए, किन्तु उनकी हर बात याद की तरह हमारे पास छोड़ गए। हमने कभी सोचा ही नहीं कि दादा हमसे इतनी दूर चले जायँगे कि वे फिर कभी नहीं आयँगे। दादा की यादें ही उनका रूपमूर्त कराती रहेंगी। दादा के साथ हमारी दोहरी यादें हैं, एक तो बचपन का कालमुखी गाँव और उस गाँव के मध्य चाँदनी वाला हमारा घर। गाँव से जुड़ी गहरी यादें। हमें तो पता ही नहीं था कि हमारे दादा इतने बड़े आदमी हैं, वे गाँधी से मिले और गाँधीजी ने उनसे कहा, ''गाँव में जाओ, वहाँ बहुत काम है, वहीं पर ग्राम-सेवा और रचनात्मक काम करो।'' ऐसे ही, जिसे संत विनोबाजी ने कहा कि देश तो अव्यक्त है, उसकी भक्ति करो और सेवा के लिए किसी व्यक्त गाँव को चुन लो। तब तो हम छोटे थे, इन सब बातों का अर्थ नहीं जानते थे, नहीं समझते थे; किन्तु देखते थे कि दादा प्रातः जल्दी उठते और मुँह-हाथ धोकर तुरंत गाँव के हर अवार मोहल्ले में जाते थे। अगर कोई बीमार है, तो वे उसके हालचाल पूछते और दःुख, मुसीबत, बीमारी हो तो यथोचित सहायता करते थे।

मुझे याद है, जब दादा रेडियो टॉक के लिए नागपुर जाते थे, या किसी कार्यवश खण्डवा जाते थे, तो सबसे मिलकर, पूछकर जाते थे। उनके साथ एक लम्बी फेहरिस्त होती थी सामान लेकर आने की। गाँव से शहर दूर था, सात मील की दूरी पर तो गाँव का अत्तर रेलवे स्टेशन था। वे फिर वहाँ से रेल से कभी इंदौर, कभी खण्डवा और खण्डवा से नागपुर जाते थे। जब लौटते थे, तो वे बिना भूले सबका सामान लेकर आते थे। किसी की कंदील की ओगले की पाई धोती में लपेटकर लाते तो किसी को पान में डालने की अलमिट (आसमान तारा) की शीशी जेब में रखकर लाते, तो किसी की अमृतांजन बाम की शीशी, तो किसी की 'वेदना निग्रह' रस की पुड़िया सम्हालकर लाते थे। ऐसा कभी नहीं हुआ कि पूरी लम्बी फेहरिस्त में लिखा कोई सामान लाने से रहा हो। नागपुर में उनके कुछ मित्र कहते थे कि क्यों परेशान होकर सामान ढूँढ़रहे हो, छोड़ो, कह देना नहीं मिला, तो वे कहते-''गाँव के एक आदमी ने मुझसे कुछ लाने के लिए कहा है, तो वह सामान के लिए उसी दिन से बैचेनी से टक-टकी लगाकर रास्ता देख रहा होगा। मैं क्यों उसका भरोसा, विश्वास तोडूँ।'' प्रख्यात विद्वान्, चिंतक और साहित्यकार डॉ. प्रभुदयालुजी अग्निहोत्री ने दादा के विषय में सच ही लिखा है, ''रामनारायण भाई गाँव में जन्में पले, बढ़े और कढ़े। वे परिवार की सुख सुविधा और समृद्धि की चिन्ता से आगे बढ़कर, व्यापक रूप में वर्ग, वर्ण विहीन समाज की चिन्ता करने वाले, अपने पराए सबके सुख-दुःख-दर्द में साथ खड़े होने वाले, पुरानी पीढ़ी के बचे-खुचे बिरले व्यावहारिक आदर्शवादी साहित्यकारों में से हैं।'' निमाड़ के महान् संत सिंगाजी की पाद-वंदना से अपना लेखकीय जीवन आरंभ करने वाले, इस सारस्वत यात्री को गाँधी सदृश महात्मा, विनोबा जैसे संत और पंडित माखनलालजी चतुर्वेदी जैसे साहित्य स्रष्टा का प्यार मिला।

दादा यद्यपि मालगुजार, समृद्ध, सामन्त, सुसंस्कारवान माता-पिता की संतान थे। किसी चीज का अभाव नहीं था, फिर भी वे सरल सादगी की प्रतिमूर्ति थे। गाँव की गरीबी को उन्होंने बहुत पास से और बारीकी से देखा है। खादी की तीन से चौथी धोती, खादी का ही दो से तीसरा कुरता उनके पास कभी नहीं रहा। गर बच्चे धोती-कुरता लाकर देते थे, तो वे उनका मान रखने को पहन लेते थे, फिर जरूरतमंद को तुरंत दे देते थे। अपने ग्रामीण जन की पीड़ा उन्हें सदा सताती रही। वे वैसे ठेठ गरीब किसान जैसे ही जीवन जीते थे। फर्क इतना रहा, किसान के हाथ में हल हँसिया और दादा के हाथ में कलम कागज रहे। प्रख्यात साहित्यकार रामविलासजी शर्मा ने दादा के लिए लिखा है, ''खादी के गेरूए कुरते और शुभ्र, धवल खादी की धोती में लिपटी छरछरी देह, नुकीली नाक पर टिकी ऐनक के पीछे से झाँकती स्नेहिल आँखें, प्रशस्त गौर ललाट, बेबाक ठहाके, नर्मदा के निर्मल जल-सा कलुषविहीन तथा माटी की सी सौंधी महक से आप्लावित मनमोहक व्यक्तित्व; निरंतर यही है हिंदी साहित्य की सर्जना में संलग्न साहित्यकार दादा रामनारायण उपाध्याय। 'भुज भरकर भेंटने' कर उनका विरल अंदाज है। उनसे मिलना ऐसा आत्मीयता की उमड़ती लहरों में अवगाहन का अप्रतिम सुख।''

कालमुखी के घर में दादा चाँदनी की चौड़ी-सी दीवार पर एकान्त में बैठकर दत्त-चित्त होकर लिखते थे; किन्तु यदि कोई आता था, तो तुरंत पेन कागज तख्ती को बगल में रखकर बातों में लग जाते थे, और व्यक्ति के जाते ही तुरंत पेन की निब पर जमी सूखी स्याही को झटककर फिर लिखने बैठ जाते थे। 'रचना एक बैठक में अच्छी बनती है', कहने वाले दादा कभी आगंतुक का दिल नहीं दुखाते थे, उसे यथोचित आदर देकर बिदा करते थे। उनका मानना था कि आदमी से आदमी का मन न मिले, तो लेखन जड़ हो जाता है'।

दादा को हमारी शिक्षा के लिए कालमुखी से खण्डवा आना पड़ा। किन्तु हर पर्व त्योहार बाई दादा कालमुखी में ही मनाते थे। खण्डवा में रहते दादा का दायरा व्यापक हो गया। दादा का प्रतिदिन का नियम था, नित्य कर्म से निवृत्त हो, सात बजते ही वे पेपर लेकर दादा माखनलालजी के घर पहुँच जाते थे। उन्हें खबरें पढ़कर सुनाते थे। फिर उनके साथ घंटे दो घंटे साहित्यिक चर्चा करके, अखबार की खबरों पर विचार कर दादा सीधे पोस्ट आफिस पहुँच जाते थे। वहाँ से डाक लेकर घर आते थे। उनका कहना था, ''पोस्टमेन को यहाँ तक आते आते देर होती है, इतनी देर में तो मैं अपने आए पत्रों के जवाब लिखकर डाकघर में डाल भी आऊँगा।'' दादा का खण्डवा आकर उनका मेल मिलाप, लेखन, पठन का दायरा और भी बड़ा हो गया। दादा माखनलालजी के पास जो भी साहित्यकार आता था, दादा का नौकर तुरंत आकर कहता, ''भाई चलो, दादा ने याद किया है।'' और दादा तुरंत माखनलालजी के यहाँ चले जाते। फिर जमकर बैठक जमती थी।

साहित्यिक गतिविधियों का भी बड़ा विराट रूप रहता था उन दिनों खण्डवा में, माणिक वाचनालय में तुलसी जयन्ती के अवसर पर विराट कवि सम्मेलन होता था और तीन दिवसीय साहित्य संवाद परिसंवाद भी। देश के मूर्धन्य विद्वान् बड़ी गरिमा पूर्वक आते थे। वे दादा माखनलालजी चतुर्वेदी की नगरी खण्डवा आना अपना सौभाग्य समझते थे। ऐसे अवसरों पर आने वालों में से ऐसा कोई भी साहित्यकार नहीं रहा, जिसे दादा अपने साथ ममतामयी दुलार से हाथ पकड़कर घर नहीं लाये। वे साहित्य मनीषी भी कितने सरल और महान् होते थे। एक बार प्रख्यात साहित्यकार डॉ. विद्यानिवासजी मिश्र को पैदल ही घर ला रहे थे। रास्ते में फल बाजार पड़ा। दादा ने विद्यानिवासजी से कहा, भाई आप भोजन तो करेंगे नहीं, रूकिए, एक पपीता खरीद लेता हूँ, भले ही आप ही उसे काट लेना। विदेशों में विद्या निवासजी स्वपाकी रहकर अपना भोजन करते थे, इसलिए दादा ने विनोद में यह बात कही, अपने हाथ से काटने की'। इस पर मिश्रजी ने कहा- ''मैं स्वपाकी हूँ, स्वकाटी नहीं हूँ।'' एक हाथ से पपीता पकड़े और दूसरे हाथ से मिश्रजी का वात्सल्य भाव से हाथ पकड़कर बातें करते हुए घर ले आये। तभी तो मिश्रजी उनकी इस सरलता पर मंत्र मुग्ध रह गए। वे कहने लगे, '' आप भी गाँव के, मैं भी गाँव का, पर मै शहर में आकर गाँव छोड़ आया और आप शहर में आकर भी गाँव के ही रहे। यही ग्रामीण सरलता आप के ललित में और लालित्य भरती है।'' दादा से प्रसिद्ध साहित्य कथाकार श्री नरेन्द्रजी कोहली भी इसी बात को कहते रहे कि आपके व्यक्तित्व की सरलता, कुंठाहीनता और उदारता ने मुझे बेहद प्रभावित किया है, ऐसे लोगों से या तो संबंध बनता नहीं और यदि बन जाय तो कोई दुराव नहीं रहता। प्रकृति से उनका तादात्म्य फक्कड़पन, फकीरों-सा है। नरेन्द्र कोहली हमारे ब्राह्मणपुरी वाले घर में तीन-चार दिन रहे। उन्हें परिवार का हर सदस्य अपना ही लगता रहा।

दादा के लेखन और रहन-सहन की बारीकी से तारीफ करते हुए प्रख्यात साहित्यकार विष्णु प्रभाकरजी कहा करते थे- ''भाई रामनारायण जो भी लिखते हैं। सूक्ति बन जाती है। तथाकथित अर्जित बुद्धि की उन्हें आवश्यकता नहीं पड़ती है।'' दादा का लेखन बहु आयामी रहा, तदनुरूप उनका बहु आयामी व्यक्तित्व भी रहा। उनके लिए न कोई छोटा होता था, न कोई बड़ा। वे जिस विशुद्ध प्रेम से ओत प्रोत होकर धर्मयुग के सम्पादक श्री धर्मवीरजी भारती से जिस स्नेह से मिलते थे, उसी स्नेह से कविता की प्रथम सीढ़ी चढ़ने वाले नव कवि-से भी मिलते थे। नव रचनाकारों और नव लेखकों की साहित्यिक बैठक खण्डवा में होती थी। आयोजक जैसे ही कहते, ''दादा आज आप हमारे बीच बैठिए, हमारा मनोबल बढ़ेगा। लिखने की प्रेरणा मिलेगी।'' वे तुरंत अपनी सहमति दे देते थे और जिस स्थान पर आयोजन होना होता था, वहाँ नव लेखक, नव कवि इकट्ठे हुए हों या न हुए हों वे समय से पूर्व पहुँच कर अपना दायित्व निभा लेते थे। उनकी रचनाओं को सम्बल प्रदान करने और यदि कोई कमी हो तो माँ के स्वभाव के अनुरूप धीरे से दूर कर देते थे।

निमाड़ी लोक साहित्य को पहचान और नाम दिलाने या यों कहें निमाड़ी लोक साहित्य को स्थापित करने वाले, दादा ने साहित्य की हर विधा को पूजा है। दादा ने व्यंग्य भी लिखे हैं। भारतीय ज्ञान पीठ प्रकाशन से प्रकाशित व्यंग्य की किताब 'गरीब अमीर पुस्तकें' खूब पढ़ी गई। वे कहा करते थे, ''व्यंग्य लेखन की प्रेरणा मुझे समाज की नकली संस्कृति, झूठी सभ्यता और शासन की गलत नीतियों से मिली। मैंने गाँधीजी के सिद्धान्त के अनुसार असत्य का नम्रता से प्रतिकार और सत्य का दृढता से पालन करने के लिये लिखना शुरू किया। ईश्वर से मेरी यही प्रार्थना है, कि ''हे प्रभु, सच को सच कहना तो बड़ा कठिन है; किन्तु झूठ को सच न कहना पड़े, इतनी शक्ति दे।''

सन् उन्नीस सौ साठ के बाद, जबसे दादा खण्डवा में रहने लगे थे, शाम को अपने सरकारी काम-काज से थके हारे आला अफसर, जब बड़े परेशान हो जाते थे, तो दादा के पास बैठकर नई ताजगी भर लेते थे। जो अफसर डेढ़इंच भी नहीं मुस्कराते थे वे यहाँ पेट-पकड़ कर ठहाके लगाते थे। उल्लेखनीय बात तो यह कि दादा उस बैठक में सरकारी आदेशों, निर्देशों और योजनाओं के क्रियान्वयन की ही चर्चा करते थे। दादा सुनाते थे, एब बार जप्त हुए सौ रूपये के नोट को पाँच रूपये में नीलाम कर दिया कलेक्टरेट में। फिर रिकार्ड तोड़ ठहाका लगा। दादा की यादों में भोजपुरी लोकसाहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् डॉ कृष्णदेवजी उपाध्याय का भी बहुत बड़ा स्थान है। वे सन् 1972 में उज्जैन, विक्रम विश्वविद्यालय में लोक साहित्य पर व्याख्यान देने आये थे। वे उज्जैन से खण्डवा आए। वे चार दिन खण्डवा में हम लोगों के साथ रहे। वे बहुत सरल और बहुत ममतामयी थे। चौके में जमीन पर बैठकर चूल्हे की गरम-गरम रोटी खाते हुए हमारी बड़ी बाई (बड़ी माँ) की अजस्र प्रशंसा करते रहे। बाद में उन्होंने एक पत्र लिखा था। पत्र में लिखा था, ''आप की विशिष्टता है, आपकी अप्रतिम सादगी। न कोई ढोंग, न तड़क भड़क। रामनारायणजी आपने जो क्षेत्र चुना उसमें आप अद्वितीय है अप्रतिम हैं। संस्कृत कवि ने कहा है, राम की वानरी सेना ने सेतु द्वारा समुद्र को पार तो कर लिया, परन्तु सागर की गहराई, उसकी गंभीरता तो मंथराचल ही जानता है। निमाडी लोक साहित्य पर कई विद्वानों ने अपनी लेखनी तो चलाई है, परन्तु उसके मर्म को, गहराई को, उसकी तलस्पर्शिता तो केवल उपाध्यायजी ही जानते है। मै खण्डवा के साहित्य कुटीर में रह कर एक भाई और भरा पूरा परिवार पा गया।'' सच में लोक साहित्य में विद्वान् सरलता की प्रतिमूर्ति ही होते हैं।

घर परिवार की बात करूँ तो महाकवि दादा भवानीप्रसादजी मिश्र भी साहित्य कुटीर परिवार में बड़े प्रेम से रहे। वे कहा करते थे, ''दुबला पतला डेढ़पसली का शर्माया-सा दोस्त साधारण आदमी नहीं है, कई बातों में असाधारण है। सबसे असाधारण बात है उसका द्रव्य के प्रति उपेक्षा भाव, गरीबी से रह लेने में भी आनन्द मनाना, उसका यह अपना गुण है। उस जैसा ही उसका परिवार भी है। पूरा परिवार उपाध्यायजी के रंग में रंगा हुआ है। स्वभाव की हद तक परिवार का हर सदस्य शील की मूर्ति है।' जहाँ चार बर्तन होते है, वहाँ आवाज तो होती ही रहती है'-यह कहावत उनके घर एक दम झूठ सिद्ध हो गई। नितान्त कलहहीन और पूरी तरह तुष्टि से परिपूर्ण किसी परिवार को देखना हो तो, आपको 'साहित्य कुटीर' खण्डवा जाना पड़ेगा।''

सच में दादा अपने परिवार को जितना प्यार करते थे, परिवार भी उन्हें उतना ही प्यार करता था। उनके छोटे भाई श्री शिवनारायणजी उपाध्याय उनकी अपनी अस्सी साल की उम्र में भी उनके लिए, उनके सामने एक छोटे बच्चे जैसे प्रेम से खड़े रहते थे। उनके छोटे भाई ने लिखा है, ''मेरे भाई ने एक कलम से गाँव की कच्ची पक्की पथरीली गलियों को पार कर दिल्ली के राष्ट्रपति भवन की मखमली गलियों पर कदम रखा।'' पद्म पुरस्कार समारोह में सम्मानित व्यक्ति के साथ एक या दो व्यक्ति को राष्ट्रपति भवन में जाने की अनुमति होती है। दादा को जब यह पता चला तो दादा ने कहा - मेरा भाई, भतीजा, बेटा, मेरे साथ न जायँ, तो मुझे ऐसे सम्मान से क्या प्रसन्नता। और सच में दो की जगह दादा के साथ पाँच लोग राष्ट्रपति भवन में पहुँचे। दादा ने कहा, ''जिस गाँव, जिस परिवार ने मेरी कलम को ताकत दी, वही मेरे सम्मान के समय मेरे साथ न हो, तो मेरा यह सम्मान व्यर्थ है।'' यह वर्ष दादा की जन्म शताब्दी का वर्ष है। दादा के साथ की अनन्त यादें हैं। इस अवसर पर लोक साहित्य, लोक की माटी के व्यक्ति को उनका लोक और उनका गाँव याद करता है। दादा हम बहन-बेटियों से कभी चरण प्रणाम नहीं करवाते थे, वरन् 'पाय लागूँ बईण' कहकर चरण छूते थे। किन्तु आज वही दादा हम सबके लिए प्रणम्य हो गये हैं।

13, समर्थ परिसर, ई-8 एक्सटेंशन
बावड़िया कला, त्रिलंगा पोस्ट आफिस,
भोपाल - 462039
मोबाइल : 09424440377 विकल्प : 09819549984
लेखिका स्व.रामनारायण उपाध्याय जी की पुत्री है

ऐसे थे रामादादा - पं. रामनारायण उपाध्याय

यह वर्ष 1970 के आस-पास की बात है, बड़ा ही कठिन समय था। रामादादा से कालमुखी गाँव लगभग छूट-सा गया था। कारण था उनका स्वास्थ्य एवं ढ़ेर सारे साहित्यिक-सांस्कृतिक, सामाजिक एवं राजनैतिक निर्वहन। बाबूजी का गाँव जाना भी कम हो गया था, सो कृषि आय भी धीरे-धीरे कम होती गई। घर में छोटे-मोटे मिलाकर 19-20 सदस्य थे, जिनमें कमाने वाले एक-दो थे। अधिकांश पढ़ने-लिखने वाले भाई-बहन थे, जिनकी पढ़ाई, शादी-ब्याह, बीमारी-सिमारी में कर्ज बढ़ता गया। एक दिन की बात है दादा को कुछ रुपये की सख्त आवश्यकता पड़ी। वे अपने परम मित्र एवं गाँधीवादी नगर सेठ श्री पूनमचंद जी गुप्ता के यहाँ पहुँचे। पूनम दादा एवं रामा दादा की दोस्ती कृष्ण-सुदामा सरीखी थी। मुसीबत में बहुत काम आते रहे सेठ जी। उस दिन भी देर तक गप्पें चलती रहीं, दादा अपनी बात कह नहीं पा रहे थे की उन्हें कुछ रुपये उधार चाहिए? पूनम दादा, रामा दादा के मन की बात भाँप गये, उन्होंने कहा- रामनारायण भाई कहो कैसे आना हुआ? दादा ने झिझकते हुए कहा- अरे भाई कुछ रुपयों की जरूरत आन पड़ी थी। पूनम दादा ने कहा- मैं शाम को तुम्हारे घर खुद देने आऊँगा। रामदादा ने ठहाका लगाते हुए कहा- हाँ जरूर आओ दो समझदार बैठेंगे तो चाय के साथ थोड़ी मूर्खता की बातें करेंगे। सायं 5 बजे के लगभग पूनम दादा अपनी सफेद एम्बेसेडर से ब्राह्मणपुरी के घर आए। एक घंटे तक ठहाके चले और जाते समय दादा के तखत के लोट (गाव तकिया) के नीचे एक पुड़िया रखी और कहा- ये लौटाने के लिए नहीं है, हाँ! और लगे तो कहना। उनके जाने के बाद दादा ने पुड़िया खोली तो उसमें दस हजार रुपये थे। उस समय दस हजार की कीमत आज के लगभग एक लाख से ऊपर थी, दादा अचंभित थे, रात में नींद नहीं आ रही थी, दादा को दमे (अस्थमा) की बीमारी थी, सो घबराहट होने लगी। मैं अक्सर दादा के पास ही सोता था। आ. बड़ी बाई (श्रीमती दादा) का पलंग उनके पास ही था। दादा को बेचैन देख बाई ने पूछा कांई वात छे, नींद क्यूं नी आई रई? दादा ने पूरा किस्सा डरते-डरते बताया। बाई ने कहा तुमने इतने रुपये क्यों लिये, दादा ने कहा, वो पुड़िया में रखकर चले गये, मुझे नहीं मालूम था कि दस हजार हैं। दोनों में देर रात तक विमर्श होता रहा, आखिर में तै हुआ कि जितने पैसे चाहिये वो भी उधार लेंगे, मुफ्त में नहीं। तब कहीं जाकर उन्हें नींद आई, लेकिन किस्सा सुनकर मेरी नींद उड़ गई। सुबह से उठकर दादा ने आवश्यक रूपये उधारी खाते में रखकर शेष राशि उन्हें लौटा दी और कहा पूनम भैया दोस्ती अपनी खरी रहेगी और उधारी तुम्हारी सौ टंच रहेगी मगर बगैर ब्याज की और ठहाके के साथ मैंने देखा एक पुरा युग बदल गया।

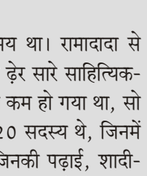

शिशिर उपाध्याय

6, सृजन शर्मा कॉलोनी बड़वाह
मो.99260-21858

निमाड़ लोक संस्कृति न्यास के जनक

दादा रामनारायणजी उपाध्याय ने अपने छोटे भाई शिवनारायणजी उपाध्याय के चार बेटे पाँच बेटियों की स्वेच्छा से परवरिश की। हमारी बड़ी माताजी श्रीमती शकुंतला रामनारायण उपाध्याय के निधन के बाद दादा ने धर्मपत्नी श्रीमती शकुंतला उपाध्याय की स्मृति में निमाड़ लोक सांस्कृतिक न्यास बनाया, जिसके न्यासी परिवार के सदस्यों को बनाया। श्री तरुण कुमार नागड़ा, श्री प्रफुल्ल नागड़ा व डॉ. अक्षय वर्मा। दादा के पास बहुत छोटी जमीन खण्डवा में थी। वो छोटे भाई व बड़े भाई के बच्चों, भतीजों सबको जमीन को बिना तोड़े जोड़ना चाहते थे। सो ललित भाई की सलाह पर उन्होंने निमाड़ लोक संस्कृति न्यास का गठन किया। जिसमें बहुमूल्य लोक-साहित्य की अनमोल पुस्तकों की अकूट धरोहर सुरक्षित है। इस न्यास की पुस्तकों के सहारे से अनगिनत लोगों ने शोध-प्रबंध पूर्ण किया। स्वयं दादा के कृतित्व व व्यक्तित्व पर कई महाविश्वविद्यालयों के माध्यम से शोध-प्रबंध का काम हुआ। निमाड़ी व अन्य लोक बोलियों पर आज भी न्यास का सहारा लेकर शोध-प्रबंध व लघु-शोध-प्रबंध व अन्य शोधकार्य हो रहे हैं।

हेमंत उपाध्याय

सुधीजनों की दृष्टि में रामा दादा

निमाड़ी लोक संस्कृति को अपने अखिल भारतीय अस्तित्व का बोध भाई रामनारायणजी के कारण ही प्राप्त हुआ है। किसी भी व्यक्ति की प्रतिभा की विद्वता का मूल्यांकन उसके द्वारा प्राप्त उपाधियों से किया जाता है, परन्तु रामनारायण भाई ने यह सिद्ध कर दिया कि सतत् लगन, स्वाध्याय और चिंतन-लेखन से नया कीर्तिमान कायम किया जा सकता है। निमाड़ी के लिये किये गए उनके कार्यों ने इस क्षेत्र में शोध के नए क्षितिज खोल दिए हैं। खण्डवा का यह सौभाग्य था कि पूर्व में वह साहित्यकार दादा माखनलाल चतुर्वेदी के माध्यम से प्रतिष्ठित हुआ और भाई रामनारायण के कारण उसने अपना वह स्थान अक्षुण्ण बनाये रखा है। उन्हीं के कारण निमाड़ की माटी की सुरभि साहित्य में महक रही है।

- डॉ. शरद पगारे

रामनारायण उपाध्याय के लेखन में मैंने कभी किसी प्रकार की लापरवाही का कोई लक्षण नहीं देखा, जो कुछ कहते हैं, तोल कर कहते हैं, परख कर कहते हैं। उन्होंने पर्याप्त लिखा है, किन्तु उस लेखन में ऐसा कुछ कदापि ही मिलेगा जिसे अतिरिक्त या फाजिल कहा जा सकता है। वह जो कुछ लिखते हैं, प्रकाशनीय नहीं प्रकाशवान होता है। इसलिए उनके लिपिबद्ध विचार जहाँ-तहाँ सहज ही प्रकाशित होते रहते हैं और इसके सिवाय वे व्यवस्थित इतने हैं कि चिराग लेकर ढूँढ़ो तो उतना व्यवस्थित आदमी ना मिले। क्या कोई ऐसा आदमी मिल सकता है, जिसने अपने पत्र व्यवहार की व्यक्तिवार और संस्थावार फाइलें बना रखी हो। यदि किसी ने एक पत्र भी लिखा है तो उपाध्यायजी के पास उसकी एक फाइल है। उनकी इन फाइलों में कितनी बहुमूल्य सामग्री सहज संकलित होती चली गई है। मेरा ख्याल है कि पत्र संग्रह में प्रसिद्ध पंडित बनारसीदासजी चतुर्वेदी इस क्षेत्र में निश्चित ही उपाध्यायजी से बाजी नहीं मार सकते। यह सारा संग्रह उन्होंने किसी उपयोग के विचार से नहीं किया है, अपने व्यवस्थित स्वभाव ओर व्यक्तियों के प्रति सहज प्रेम के कारण किया।

पं. भवानीप्रसाद मिश्र

उपाध्यायजी उन व्यंग्यकारों में हैं जो चिऊंटी की तरह काटते तो हैं पर पीछे जलन नहीं छोड़ते। व्यंग्य का लक्ष्य आवरण चीरकर असलियत को सामने लाना होता है न कि व्यंग्यकार की हृदय की दुर्गंध को दूसरों पर थोपने के लिए। कई निम्नवृत्ति के व्यंग्यकार बातचीत के संदर्भ में अपनी कुत्सित वृत्ति को सज्जनों पर थोपकर असलियत पर आवरण डाल देते हैं। ऐसे लोग साहित्यिक नहीं, व्यक्तिगत स्तर के कटहा होते हैं। दूसरे व्यंग्यकार वे हैं- जो अपनी ओर नहीं देखते। उनकी खुली हुई आँखें सामने के लोगों को देखती हैं। ये लोग स्वयं के कृत्यों के लिए आदर्श प्रतिमानों से नहीं मापते पर दूसरों के कृत्यों के लिए आदर्श प्रतिमानों से नापने में कोई मुरौव्वत नहीं करते और हर समय दूसरों का मुखौटा खींचना ही अपना परम कर्तव्य समझते हैं। यही उनकी प्रतिभा का सदुपयोग है। उपाध्यायजी का व्यंग्य इन दोनों से ऊपर और सात्विक मनोवृत्ति की परिणिति है।

डॉ. राममूर्ति त्रिपाठी

स्वास्थ्य उनका उपाध्यायजी का चिंताजनक रहता। पर श्रम वे बराबर करते रहते। लिख अवश्य देंगे कि 'यह समय मेरे आराम का है, मैं इन दिनों लिख-पढ़नहीं सकूँगा'। पर लंबे समय अंतराल के बाद जब-जब उनसे मिलना हुआ है वे दूर की किसी आलमारी में से एक नई किताब निकाल कर देंगे और उस पर हस्ताक्षर करते हुए धीरे से कहेंगे- 'पड़ा-पड़ा क्या करता ? उन्हीं दिनों आखिर यह पुस्तक लिख दी।' मेरे लिए तो जब उनकी यह 'लिक्खाड़-वृत्ति' अनुकरण के बाद मजाक का भी कारण बन गई। यदि दो-चार माह बाद मिलना होता तो मैं पूछता हूँ क्या हाल है 'जच्चाखाने के?' वे फौरन कहेंगे - 'जच्चा' आपके सामने स्वस्थ है और नई किताब देते हुए मुस्कुराने लग जाएँगे, यह रहा 'बच्चा' और जब मैं पूछता हूँ 'कैसी रही प्रसव पीड़ा ? तो फिर वही बात 'अब ना सोऊँ सेज पिया की' और फिर परिवार के सभी सदस्यों का समवेत ठहाका।

बालकवि बैरागी

निमाड़ जनपद इस वर्ष अपने दादा पं.रामनारायण उपाध्याय के जन्मशती वर्ष की पूर्णाहुति कर रहा है, दादा का स्मरण लोक जीवन के दर्पण में अपने राष्ट्र की आत्मा का दर्शन करना भी है। जैसे यमुना, रामगंगा, कर्णाली (घाघरा), ताप्ति, गंडक, कोसी, काक्षी, चम्बल, सोन, बेतवा, केन और दक्षिण टोस ये सारी नदियाँ गंगा की धाराओं में समाहित होकर एक विराट जल तीर्थ बन जाती है, उसी तरह मालवी, निमाड़ी, बुन्देली, राजस्थानी, भोजपुरी, अवधि, ब्रज इत्यादि लोक भाषाएं भी अपनी विराट सांस्कृतिक और लोक परंपराओं के रंगों से संपूर्ण राष्ट्र का सुन्दरतम और वरेण्य चित्र बनाती है। इस चित्र में निमाड़ जनपद की निमाड़ी का रंग भरने वाले चितेरे थे पं.रामनारायण उपाध्याय 'जब निमाड़ गाता है, 'में उपाध्याय जी निमाड़ के उत्तरी आकाश में उगते हुए तारे को निहारती हुई एक निमाइन नायिका की अलबेली छवि हमें दिखाते हैं। यह हठीली निमाइन अपने स्वामीजी से जिद कर रही है, कि मुझे इससे इसी शुक्र के तारे की बिंदी गढ़वा दो, तब हमें वह सौंदर्य बोध के जिस उच्चतम धरातल पर ले जाते हैं, वह केवल लोक आराधक सर्जक के ही वश का काम है, यह काम नागरी सभ्यता में गुम सर्जना के लिए तो संभव ही नहीं है।

जब रामनारायण जी युवा थे तब उन्हें एक बार महात्मा गांधी के दर्शन का सुयोग मिला। गांधी जी ने तब युवा रामनारायण को कहा था कि यदि सचमुच राष्ट्र की सेवा करना हो तो गाँवों में जाओ, जहाँ वास्तव में भारत माता का वास है, गाँवों की सेवा ही सच्ची राष्ट्रसेवा है। रामनारायण जी इस मन्त्र को लेकर निमाड़ जनपद की सांस्कृतिक विरासत और लोक चेतना से जनजागरण का न केवल नवल अभियान चलाया बल्कि इस लोक साहित्य की संजीवनी से अपने साहित्य को भी दीप्त किया। यह हमारी परम्परा रही है कि लोक साहित्य की संजीवनी शास्त्रीय अनुशासनों के लिए भी आवश्यक होती है। अन्यथा महर्षि पाणिनी अपनी अष्टाध्यायी में सैकड़ों छोटे-छोटे गाँवों और बस्तियों के नाम लिखकर उनके बहु आयामी ग्राम्य व्यवहारों की चर्चा ना करते, रामनारायण जी ने इसी महत्त्वपूर्ण अभियान में आजन्म लगे रहे। वह लोक जीवन से कभी अलग नहीं हुए, यही लोक जीवन उनके व्यंग्य की तीखी धार बनकर अन्याय का विरोधी स्वर बनता है, तो निमाड़ की कड़ी धूप में हार ना मानने वाली श्रमजीवी जीवन की सुषमा उनके ललित निबंधों में अपनी धूप छाँव बादल, और अपने इन्द्रधनुष लेकर अवतरित होती है।

गोविन्द कुमार 'गुंजन'

गणेश गनी की कविताएँ

अनूठे बिम्बों युक्त काव्य-भाषा किसी कवि के अनुभूत जगत, संज्ञान, प्रश्नाकुलता, प्रतिभा, अभिप्राय, सरोकार और संवेदनों का प्रकट रूप होती है। भारतीय परम्परा में बिम्ब रचने की सामर्थ्य को ही कवि-प्रतिभा कह दिया गया। पश्चिमी आलोचकों ने कविता को केवल बिम्ब और रूपक के मामले तक ही सीमित कर दिया। लेकिन फ़िर ल्यूइस ठीक ही कहते हैं कि बिना अंतर्वेग और भावावेश के कोई भी पद्यात्मक दृश्य काव्य बिम्ब नहीं हो सकता। इस बार 'रेखांकित' में चयनित युवा कवि गणेश गनी ऐसे ही कवि हैं जिनके बिम्बों की तह में दोनों हैं-इमोशन्स भी और पैशन भी। गणेश न सिर्फ अनूठी इमेजरी से कविता रचते हैं बल्कि अपने अभिप्राय और सरोकार से उस इमेजरी को कविता से बाहर लाकर एक स्वायत्त जीवन्त मानवीय बिम्ब की तरह स्थापित करते हैं। थोड़े सरल शब्दों में कहूँ तो गणेश की कविताओं में इमेजरी का प्लेसमेंट एक ओर उनकी कवि-प्रतिभा का परिचायक है तो कविता से पृथक वे बिम्ब अपने आप में कविता हैं। इस युवा कवि की कविता से जुड़ना दो तरह की अनुभूति देता है। एक तो कवि-मन से जुड़ने की और दूसरे उस कवि के लोक से जुड़ने की। मैंने जितना गणेश की कविता और गद्य को पढ़ा है, मुझे लगता है यह सारा कविता का कार्य-व्यापार अंततः उस लोक की चिन्ता में ही किया गया है। उनकी पहली ही कविता 'यह समय नारों का नहीं हो सकता' में शीर्षक ही किसी लाउड या सपाट कविता का संकेत देता है लेकिन जैसे ही आप कविता में प्रवेश करते हैं हमारे अपने समकालीन परिदृश्य के अनेक जलते हुए दृश्य-बंध हमें घेर लेते हैं-'एक आदमी कुएँ में दरिया भर रहा है/ एक आदमी नदी के किनारे ओस चाट रहा है/ एक आदमी ने काट दी जीभ अपने ही दाँतों से'। कविता के क्लाईमेक्स में कविता का शीर्षक रखते हुए कवि अपने समय की नब्ज को मानो भींच लेता है। दूसरी कविता 'यह उत्सव मनाने का समय है' में वे केवल अक्षर की अस्मिता की बात नहीं करते बल्कि उसके लोक में तदाकार होने की प्रक्रिया जो कि एक युगीन प्रक्रिया है, को स्थापित करते हैं-'अचानक नहीं हुआ यह सब' और 'कुछ अक्षर फल बाँट रहे हैं/ तो कुछ औजार युद्ध के दिनों में'। इस कविता की सबसे मार्मिक पंक्ति है-' बस केवल 'ब' के पास नहीं हैं/ बाँटने को गेहूँ की बालियाँ।' यह व्यथा पूरी कविता में यहाँ से वहाँ तैरती दिखाई देती है और अंत में लोक से जुड़कर कविता और इस तरह समूची शब्द-सत्ता को दृढ़ता से स्थापित करती है। 'परछाई' शृंखला की तीनों कविताएँ सजीव बिम्बों और फैण्टेसी की अद्भुत कविताएँ हैं-कुछ इस तरह कि इसमें या तो आप प्रवेश करेंगे या आपकी परछाई! यहाँ क्षितिज में ढलते सूरज द्वारा परछाई का अपहरण और उससे उपजा अनिर्वचनीय एकांत है। इतनी छोटी कविता केवल बिम्बों के माध्यम से इतनी ताकतवर कविता हो सकती है, अचम्भा होता है। शेष दोनों कविताओं में परछाई अपने विभिन्न अर्थों में आती हैं लेकिन एक राजनीतिक चेतना के साथ! 'एक आदमी जश्न मना रहा है' एक विशुद्ध राजनीतिक कविता है जो समकालीन राजनीतिक दुरभिसंधियों और जुमलों की असलियत उघाड़ती है। यहाँ कवि ने बहुत साफ तौर पर एक प्रतिबद्ध भाषा के जरिये अपने समय की विद्रूपताओं को नंगा किया है लेकिन पंचलाइन में कवि उसे फ़िर बिम्ब-दृश्यों तक लाकर समाप्त करता है-'बच्चे उम्मीद से टटोलते हैं/ अपनी जेबों में चाँद-तारे/ और पिता तलाशते अच्छे दिन।' कवि की यह बिम्बात्मक अवधारणा हमें चौंकाती नहीं बल्कि एक बेचैनी से भर देती है। 'बच्चे की गुल्लक तक!' कविता में राजनीतिक-आर्थिक विसंगतियों पर कवि का अचूक प्रहार है जहाँ बाजारवाद की पैठ बच्चे की गुल्लक तक पहुँच गई है और निराश निष्ठुर राजा के समक्ष एक फार्मूलेबद्ध प्रजा अपनी सहनशीलता की 'रेंज' बढ़ा रही है। यहाँ कवि ने 'बोलना' और 'सुनना'-दो क्रियापदों द्वारा दो वर्गों की खूबसूरत बाइनरी रची है। जाहिर है जब कवि के भीतर एक सजग-सचेत राजनीतिक संज्ञान मौजूद हो, बहुत-सी चीजें सूत्रों के रूप में कही जा सकती है- कविता वही काम करती है। 'किस्से चलते हैं बिल्ली के पाँव पर' एक भिन्न तेवर की कविता है। इसका कुछ हिस्सा अंडरटोन है कुछ मुखर। इस कविता के शुरूआती दो पैरा में गजब की सघनता है-मैं कहूँगा बिम्बात्मक सघनता! कवि ने अपनी प्रतिभा से मानो एक संहारक सत्ता के वे शब्द नोच लिए हैं जिसके पीछे एक भयावह नंगा सच छुपा है। 'वे पूछते हैं पिता से' कविता में दीवाली का दृश्य है लेकिन लछमी के पदचिन्ह कब संसद भवन तक पहुँच जाते हैं, पता ही नहीं चलता। और यह किसी बेध्यानी में नहीं एक उत्सव के उजाले में छुपे भयावह अंधकार को पहचानने की प्रक्रिया के तहत होता है। 'मैं कहानी सुना रहा हूँ' माँ और उसके न रहने पर लिखी एक अद्भुत मार्मिक कविता है-हिलाकर रख देने वाली! और तो और खूबसूरती देखिए कि इस कविता में कहीं भी 'माँ' शब्द का प्रयोग नहीं किया गया है। इसे कहते हैं कवि की असली संवेदना जो लोक और प्रकृति के माध्यम से अपनी माँ की उपस्थिति और अनुपस्थिति दर्ज करती है। यह कविता नए युवा कवियों के लिए एक सीख की तरह है। 'अब भगवान क्रोधित होंगे' समूचे सत्ता तंत्र पर एक कटाक्ष है जो इस देश के मानस में धँसी अंध-श्रद्धा, अंध विश्वास के जरिये शासन कर रहा है। 'थोड़ी मिट्टी माँगने आया हूँ' कविता में अपने लोक-संसार की ही नहीं समूचे पर्यावरण की चिंता है लेकिन एक स्लोगन या फैशन की तरह नहीं ...एक व्यथा...एक प्रार्थना...एक उम्मीद के तौर पर। यह उसी दूसरी तरह की पाठकीय अनुभूति है जिसका जिक्र टिप्पणी के आरम्भ में किया। युवा कवि गणेश गनी समकालीन हिन्दी कविता की एक विलक्षण प्रतिभा है। इस युवा कवि के पास फैंटेसी/ मेटाफर/ इमेजरी/बिम्ब महज काव्य उपादान नहीं हैं-एक कवि-व्यक्तित्व की अंतर्धाराएँ हैं। अब ऐसे कवि के बारे में और क्या कहना जिसके लिए 'पृथ्वी का लोकनृत्य ही एक वास्तविक खगोलीय घटना है' या जिसकी 'तितलियों को पता है कि उनके पैर केवल स्वाद चखने के काम आते हैं।' इस युवा कवि की मूल प्रतिज्ञा यही है कि वह लाल किले के कालपात्र में भूखे बच्चों की माँ के संतापों और पिता के आक्रोश को किसी तरह दर्ज कर सके।

निरंजन श्रोत्रिय

यह समय नारों का नहीं हो सकता

इन दिनों एक आदमी /नींद में बड़बड़ा रहा है
एक आदमी /हल चलाते हुए घनघना रहा है
एक आदमी /यात्रा करते हुए बुदबुदा रहा है
एक आदमी /कुएँ में दरिया भर रहा है
एक आदमी /चिंगारी को हवा दे रहा है
और एक आदमी
नदी के किनारे पर ओस चाट रहा है।
एक लकड़ी अकेले ही जल रही है
धारों पर एक गडरिया /जोर की हांक लगा रहा है
और भेड़ें हैं कि /कर रही अनसुना
जब जीभ का हिलना बेमानी हो गया
और लगने भी लगा कि/बोलने के लिए
जीभ का होना जरूरी नहीं/ तब एक आदमी ने
काट दी जीभ अपने ही दांतों से
इन दिनों कुछ मूक बधिर बालक
सड़कों पर घूम रहे हैं
यह समय नारों का नहीं हो सकता।

यह उत्सव मनाने का समय है

अचानक नहीं हुआ यह सब
कि किताबों में रखे फूल
चुपके से खिल रहे हैं बाहर गमलों में
तितलियाँ सब रंग समेटे किताबों से निकल कर
फड़फड़ा रही हैं शाखों पर
एक बादल का टुकड़ा
पेड़ की छाया में बैठकर
प्यासे कौवे को सुनाना चाहता है कथा पानी की।

अचानक नहीं हुआ यह सब
कि कुछ अक्षर फल बाँट रहे हैं
तो कुछ औजार युद्ध के दिनों में
अ बाँट रहा है अनार
और क सफेद कबूतर
द बाँट रहा है दराटियाँ
और ह हल और हथौड़े
बस केवल ब के पास नहीं हैं
बाँटने को गेहूँ की बालियाँ
पर स नया सूरज उगाने की फिराक में है।

अचानक नहीं हुआ यह सब
कि उसकी छड़ी फिसल गई हाथ से
और बाहर मैदान में
पेड़ बनकर लहलहा रही है
वह हैरान है कि
ये बच्चे बदल गए हैं अक्षरों में
या अक्षर बच्चों में ?

उसकी जीभ तालू से चिपक गई
हथेली से खारापन फर्श पर टपक रहा है
बच्चों की हँसी वाली मीठी फुहार
कानों से पेट तक पहुँच रही है
हाँ, यह सिद्ध हो गया अचानक
कि बालक और अक्षर जब
दांत काटी रोटी जैसे लगें
तो समझो कि यह उत्सव मनाने का समय है।

परछाई

-1-
दो परछाइयाँ/ बैठती हैं रोज नदी के किनारे
सुख-दुःख बाँटती हैं/ लड़का-लड़की बाँटते हैं
केवल खामोशी / सूरज ढलते ही
हो जाती है मुक्त / और फैल जाती हैं-
परछाइयाँ क्षितिज तक / प्रेमी बिना परछाइयों के
लौट जाते हैं/ अपने-अपने घरों को
-2-
उसने कभी नहीं देखी
अपनी परछाई
जब वह चलता है
परछाई बैठी रहती है
जब वह बैठता है
परछाई चल देती है
बहुत समय से
कर रहा था वह प्रयास
कि परछाई को बाँध सके
आज उसने जब हारकर
फेंक दी लोहे की जंजीर नदी में
परछाई अब उसके
चल रही थी साथ-साथ
-3-
एक राजा के दरबार में
पेश किया सिपाहियों ने
जंजीरों में कैद
बिना परछाई के एक आदमी को
हुक्म की तामील हुई-
उसे फाँसी दी गई
उधर कैदखाने में कैद थी
जो लड़की दो-दो परछाइयों वाली
उसे अब एक परछाई से
मिल गई थी मुक्ति / राजा ने भी
उसकी रिहाई का /कर दिया जारी फरमान।

एक आदमी जश्न मना रहा है

टीवी पर एक आदमी
कई किस्म के ताबीज बेच रहा है
जिनके साथ अंधविश्वास मुफ्त है
एक आदमी
अलग-अलग रंगों का पानी बेच रहा है
जिनके साथ नशे एकदम मुफ्त हैं।

संविधान की कुरसी पर बैठा
एक आदमी ईमान बेच रहा है
एक आदमी धर्म बेच रहा है
एक आदमी पृथ्वी को टुकड़ों में बेच रहा है।

अपने खेत की मेड़ पर बैठा
एक आदमी अपने खेत बेचने की सोच रहा है
एक आदमी कर्ज चुकाने के वास्ते
अपने प्राणों की सौदेबाजी कर रहा है।

उधर इंडिया गेट पर बैठा
एक आदमी बेच कुछ नहीं रहा
पर खरीदने की फिराक में है-
जनता का समय
वह सौदागर पक्का है
बदले में सपने देता है चमकदार
वह जश्न मनाना चाहता है।

इस देश के 'मालिक' हैरान हैं
कि उनके बच्चों की जेबों में
नहीं भरे गए चाँद तारे
पटवारी अब भी लेता है चाय-पानी
डीसी का दफ्तर बंद रहता है
आम आदमी के लिए
आज भी विधायक अपने एरिया का थानेदार है
प्रधानमंत्री को लगता है कि
जश्न मनाना जरूरी है।

ऐसे में इंडिया गेट से दूर /बाघ को मालूम है कि
उसकी सुरक्षा पिंजरे में नहीं
बल्कि जंगल में है /घोड़ा जानता है कि
नाल से बनी अंगूठी नहीं बदलती किस्मत
चाबुक का खेल चलता ही रहता है
बच्चे उम्मीद से टटोलते हैं
अपनी जेबों में चाँद-तारे
और पिता तलाशते हैं अच्छे दिन।

गूगल पर खोजबीन

कई दिनों से
बच्चों ने चंदा मामा नहीं कहा
पिता कविता सुनाना भूल गए
और माँ लोरी गाना

कई दिनों से /देवता के प्रवक्ता ने
कोई घोषणा नहीं की /लोग डरना भूल गए
और गूगल पर खोजबीन बढ़गई

कई दिनों से /बहुरूपिया इधर से नहीं गुजरा
भूल गए दोस्त/ मुखौटों की पड़ताल करना।

कई दिनों से / पुजारी परेशान है
मंदिर के चौखटे पर कोई मेमना नहीं रोया
शहद चोरी होने पर भी
मधुमक्खी ने नहीं की आत्महत्या।

कई दिनों से
सपने आते हैं मगर
बाढ़और भूकम्प की खबरों के साथ
जन्म और मृत्यु का डंका बजाते हुए
जागते रहो की बुलंद बांग के साथ।

कई दिनों से
यह भी हो रहा है कि
बादलों के मशक छलछला रहे हैं
बीज पेड़ बनने का सपना देख रहा है
कोयल से रही है अंडे
अपने ही घोसले में
कई दिनों से
एक कवि जाग रहा है रातों में।

बच्चे की गुल्लक तक!

हिमपात के बाद
बिल्ली आग के पास बैठी है
कुत्ता सूखे फाहों पर सुस्ता रहा है
छत से बर्फ हटाने वाला आदमी सोच रहा है
कि क्यों कई रातों से भला
भालू उसके सपने में नहीं आया
जबकि पहाड़ की कन्दरा में
शीतनिद्रा तब टूटेगी
जब बाहर बर्फ पिघल जाएगी सारी की सारी
भाग्य खिलेगा बसंत जैसा।

एक हिमनदी पहाड़ से खिसक रही है

ढेर सारा बर्फ लादे पीठ पर
एक औरत की पीठ से चिपका बच्चा देख रहा है
आग पर बर्फ को पानी बनते
वह औरत सोच रही है
कि कहाँ जाती होगी
जो थोड़ी बर्फ उड़ रही है भाप बनकर
वो बच्चा चुपके से फिसलना चाहता है पीठ से
पर माँ जानती है
अभी जमीन उबड़-खाबड़ है।

प्रजा की सहनशीलता बढ़ती जा रही है
पर राजा को पता है सोलह आने
उसकी नाक कट गई है
अब वो जीभ से सूँघ लेता है फिर भी
जब भी निकलता है शिकार पर
जंगल सदमे में चला जाता है।

लूट के तरीके बदल चुके/ बाजार सेंध लगाकर
हो चुका है दाखिल घर में
उसकी नजर पहुँच चुकी है
बच्चे की गुल्लक तक भी
अलाव तापता एक बूढ़ा
बच्चों को सुना रहा है कथा
राक्षस और देवता की।

मैं सोचता हूँ /कि जितना बोलना था
बोला कहीं उससे अधिक गया
जितना सुनना था /सुना कहीं उससे कम गया।

वो जब चुप रहता है

वो जब चुप रहता है
उसके चेहरे पर उस वक्त
चाँद आराम कर रहा होता है।
वो जब हँसता है /उसकी आँखों से
तितलियाँ उड़ रही होती हैं।

वो जब रूठता है / ऋतु बदल जाती है तब तब

जब लगता है कि /वो कुछ नहीं कर रहा
दरअसल तब वो इंद्रधनुष पर
प्रत्यंचा चढ़ाने के बारे में सोच रहा होता है।

उसका खेतों में टहलना अजीब है
वो पेड़ों से बातें करता है
पत्तों से हरियाली मांग कर जेबें भरता है
फूलों को मशविरा देता है।
उसके अपने खेल हैं
वो साँप-सीढ़ी नहीं खेलता
और न ही शिकार/ जब लगता है कि
वो कागज के जहाज उड़ा रहा है
उस क्षण वो हवा में जाकर
घूमती पृथ्वी को निहार रहा होता है।

किस्से चलते हैं बिल्ली के पाँव पर!

उसने आग से मांगे चमकीले रंग
और रात के कैनवास पर उकेरी
एक मशाल जलती हुई
इसे थामने के लिए जिस हाथ की
कल्पना की थी
वो हाथ ज्वालामुखी से निकला
और आकाश में ऊँचा उठता गया
अँधेरे में जहाँ जलती हुई मशाल बनी थी
यह धधकता हुआ लावा ठंडा होने पर ही
हुआ कड़ा और मजबूत

धरती पर उजाले का एक बिन्दु बना
अंधकार बहुत बड़ा था
हत्याएँ करने को
और जहाँ हत्यारे को पकड़े जाने का भय था
वहाँ खोज निकाला हत्या करने का नया तरीका
वह आत्महत्या करने को उकसाता था बस

जिन लोगों को अब तक नहीं हुआ था यकीन
कि अराजकता गणतंत्र की दहलीज तक पहुँची है
उनकी आँखें फटी और मुँह खुले रह गए
जब संविधान के पहले पन्ने से न्याय जैसा शब्द
राजधानी में अदालत के बाहर सड़क पर आ गया
वो ऐसे सोता है इन दिनों
लोग सोचते हैं सुषुप्त ज्वालामुखी होगा
वो अभागा कहलाया जब से
उसने अपने सर पे
लालटेन टांगना शुरू किया तबसे
हालांकि बदला कुछ नहीं अब तक

उस पर शक करना ठीक नहीं होगा
वो कविता की लय जानता है
वो जानता है यह भी कि
आग से खेलना उतना खतरनाक नहीं होता
जितना भूख से
वो खाली पेट आग पर चल देता है
वो आठवें सुर के गीत लिखता है
कहते हैं कि वो ताल का भी पक्का है
बर्फ के दिनों में किस्से चलते हैं बिल्ली के पाँव पर
और किस्सागो अखरोट भी तोड़ता है ताल में।

वे पूछते हैं पिता से

आज द्वार के दोनों ओर दीये जले हैं
दीवाली खड़ी है घर की देहरी पर घूंघट उठाए
औरतों ने धो डाले
आँगन से अपने पैरों के निशान
और बिछा दी उस पर मूंज की महीन परत
सजा दी आँगन में रंगोली
लछमी के पैरों के चिन्ह
छापे गए दरवाजे तक

बच्चों की चमकती आँखों/ और दीये की रोशनी में
पेट की आग बुझाने वाले
सरकारी कानून की घोषणा
साफ देखी जा सकती है
जर्जर चेहरों पर/ इस उत्सव जैसे नजारे में भी
बच्चे हैरान हैं कि
उनकी बीस बीघा जमीन से भी
कितने विशाल खेत होंगे सरकार के पास

वे पूछते हैं पिता से
क्या फाकों में गुजर-बसर करने वालों की
बेसुध सोएंगी रातें भरपेट खाकर
अब वह हलवाहा कैसे समझाए कि
संसद के अहाते में नहीं उगती फसलें....

खेतों से रोटी तक का रास्ता
गुजरता है संसद भवन से केवल
वहीं पर होता है फैसला
फाकामस्ती और खाऊ चक्कियों के बीच का

वह हलवाहा कैसे समझाए कि
उनके हिस्से की रोटी के झगड़े-टंटे में
हर बार संसद भवन जीतता है
और किसान हार जाता है
वैसे बाजी में हार-जीत पर
अक्सर नहीं उठाए जा सकते सवाल
केवल आत्महत्या की जा सकती है आसानी से

लालकिले के दस्तावेजों में
दर्ज नहीं हो सकतीं
भूखे बच्चों के माओं की संताप आहें
और पिता के आक्रोश का लेखा-जोखा।

मैं कहानी सुना रहा हूँ

भोर से ठीक पहले
मैं तुमसे अचानक मिला
घर के बाहर बनी पत्थर की सीढ़ी पर
जैसे तुम मेरा ही कर रही थी इंतजार
दरअसल मेरे जाने के बाद के क्षण से ही
हो जाता था तुम्हारा इंतजार शुरू।

कितने बरस बीत गए
तुम्हारे पैर छुए और फिर
गले लग अपने दुःख आँखों से बहा आया
आँख खुली तो देखा अभी भोर का तारा
पहरेदारी में जाग रहा है
जबकि तुम्हारा इंतजार अब भी बैठा है
ठीक उसी जगह दहलीज के बाहर
पत्थरों की पहली सीढ़ी पर।

मैं सच कहूँगा/ पर कुछ लोग कहेंगे
मैं कहानी सुना रहा हूँ...
ठीक यहीं से खेत बिछा रहता है
और खेत में बीचोंबीच
सर उठाए अखरोट का पेड़ करता है पहरेदारी
पहली सीढ़ी पर बैठे इंतजार की।

तुमने जीवन भर न सोने की चूड़ियाँ पहनी
न तो कोई बटुआ रखा अपने पास
तुमने कभी करवा चौथ के बारे सुना भी नहीं
पर तुम्हारे अधिकतर दिन करवा चौथ जैसे ही बीते
हालांकि तुम्हारा जाना कोई नई घटना नहीं है
पर कुछ जल्दी ही चले जाने के कारण भी तो हैं...
तुमने अपने जीवन के कुछ साल
इस अखरोट के पेड़ को दिए
कुछ साल पूर्णिमा के रोज चाँद ले जाता तुमसे
सामने नदी पार वाला मीठे पानी का झरना भी
तुम्हारे ही दिए बरसों को जी रहा है
बाकी तुम्हारे ही बचे हुए दिन पिता काट रहे हैं।

अब भगवान क्रोधित होंगे

तुम्हारा खेल चलता रहेगा /तब तक केवल
जब तक अँधेरा /तुम्हारे खिलाफ नहीं हो जाता।
यह भी सुन लो-/तुम्हारा मंच
तुम्हारे नाटक /तुम्हारा किरदार
तुम्हारे मुखौटे /बचे रहेंगे तब तक केवल
जब तक अँधेरा नहीं लिखता आत्मकथा।
अभी तो कर दिए स्थगित / सारे शोध
सुर और संगीत साधकों ने /क्योंकि
खानगीर पत्थर पर घन मारते मारते
घन की आवाज में एक नया सुर साध रहा है
चिरानी स्लीपर चीरते चीरते
आरी की आवाज में
एक नई हरकत डाल रहा है।

फिर भी दीवार पर चिपकी घड़ी बता रही है
कि समय जैसी कोई चीज नहीं होती
पृथ्वी का लोकनृत्य करना ही
वास्तव में एक खगोलीय घटना है।

एक साजिश रची जा रही है निरंतर
डर के मारे लोग भाग रहे हैं /घर छोड़कर
बच्चे डरे हुए घर लौट रहे हैं
भविष्यवाणी करने वाले
स्टूडियो में बैठे इंटरव्यू दे रहे हैं
जो रोकना चाहता है वो मारा जाता है।

फिर भी कुछ बातें भूली नहीं गई हैं
ठंडे रेगिस्तान में
चन्द्र और भागा के प्रथम मिलन का क्षण
हवा को याद है/ जब उसने बधाइयाँ गाईं थीं
तितलियों को पता है
उनके पैर केवल स्वाद चखने के काम आते हैं।

और यह भी हो रहा है इधर
नन्हा बालक मूर्ति को खिलौना समझ रहा है
पुजारी पिता उसे समझा रहा है
कि देवता की इस मूर्ति में विराट शक्ति है
बच्चा परखने के लिए मूर्ति को पटक देता है
पुजारी टुकड़े समेटते हुए कहता है-
अब भगवान क्रोधित होंगे
और बच्चे को डाँट देता है।

थोड़ी मिट्टी मांगने आया हूँ

एक सुबह बांग से पहले
उसे एक सपना आया
वो भागना चाहता था बचकर
पर उसके पैर मिट्टी ने पकड़े थे पक्के
उसने अपनी साँसों को
सम्भाल रखा था मुश्किल से
नींद खुलने पर भी हांफना जारी रहा।

दिन चढ़ते ही उसे लगा कि
अब अपनी साँसें गिरवी रखे
खेत वापस मिलने तक /उसकी चिंता यह भी है कि
नदी की साँसों को कैसे बचाया जाए
पेड़ों के पास कम-से-कम
जंगल तो है छुपने के लिए।

रात ढलने लगी तो/ दीवारों की धड़कन बढ़गई
आँगन सिसकने लगा
एक कोने में बैठा आसमान को ताकता
कुत्ता सुबकने लगा /दूसरे कोने में खाट पर लेटा
तारों की ओर टकटकी लगाए
वो प्रार्थना करने लगा।

अंतिम प्रहर में
आँगन पीतल जैसी रोशनी में चमकने लगा
उसके सिरहाने चाँद आ बैठा
उसके माथे को अपनी उँगलियों से
सहलाते हुए बोला
केंचुआ अपनी साँसें मिट्टी में रखता है
मछली के गले में नदी बहती है
बैल अपने खुरों में खेत रखता है
तुम क्यों चिंता करते हो मित्र!
देखो...मैं इनसे थोड़ी साँसें/ थोड़ा पानी
थोड़ी मिट्टी मांगने आया हूँ।

नाम : गणेश गनी
जन्म : 23 फरवरी 1972 को पांगी (चम्बा) हिमाचल प्रदेश में।
शिक्षा : पंजाब विश्वविद्यालय से एम.ए., एम.बी.ए., पी.जी.जे.एम.सी. (इग्नू)
सृजन : हिन्दी की लगभग सभी प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में कविताएँ प्रकाशित, कविता से पाठकीय संवाद की एक पुस्तक 'किस्से चलते हैं बिल्ली के पाँव पर' हाल ही में प्रकाशित और चर्चित।
सम्प्रतिः कुल्लू और मंडी के ग्रामीण क्षेत्रों में एक निजी पाठशाला ग्लोबल विलेज स्कूल का संचालन।
सम्पर्क : एम.सी. भारद्वाज हाऊस, भुट्टी कॉलोनी, डाकघर शमशी, कुल्लू -175 126 (हिमाचल प्रदेश)
मोबाइलः 09736500069
ई-मेलः gurukulngo@gmail.com

विजय देव नारायण साही एक विचारक कवि

विजय देवनारायण साही डॉक्टर राममनोहर लोहिया के समाजवादी चिन्तन की धारा के अत्यन्त प्रखर, मेधावी एवं विलक्षण बौद्धिक थे। वे मूल रूप से तो इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी साहित्य के प्राध्यापक उस समय थे जब डॉ.अमरनाथ झा, फिराक़ गोरखपुरी और डॉ.देव जैसे प्रगल्भ प्रकृष्ट व्यक्तित्वों से विश्वविद्यालय की ज्ञान भूमि संपन्न थी। वे मात्र समाजवाद को पढ़ते या लिखते ही नहीं थे बल्कि उसे उन्होंने अपने कर्म और आचरण में धारण कर जन अभियानों में सक्रियता भी निभाई थी। साही जी एक स्वाभाविक विचारवान कवि थे। उनका रागतत्व कविता में संवेदन का सौन्दर्य बनता था न कि यथार्थ का द्वंद्व या रोमेण्टिक कविता की निरी भावुकता। डॉ.लक्ष्मीकांत वर्मा ने अपने समय में मनुष्य के मनुष्यपन को घटते देख जिस लघुमानव की कल्पना की थी, साही जी ने लघु मानव के उस विचार को लोकव्यापी बनाकर मनुष्य के एक नए विकल्प को उसकी लघुता में रचा। अज्ञेय जी ने 'तीसरा सप्तक' के कवि के रूप में उनका चयन कर एक ऊर्जस्वी चिन्तक की मनस्वी छवि हिन्दी के पाठकों को उपलब्ध कराई है। यहाँ प्रस्तुत है तीसरा सप्तक (संपादक-अज्ञेय) से उनका वक्तव्य और कुछ कविताएँ - रमेश दवे

साही, विजयदेवनारायण : जन्म काशी में, 7 अक्टूबर 1924; प्रारंभिक शिक्षा काशी में और बाद में प्रयाग में। प्रयाग से सन 1948 में अंग्रेजी में एम.ए.। उसके बाद तीन वर्ष काशी विद्यापीठ में अध्ययन, सन 1951 में प्रयाग विश्वविद्यालय में अध्यापक। परिवार 'जन्म के समय निम्न मध्य वर्ग का था; तब से पाँच भाइयों के बीच संख्या और आर्थिक स्तर दोनों ही में असन्तुलित वृद्धि होती रही है'', जिसके कारण परिवार में कटुता भी रही है। पारिवारिक परिस्थितियों को ''ठण्डे बौद्धिक स्तर पर सिद्धान्त, मूल्यों एवं प्रतिमानों का जामा पहनाने'' की प्रवृत्ति से विचारों और अनुभूतियों को काफ़ी सामग्री मिलती रही।

आरंभ से ही हिन्दी लिखने-पढ़ने की तीव्र रुचि रही। ''शायद इसी लिए विद्यार्थी जीवन का विषय हिन्दी कभी नहीं चुना; उर्दू, फ़ारसी, अंग्रेजी पढ़ता रहा। ''सन 1942 की लहर ने राजनीति का स्पर्श दियाः विद्यार्थी जीवन में ही कांग्रेस समाजवादी दल में शामिल हो गये और तब से समाजवादी आन्दोलन में है। ''कम्युनिस्ट प्रगतिवाद ने साहित्य में किसान-मजदूर का हल्ला मचाया। उससे प्रभावित होकर मजदूरों के बीच गया। तब से ट्रेड यूनियनों में काम करते दस वर्ष हो गये। पाया कि कॅम्युनिस्ट प्रगतिवाद ने केवल ऐसे लोग पैदा किये जो मजदूर नेताओं में साहित्यकारों-जैसी बातें करते हैं, साहित्यकारों में मजदूर नेताओं-जैसी; जहाँ दोनों न हों वहाँ दोनों-जैसी और जहाँ दोनों हों वहाँ बग़लें झाँकते हैं। तब से ऐसे लोगों को मूर्ख और बेईमान समझने की आदत पड़ गयी है जो रह-रहकर व्यक्त होती है।''

''कांग्रेस शासन में तीन बार जेल के दर्शन हुए। एक बार एक महीने मजदूरों की हड़ताल के सम्बन्ध में, दूसरी बार तीन दिन गोलवलकर को काला झण्डा दिखाने के अपराध में, तीसरी बार तीन घण्टे जवाहरलाल नेहरू की मोटर के सामने किसानों का प्रदर्शन करने के दुस्साहस पर।''

एक कविता-संग्रह 'मछलीघर' छप चुका है। समीक्षात्मक लेखों का एक संग्रह प्रेस में है। सन 1966 के चुनाव में साही लोकसभा के लिए मिर्ज़ापुर से खड़े हुए थे।

5 नवम्बर, 1982 को इलाहाबाद में निधन।

'संवाद तुमसे' तथा 'साखी' (कविता-संग्रह) और 'वर्धमान और पतनशील' समीक्षा-पुस्तक मरणोपरान्त प्रकाशित।

वक्तव्य

मेरी कविता का आधार आस्था है। इस आस्था के पच्चीस शील हैं जो नीचे लिखे जाते हैं।

पहला शीलः मैं बहुत अक्लमन्द आदमी हूँ। मुझ-जैसे और भी हैं। बहुत से ऐसे हैं जो न मुझ-जैसे हैं, न मुझ-जैसों जैसे हैं। इसको छिपाने से कोई लाभ नहीं है, न छिपाने से कोई हानि नहीं है; छिपाने से हानि है, न छिपाने से लाभ है।

दूसरा शील : मैं परम स्वतन्त्र हूँ। मेरे सिर पर कोई नहीं है। अर्थात अपने किये के लिए मैं शत-प्रतिशत जिम्मेदार हूँ। अर्थात मेरे लिए नैतिक होना संभव है।

तीसरा शील : मैं संसार का सबसे महत्त्वपूर्ण प्राणी हूँ। यदि नहीं हूँ तो आत्म-हत्या के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं है। यही दशा आप की भी है।

चौथा शील : नितान्त अव्यावहारिक होना नितान्त ईमानदारी और अक्लमन्दी का लक्षण है। समाज में सब तो नहीं, पर काफ़ी लोग ऐसे होने चाहिए। जिस समाज में नितान्त अव्यावहारिक कोई नहीं रह जाता, वह समाज रसातल को चला जाता है।

पाँचवा शील : मैं अपने को बहुत नहीं सेटता, क्योंकि यह मेरा कर्तव्य नहीं है। लेकिन आप का कर्तव्य है कि मुझे सेटें। इसका प्रतिलोम भी सत्य है।

छठा शील : सर्वोत्तम समाज वह है जिसमें व्यक्ति के केवल अधिकार ही अधिकार हों, कर्त्तव्य कोई नहीं। अर्थात जो भी मैं चाहूँ वह मुझे मिल जाये, लेकिन जो मैं देना न चाहूँ वह मुझे देना न पड़े।

सातवाँ शील : कविता के क्षेत्र में केवल एक आर्य-सत्य हैः दुःख। शेष तीन राजनीति के भीतर आते हैं।

आठवाँ शील : कविता को राजनीति में नहीं घुसना चाहिए। क्योंकि इससे कविता का तो कुछ नहीं बिगड़ेगा, राजनीति के अनिष्ट सम्भावना है।

नौवाँ शील : शेली महान क्रान्तिकारी कवि था, इसलिए उसको चाहता हूँ; लेकिन उसके नेतृत्व में क्रान्तिकारी होना नहीं चाहता। बाबा तुलसीदास महान सन्त कवि थे, लेकिन वह संसद के चुनाव में खड़े हों तो उन्हें वोट नहीं दूँगा। नीत्शे का 'जरदुस्त्र उवाच' सामाजिक यथार्थ की दृष्टि से जला देने लायक है, पर कविता की दृष्टि से महान कृतियों में से एक है। उसकी एक प्रति पास रखता हूँ और आपसे भी सिफारिश करता हूँ।

दसवाँ शील : कवि अनिर्वाचित मन्त्रदाता हो सकता है। निर्वाचित मन्त्री हो जाने से कवि का हित और जनता का अहित होने की आशंका है। दोनों ही अवांछनीय संभावनाएँ हैं।

ग्यारहवाँ शील : कविता से समाज का उद्धार नहीं हो सकता। यदि सचमुच समाज का उद्धार करना चाहते हैं तो देश का प्रधानमंत्री बनने या बनाने की चेष्टा कीजिए। बाक़ी सब लग़ो है।

बारहवाँ शील : इससे पहले कि आलोचक मुझसे पूछे कि समाज का नागरिक होने के नाते आप ऐसा क्यों लिखते हैं, वैसा क्यों नहीं लिखते, मैं आलोचक से पूछता हूँ कि पहले यह सिद्ध कीजिए कि समाज का नागरिक होने के नाते कविता लिखना भी मेरा कर्तव्य है।

तेरहवाँ शील : कवि अ-कवियों से अधिक संवेदनशील या अनुभूतिशील नहीं होता। जो कवि इसके विपरीत कहते हैं उनका विश्वास मत कीजिए; वे अ-कवियों पर रंग जमाने के लिए ऐसा कहते हैं। यह सम्भव है कि कवि की संवेदना का क्षेत्र अ-कवि से कम हो। प्रायः यही होता है।

चौदहवाँ शील : जो मैंने भोगा है वह सब मेरी कविता का विषय नहीं है। कविता का विषय वह होता है जो अब तक की भोगने की प्रणाली में नहीं बैठ पाता। हर कलाकृति ठोस, विशिष्ट, अनुभूति से उपजती है और उसका उद्देश्य अनुभूति की सामान्य कोटियों को नये सिरे से परिभाषित करना होता है। परिभाषा विशिष्ट और सामान्य में सामंजस्य का नाम है। बिना सामंजस्य के भोगने में समर्थ होना असंभव है।

पन्द्रहवाँ शील : अ-कवि अपनी विशिष्ट अनुभूति और अब तक उपलब्ध सामान्य परिभाषा में असामंजस्य नहीं देखता। कभी दीख भी जाता है तो थोड़ी-सी बेचैनी के बाद वह अनुभूति को जबरदस्ती बदल कर परिभाषा में बैठा लेता है। यह अ-कवि का सौभाग्य है।

सोलहवाँ शील : कवि अभागा है। वह विशिष्ट अनुभूति को बदल नहीं पाता। तब तक बेचैन रहता है जब तक परिभाषा को बदल नहीं लेता। असामंजस्य देखने का काम बुद्धि करती है। परिभाषा बदलने का काम कल्पना करती है। शब्दों में अभिव्यक्ति अभ्यास के द्वारा होती है। यह सब एक निमिष में हो सकता है, इसको एक युग भी लग सकता है; कवि कवि पर निर्भर है।

सत्रहवाँ शील : कवि की अमरता ग़लतफ़हमी पर निर्भर करती है। जिस कवि में ग़लत समझे जाने का जितना अधिक सामर्थ्य होता है वह उतना ही दीर्घजीवी होता है।

अठारहवाँ शील : सार्थकता बराबर तप नहीं, शब्दाडम्बर बराबर पाप।

उन्नीसवाँ शील : वस्तु-स्थिति यह है कि मेरे बाबा ने जो कहा था वह न मेरे पिता कहते हैं और न मैं कहता हूँ। लेकिन जब मेरे पिता मुझसे कहते हैं कि मेरे बाबा ने क्या कहा था तो वह परम्परा है। जब मैं स्वयं कहता हूँ कि मेरे बाबा ने क्या-क्या कहा था तो प्रयोग है। यदि मैं कुछ नहीं कह पाता तो न परम्परा है न प्रयोग।

बीसवाँ शील : पश्चिम से छूटना असंभव दीखता है। अध्यात्म के बिना निस्तार नहीं है, यह भी पश्चिम ने कहा है और यह बासी है। अध्यात्म और भौतिकवाद में समन्वय होना चाहिए, यह भी पश्चिम ने कहा है और यह भी बासी है। केवल भौतिकवाद में निस्तार है यह भी पश्चिम ने कहा है लेकिन नया है।

इक्कीसवाँ शील : कविता राग है। राग माया है। माया और अध्यात्म में वैर है। अतः अध्यात्मिक कविता असंभव है। जो इसमें दुविधा करते हैं उन्हें न माया मिलती है न राम। जैसा हाल छायावादियों का हुआ। इससे शिक्षा लेनी चाहिए।

बाईसवाँ शील : मुझसे पहले की पीढ़ी में जो अक्लमंद थे, वे गूँगे थे। जो वाचाल थे, वे अक्लमन्द नहीं थे। अंग्रेजी ने अक्लमन्द बनाया लेकिन गूँगा करके छोड़ा। गाँधीजी ने आवाज़ तो दी लेकिन अक्ल बन्धक रखवा ली। बड़ा क्रोध आता है यह मेरा दुर्भाग्य है।

तेईसवाँ शील : सोचने का काम क्यों सारे देश ने सिर्फ एक आदमी पर छोड़ दिया और स्वयं शरणागत हो कर 'मा शुचः' का पाठ करने लगा? उस आदमी ने श्री शरणागतों को 'अटेंशन' और 'स्टैण्ड-एट-ईज़' के निर्देश तो दिये, पर यह नहीं बताया कि कब 'अटेंशन' कहना चाहिए और कब 'स्टैण्ड-एट-ईज़'। वह हमारी आकांक्षा को विराट और विवेक को बौना छोड़कर चला गया। जो बचे हैं वे अटकल से 'कॉशन' बोलते हैं जिस से परेड तो हो सकती है लेकिन लड़ाई नहीं जीती जा सकती।

चौबीसवाँ शील : पचास से ऊपर वय हो जाना अपने आप में अक्लमन्दी का प्रमाण नहीं है। प्रमाण-पत्र मैं दूँगा।

पच्चीसवाँ शीलः अवज्ञा परमो धर्मः।

विजयदेवनाायण साही

विजय देवनारायण साही की कविताएँ

मानव राग

मैं आज सरल धरती का अभिलाषी।
उठ रहा धुएँ-सा बल खाता शहरों का कोलाहल,
जिस की ऐंठन में डूब रे मेरे सपने झलमल,
हर शाम यहाँ मानव-लहरों से भर जातीं सड़कें
हर बूँद अकेली किन्तु, अकेला सब का रंग-महल;
वैभव वाले ये राज-भवन, जगमग सुख के साधन,
ये इन्द्र-धनुष से रंग-भरे जब के अनमोल रतन,
पड़ कहीं न जाये धूल तृषित अरमानों की मेरे-
मेरे ही सपने आज बचाते हैं मुझसे दामन।
मैं मधु मंज़िलों का शिल्पी
केवल पथ का वासी!

जो कभी न पाये फूट धरा की छाती के छाले-
इतिहास-भरे ये गाँव युगों की मौन जलन वाले,
इन बन्द खण्डहरों में मेरी अभिलाषाएँ घुटतीं-
मैं ओढ़समय की राख सुलगता मन्द अनल पाले;
ये हरे मटर के खेत, प्रवंचक जव की हरियाली,
यह भरी सुधा से ईख, झूमती सरसों मतवाली,
यह बहुत शक्तिमय, बहुत सुघर मेरे श्रम का सपना
पर रन पर मिथ्या अधिकारों की रेखाए काली
हैं मुक्ति माँगती शिथिल
भुजाएँ मेरे, अविनाशी।

हिल उठा कभी जो मलय भूली निश्वासों-सा,
झुक-झुक पड़ता मानव का मन सरपत की साँसों-सा,
मैं कभी देखता किसी कुसम को चूम रही तितली
रो-रो उठता सुनसान हृदय बिखरे मधुमानों-सा
है नीड़ खोजती, मुक्त कल्पना
मेरी आकाशी!

दर्द की देवापगा

अगर केवल प्यार ही होता
तो उसे कह डालता!

यह अपरिमित ज्वार
जो तन तोड़ता, खिंचता, उमड़ता,
विवश उठता और गिरता
मींजता है परिधि को
केवल सतह है यह
सतह है केवल!
इस के तले
अरे क्या डूबा हुआ है शान्त वह, असहाय,
जो इस महागति में
सिर्फ़ अपनी शान्ति से रह-रह करकता है?
आह, जो रह-रह करकता है
क्या है?

अगर केवल दर्द ही होता
तो उसे सह डालता!

यह अतल आघात से भी तीव्र,
यह अतीन्द्रिय आँधियों से भी अधिक उद्दाम
प्राणदायिनि ज्वाला!
स्वर्ग से जो उतर आयी आज मेरे भाल-
तिरोहाकुल, दुर्नियन्त्रित, लक्ष्यहत, अविराम,
जिस को हर किनारा अग्निगर्भ
हर कगारा अतल है:

और कब तक धमनियों के अन्ध में धारे रहूँ
यह दर्द की देवापगा?
और कब तक मुक्ति-प्यासी अस्थियों की चीख
भी सुनता रहूँ?
खोल दो, मेरी शिराएँ खोल दो;
तोड़ दो, मेरी परिधियाँ तोड़ दो;
बहो, बहो,
फूट कर के बहो
मेरे दर्द की देवापगा!

नये शिखरों से

ओ महाप्रलय के बाद नये उगते शिखर,
है तुम्हें कसम इन ध्वस्त विन्ध्यमालाओं की
मत शीश झुकाना तुम अपना!
आसूर्य तुम्हारा तेजस्वी यह भाल देख
कितने अगस्त्य आयेंगे गुरु का वेश धरे
आशीष-वचन कहने वाले:
चिर विनत तम्हारा मस्तक यों ही झुका छोड़,
ये गुरुवर वापस नहीं लौट कर आयेंगे।

हिमालय के आँसू

हाँ देख रहा हूँ मैं तब से
जब से इन सूने कमरे में
ढँक ठण्डे हाथों से कुम्हलायी आँखों को
रो रहे विकल तु फूट-फूट!

ओ दुखी-हृदय,
है सत्य, हिमालय-सा तुम ने दिल पाया था,
है सत्य कि तुम को भाल मिला था सूरज-सा,
है सत्य कि छाती थी पठार-सी अन्तहीन,
और आज सिर्फ भाग्यावशेष-
बेस्वाद सान्त्वना, धीरज, ढाढ़स, सब्र, भाग्यख
उजियाले की जड़ हँसी
अँधेरे के आँसू!

मत डरो-
मैं नहीं तुम्हें समझाऊँगा किस्से कह कर,
मैं नहीं तुम्हारे प्यारे आँसू पोंछूँगा,
मैं नहीं घटाऊँगा इस संकट का महत्त्व-
मैं नहीं कहूँगा दर्द घूँट में पीने को।

मच मानो प्रिय,
इन आघातों से टूट-टूटकर रोने में कुछ शर्म नहीं,
कितने कमरों में बन्द हिमालय रोते हैं,
मेज़ों से लग कर सो जाते कितने पठार -
कितने सूरज गल रहे अँधेरे में छिप कर,
हर आँसू कायरता की खीझ नहीं होता!

मैं केवल इतना कहता हूँ
इन सूने कमरे की सिसकन से क्या होगा?
बाहर जाओ,
सब साथ-साथ मिलकर रोओ,
आँसू टकरा कर अंगारे बन जाते हैं
फट पड़ते हैं युग-युग के ज्वालामुखी सुप्त,
शायद धरती पर पड़ीं दरारें मुँद जायें!

रात गाँव

सो रहा है गाँव।
खेतियों की अनगिनत मेड़ें
कि धरती के दुलारे वक्ष को
ऊँगलियों से पकड़
बच्चों की सलोनी नींद में सुकुमार
सो रहा है गाँव!

(साही जी का परिचय, वक्तव्य एव कविताएँ ''तार सप्तक-3 से साभार)

रंगशीर्ष

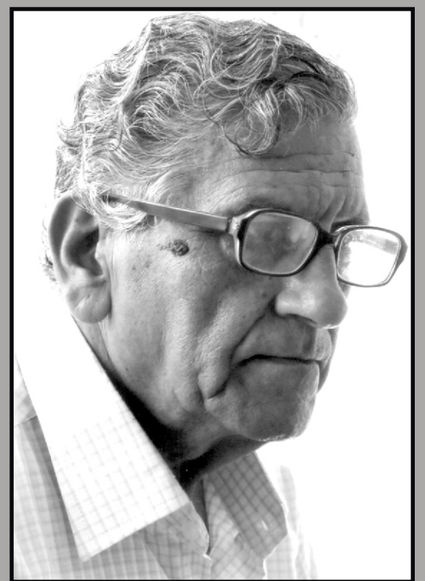

संपर्क : 17, एमआयजी, मुनिनगर,
सांवेर रोड, उज्जैन
दूरभाष : 0734-251163

श्रीकृष्ण जोशी

जन्म : 24 जून 1943, उज्जैन
पिता : स्व. पं. गजाधर जोशी
माता : स्व. सरजु बाई
शिक्षा : एम.ए., पी.एच-डी., चित्रकला, एम.ए.इतिहास, बी.एड।
व्यवसाय : अध्यापन (1) 1968-1971 कला-निलय चित्रकला विद्यालय (2) 1971-1981 शा.विद्यालय में शिक्षक (3) 1981-2005 शा.माधव महाविद्यालय, उज्जैन चित्रकला विभाग व्याख्याता, सहा.प्राध्यापक, प्राध्यापक एवं विभागाध्यक्ष।
शोध निर्देशक : 12 शोध छात्र पी.एच.डी. उपाधि प्राप्त
शोध पत्र : आठ शोध पत्र प्रकाशित
विश्वविद्यालय अध्ययन बोर्ड में सदस्य : विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन, देवी अहिल्या वि.वि. इन्दौर
बाह्य परीक्षक : इन्दौर, भोपाल, ग्वालियर, कोटा, जयपुर, वनस्थली, उदयपुर, बनारस (यू.पी.) इलहाबाद (यू.पी.) कोटा
पुरस्कार : अखिल भारतीय कालिदास चित्र एवं मूर्तिकला प्रदर्शनी, सन 1974, द्वितीय, सन् 1976 प्रथम, सन 1980 प्रशंसनीय, सन् 1981 प्रशंसनीय, सन् 1984 द्वितीय। **एकल प्रदर्शनी-** केन्द्रीय संग्रहालय इन्दौर 1971, जवाहर कला केन्द्र जयपुर-2005 **सम्मिलित प्रदर्शनी -** कला निलय, उज्जैन 1969 डॉ.रामचन्द्र भावसार एवं डॉ.श्रीकृष्ण जोशी। **समूह प्रदर्शनी -** उज्जैन, इन्दौर, भोपाल, लखनऊ, कनाड़ा।
कला शिविर, कार्यशाला : 1984 खैरागढ़, 1997 उज्जैन, 1997 जबलपुर, 2010 कालिदास अकादमी, 2012 रतलाम, 2014 इन्दौर, 2014 उज्जैन।
सम्मान : शैव महोत्सव 2018, श्रेष्ठ शिक्षक 1980, मानव संकेत 2006, विद्यार्थी विकास मंच 2013, झलक निगम न्यास 2016, ठाकुर शिवप्रतापसिंह जयन्ती 2017, श्रीकृष्ण सरल जयन्ती 2018, अ.भा. शब्द-प्रवाह कला-साहित्य सम्मान 2014 चित्र संग्रह - उज्जैन, इन्दौर, स्विटजरलैण्ड आदि स्थानों पर।
दृश्यांकन हेतु यात्राएं : नेपाल, राजस्थान, हिमाचल प्रदेश यू.पी., सिक्कीम, तमिलनाडु, उड़ीसा, छत्तीसगढ़, महाराष्ट्र आदि।
सम्प्रति : स्वतंत्र चित्रकारी एवं साहित्यिक पठन-पाठन।

मेरे लिये कला ही पूजा है

जन्म ब्राह्मण पुरोहित परिवार में हुआ। प्रथम शिक्षा संस्कृत में हुई पश्चात प्राथमिक, माध्यमिक, उच्च माध्यमिक शिक्षा के पश्चात महाविद्यालय में प्रवेश लिया। हायरसेकेण्डरी में स्व.प्रभाकर जी श्रोत्रिय ने कविता और कला की प्रेरणा दी। मैंने एक चार्ट बनाया था। निरालाजी की कविता भिखारी से प्रेरणा लेकर एक भिक्षु का चित्र बनाया। उन्हें बहुत पसन्द आया। तब मेरा विषय विज्ञान था। परिवार में पिताजी संगीत रसिक थे और अग्रज स्व.धर्मराज जी मूर्तिकला, चित्रकला और संगीत कला के ज्ञाता थे।

वास्तव में जीवन का मोड़ 1963 में प्रारंभ हुआ। केवल पाँच रूपये की कमी के कारण पोलीटेक्निक कॉलेज में प्रवेश नहीं मिला। मजबूरन माधव महाविद्यालय में विज्ञान विषय लेकर बी.एस.सी. में प्रवेश लिया। सब कुछ दिशाहीन था। इसी निराशा में मैं रामघाट पर बैठा था। तब कोई भीड़ नहीं होती थी। एक चित्रकार श्री सुनील कुमार वहाँ रेखांकन कर रहे थे। जिज्ञासा-वश मैं उनके पास बैठकर देख रहा था। उन्होंने शान्ति निकेतन से मूर्तिकला में उपाधि प्राप्त कर रखी थी। मेरी तल्लीनता देखकर कागज और पेन्सिल देकर एक मन्दिर का स्केच बनाने को कहा, मैंने बना दिया उन्हें पसन्द आया। मेरा संपूर्ण परिचय लेकर कहा ''क्यों अपना समय विज्ञान में बर्बाद कर रहे हो, चित्रकला में अध्ययन करो।'' दूसरे दिन वे स्वयं माधव महाविद्यालय में आये और तत्कालीन प्राचार्य पद्मभूषण शिवमंगलसिंह 'सुमन' जी से आग्रह कर मेरा विषय परिवर्तन कराया। मेरे दो मित्र स्व.धर्मपाल सिंह और श्री चेनसिंह वर्मा सदैव मुझे हिम्मत बंधाते रहते थे।

मैंने बी.ए. में चित्रकला, भूगोल और हिन्दी साहित्य विषय लिया था। चित्रकला के सहपाठियों में ईश्वरी रावल, राजेन्द्र जोशी (लाल इमली) और रमेश दुबे (भोपाल) सिद्धहस्त कलाकार थे। प्रो.चिन्तामन हरि खाडिलकर सा. चित्रकला विषय पढ़ाते थे। सन् 1964-65 में मैं बी.ए.भाग दो में था। इस सत्र में प्राचार्य सुमन जी के प्रयास से चित्रकला में एम.ए. प्रारंभ हुआ और प्राचीन भारतीय इतिहास में पुरातत्व प्रारंभ हुआ। एक छोटा स्वागत समारोह चित्रकला विभाग में आयोजित हुआ। सुमन जी. प्रो.चिन्तामन हरि खाडिलकर जी ने मेडम शिवकुमारी रावत का परिचय कराया। वे विभाग में व्याख्याता नियुक्त हुई थीं। आगरा विश्वविद्याल से स्वर्ण-पदक के साथ उन्होंने एम.ए.चित्रकला विषय में उत्तीर्ण किया था। दूसरे विद्वान पद्म श्री स्व.वि.श्री वाकणकर जी थे। वे प्रसिद्ध पुराविद, चित्रकार और कलागुरु थे।

उक्त विद्वान गुरुजनों के मार्गदर्शन में विकास की गति तेज हो गई थी। स्नेह सम्मेलन के अवसर पर विचित्र वेशभूषा की प्रतियोगिता का आयोजन हुआ। मित्रों ने मुझे भिखारी बनाया और ऐसा मेकअप किया कि कोई भी मुझे पहचान न पाया। मेरा प्रिय भतीजा राजेन्द्र मेरे साथ था मुझे सम्भालने के लिए। इस प्रतियोगिता में मुझे प्रथम पुरस्कार मिला, बहुत प्रसन्नता हुई। ईश्वर कृपा से एक और गुणी सहपाठी से मेरा परिचय हुआ वे थे श्री नगजीराम बाछंग जो प्रसिद्ध व्यावसायिक कलाकार थे। व्यक्ति चित्रण में सिद्धहस्थ थे। सन 1966 में बी.ए. पास किया। इस अवधि में मेरे दो मित्र सदैव हिम्मत बंधाते एक थे स्व.धर्मपाल सिंहल जो सदैव अध्ययन की प्रेरणा देते दूसरे मित्र है, श्री चेनसिंह वर्मा (जबलपुर) जो सदैव स्वस्थ शरीर की प्रेरणा देते। गांधी जी ने भी कहा है ''स्वस्थ शरीर में स्वस्थ मस्तिष्क निवास करता है। स्वस्थ शरीर के आधार पर अखिल भारतीय विश्वविद्यालयीन भारोत्तोलन प्रयोतियोगिता में पुरस्कृत हुआ।

बी.ए. के पश्चात एम.ए. हिन्दी साहित्य में करने का निश्चय किया किन्तु हमारे प्रिय सहपाठी ने हमें चित्रकला में एम.ए. करने के लिए प्रोत्साहित किया तथा सभी प्रकार की मदद का आश्वासन दिया। यह सत्र सीखने का और नये-नये अनुभव प्राप्त करने का था। दुनिया क्या है अब जानना प्रारंभ किया। एक गीत की लाइन है - ''एक चेहरे पर कई चेहरे लगा लेते हैं लोग।'' धीरे-धीरे समझ आने लगी। खट्टे-मीठे अनुभव में प्रथम मीठे की चर्चा की जाय। सन् 1966 में माधव महाविद्यालय प्रांगण के राधाकृष्णन सभागृह में भारतीय हिन्दी परिषद का 22वाँ वार्षिक अधिवेशन दि.26, 27 एवं 28 दिसम्बर को आयोजित हुआ। सुमन जी की प्रेरणा से मेडम रावत ने हम सब विद्यार्थियों के साथ मिलकर 'लोककला' प्रदर्शनी आयोजित की। हिन्दी के वरिष्ठ विद्वान डॉ.हजारी प्रसाद द्विवेदी, डॉ.नन्ददुलारे वाजपेयी, जी, डॉ.'सुमन' और अनेक विद्वानों ने इस प्रदर्शनी की प्रशंसा की।

डॉ.राधाकृष्णन सभागृह में एक ओर अनूठा आयोजन हुआ था जिसकी तिथि मुझे स्मरण नहीं। 'सुमन' जी ने 'मिट्टी की बारात' कविता लिखी। यह कविता जवाहर लाल जी नेहरू की स्मृति पर आधारित थी। इस काव्य की संगीत मय एवं चित्रमय प्रस्तुति के निर्देशक थे गुरुवर्य डॉ.प्रभात कुमार जी भट्टाचार्य, चित्रकार थे मेडम शिवकुमारी रावत एवं डॉ.मोहनलाल झाला और गायक श्री सुरेन्द्र व्यास थे।

सत्र 1966-67 में मित्रों ने मुझे कला-सचिव छात्र-संघ चुनाव में बनवा दिया। राजनीति हमें रास ना आई किन्तु एक लाभ हुआ प्रसिद्ध इतिहास विद् डॉ.जी.पी.शर्मा सा. का आशीर्वाद मिला बहुत कुछ सीखने को मिला। इसी सत्र में हमने दृश्य कला का भी ज्ञान प्राप्त किया। बड़े कलकारों को चित्र बनाते देखना अद्भुत अनुभव था। ये दो कलाकार मेडम रावत और सचिदा नागदेव थे। रेखांकन जलरंगों का प्रयोग, परिप्रेक्ष्य दृश्यांकन के महत्त्वपूर्ण अंग हैं। यह पहली बार जाना यह सब ज्ञान नेपाल यात्रा में प्राप्त हुआ। शैक्षणिक यात्रा में प्रथम बार माण्डव जैसे ऐतिहासिक और प्राकृतिक स्थल का दर्शन किया। जहाज महल के सरोवर में पहली बार खिलते हुए कमल को देखा। बाजबहादुर महल, रानी रूपमती महल, अशर्फी महल, जामा मस्जिद, नीलकंठेश्वर और खुरासन इमली तथा जल प्रपात के दर्शन किये।

एम.ए. पूर्वार्द्ध करने के पश्चात एम.ए. उत्तरार्द्ध में प्रवेश लिया। इस सत्र में कुछ सीनियर कलाकारों से परिचय हुआ जैसे लक्ष्मीनारायण भावसार, डॉ.रामचन्द्र भावसार, डॉ.भवरलाल कुल्मी, अफजल पठान, हरीश गुप्ता, मनोहर गोधने, श्री भाण्ड सा. राधेश्याम भारद्वाज, आदि। इन कलाकारों को कार्य करते देखा बहुत कुछ सीखने को मिला। उक्त सभी कलाकार अपनी-अपनी शैली में सिद्धहस्थ थे। प्रो.कम्बोज सा.(आगरा), धूपेश्वरकर जी (बम्बई), प्रो.चिरंजीलाल सा. (गाजियाबाद) ये सभी वरिष्ठजन हमारे परीक्षक थे।

चित्रकला में एम.ए. उत्तीर्ण करने के पश्चात कला-साधना में समय बीतने लगा साथ ही जीविका की खोज भी जारी थी। शनैःशनैः यह भी ज्ञात हुआ कि डॉ.मोहनलाल झाला भूगोल विद होने होने के साथ-साथ एक अच्छे चित्रकार भी हैं। उनके चित्र अखिल भारतीय कालिदास चित्र प्रदर्शनी में प्रदर्शित होते हैं। झाला सा. ने अपने गुरु मास्टर मदनलाल जी की स्मृति में 'कला निलय' चित्रकला महाविद्यालय 2 अक्टोबर 1968 गुजराती समाज योगेश्वर टेकरी पर प्रारंभ किया। उद्घाटन 'डॉ.शिवमंगल सिंह जी सुमन ने किया।' यहाँ तीन वर्ष के कार्यकाल में कलागुरु वाकणकर जी का आशीर्वाद और मार्गदर्शन मिला। प्रो.चन्द्रेश सक्सेना जी का दृश्यांकन देखा। राजकपूर के कला निर्देशक एम.आर.आचिकर को व्यक्ति चित्रण करते देखा। कलागुरु डी.जे.सा. से दृश्यांकन के गुरु सीखे। कला-निलय में संगीत की बैठक भी होती थी और कालिदास प्रदर्शनी हेतु चित्र भी बनते थे। सब कुछ अद्भुत था। सन् 1971 में मैं शासकीय शिक्षक के रूप में खेड़ाखजुरिया (महिदपुर) चला गया। इस प्रकार कला-निलय से मेरा संपर्क टूट गया। किन्तु मेडम और वाकणकर जी की प्रेरणा से रविवार मैं दृश्यांकन करने अवश्य जाता।

कलाकार मित्रों के साथ जोशी जी।

ऐसे ही एक रविवार महाराजवाड़ा माध्यमिक विद्यालय क्र.3 के पीछे बैठकर दृश्यांकन कर रहा था, पद्मभूषण पं.सूर्यनारायण जी व्यास ने मुझे देखा और अपने कर्मचारी को मुझे बुलाने भेजा। मैं उनसे मिला प्रणाम किया। उन्होंने मालवी भाषा में बोलने का आदेश दिया। मेरे दृश्य चित्रों को देखा पांच अपने पास रखे। मुझे ट्रे की चाय पिलाई स्वयं हाथ से बनाकर पान खिलाया। यह मेरी अविस्मरणीय यादगार बन गया। शिक्षा विभाग में स्व.ओमप्रकाश जी भटनागर, स्व.रमेशचन्द्र जागीरदार, स्व.रमेश मधु जैसे कलाकारों से परिचय हुआ, ज्ञान और अनुभव का आदान प्रदान हुआ। सन 1971 से 81 के मध्य स्थापित कलाकारों और कला गुरुओं से परिचय हुआ, उनमें प्रमुख कुमारिल स्वामी (दिल्ली) पद्म श्री बेन्द्रे सा. (बम्बई), विष्णु चिंचालकर सा. (इन्दौर), श्रेणिक जैन (इन्दौर), प्रो.गजानन भागवत (बम्बई), यशोदा भागवत (बम्बई), प्रो.रणवीर सक्सेना सा. (देहरादून), प्रो.रामचन्द्र शुक्ल (वाराणसी) आदि थे। माता-पिता और गुरु कृपा से सन 1981 में विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन ने चित्रकला विभाग माधव महाविद्यालय में मुझे व्याख्याता पद पर नियुक्त किया। आधुनिक कला और नये-नये वादों, कला के क्षेत्र में हो रहे प्रयोगों आदि को निकट से जानने और समझने का अवसर मिला। परम श्रद्धेय स्व.डॉ.बी.जी.शर्मा सा के आशीर्वाद से मैंने इतिहास विषय में एम.ए. किया। भारत के साथ-साथ विश्व इतिहास को जानने का सुअवसर मिला। परम आदरणीय गुरुवर सुमन' जी ने बड़े-बड़े कवियों से आशीर्वाद दिलाया उनमें प्रमुख हरिवंशराय बच्चन जी, महादेवी जी, दिनकर जी, डॉ.प्रभाकर माचवे जी, अज्ञेय जी आदि है। डॉ.भगवत शरण उपाध्याय, कमला रत्नम जी, प्रो.वेंकटा चलम, विद्वान वाजपेयी जी आदि विद्वानों के आशीर्वाद प्राप्त हुए।

श्रीकृष्ण सरल जन्मशताब्दी के अवसर पर सम्मानित होते हुए श्रीकृष्ण जोशी

सन 1981 से 2005 तक माधव महाविद्यालय चित्रकला विभाग में व्याख्याता, सहा.प्राध्यापक, प्राध्यापक और विभागाध्यक्ष रहा। 2005 में सेवानिवृत्त हुआ इसी वर्ष मेरी एकल प्रदर्शनी का आयोजन जवाहर कला केन्द्र जयपुर में हुआ। महामहिम राज्यपाल श्रीमती प्रतिभा पाटिल जी ने इस प्रदर्शनी का उद्घाटन किया। इस प्रदर्शनी में कई कलागुरुओं से मिलना हुआ। मुझे आशीर्वाद देने पद्म श्री कृपालसिंह जी शेखावत भी प्रदर्शनी में आये थे। सेवानिवृत्ति के पश्चात भी विद्वानों, कवियों और समाजसेवियों से मिलना होता रहता है उनमें प्रमुख प्राचार्य विनोद काबरा, मालवी के वरिष्ठ कवि शिव चौरसिया, नवीन दवे, परमानन्द शर्मा 'अमन' शायर और कवि श्री जगदीशचन्द्र पण्ड्या आदि प्रमुख हैं।

कला अध्ययन का कार्य आज भी यथावत है। कला पूजा है, अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम है। मेरी कृतियां केवल मुझे ही नहीं कलाप्रेमियों को भी आनन्द प्रदान करती है, श्री गुरवैनमः।

दृश्य चित्रण में महारत

वैसे तो कलागुरु श्रीकृष्ण जोशी जी कला की सभी विधाओं में रुचि लेते हैं। फिर भी विशेषकर दृश्य चित्रण में आपको महारत है। आपने अपने गृह नगर उज्जैन के सभी दर्शनीय स्थलों को चित्रित किया है। आप प्रभाववादी शैली से प्रेरित हैं। दृश्य चित्रण हेतु नेपाल भी गए जहां आप एक माह तक रहे। साथ ही शिमला, मसूरी, दार्जलिंग, पंचमढ़ी, माण्डव, ओंकारेश्वर, बम्बई, पूणे, मद्रास, उटी, आंध्रप्रदेश, राजस्थान आदि अनेक प्रदेशों में जाकर आपने दृश्यांकन किया है। दृश्य चित्रों पर आपको सदैव ही गुरुओं का आशीर्वाद मिला है, मार्गदर्शन मिला है उनमें प्रमुख थे श्रीमती शिवकुमारी जोशी और वाकणकर साहब।

आप जिज्ञासु वृत्ति के हैं। स्व. राजपूत साहब से आपने स्पेस विभाजन की बारिकियों को सिखा, स्व.वाकणकर जी से त्वरित रेखांकन का मार्गदर्शन लिया और सबसे कठिन विधा जो आपको लगती है वॉश पेंटिंग बरसों आपने मेडम रावत के निर्देशन में इस विद्या का अभ्यास किया। केवल अभ्यास ही नहीं इस विधा में आपने अनेक चित्रों की रचना भी की है। आपने अपने मित्रों से भी प्रेरणा ली है जो कि अच्छे चित्रकार है उनमें स्व. नगजीराम उत्कृट व्यक्ति चित्रकार थे। दूसरे मित्र ईश्वरी रावल जो अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त चित्रकार है। तीसरे मित्र प्रो.काशीनाथ सावले (बम्बई) ये भी अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त चित्रकार है। आप अपने छात्रों को कला का प्रारम्भिक ज्ञान देते हैं। ताकि उनकी नीव मजबूत हो। वे छात्र पर ऐसे दबाव नहीं बनाते हैं अपितु उनको प्रेरणा देते हैं कि छात्र को जो विधा पसंद हो उसी मे कार्य करें। उनके अनेक विद्यार्थी भिन्न-भिन्न विधाओं में कार्य कर रहे हैं, पुरुस्कृत हुए है और नवीन-नवीन प्रयोग कर रहे हैं। कई विद्यार्थी कला शिक्षक है और महाविद्यालयों में भी प्राध्यापक हैं आज भी आप विद्यार्थियों को मार्गदर्शन दे रहे हैं और उन्हें प्रोत्साहित कर रहे हैं। ईश्वर उन्हें दीर्घायु प्रदान करे इसी कामना के साथ धन्यवाद।

डॉ.अल्पना उपाध्याय
अध्यक्ष, चित्रकला विभाग,
शास.महा.उज्जैन (म.प्र.)

मालवा में दृश्य, चित्र, कला का विकास

डॉ.श्रीकृष्ण जोशी

दृश्य चित्र अंग्रेजी के Landscape का पर्यायी है। यह प्रकृति की चित्रमय या सचित्र झांकी है। 'दृश्य चित्रकार प्रकृति में बैठकर प्रकृति से एकाकार होता है, तत्पश्चात उसे अपनी अनुभूति के लिए जो वस्तु प्रेरक लगती है उसे वह अपनी चिंतन प्रक्रिया के अनुसार चित्र-फलक पर दृश्य रूपदेता है। अर्थात वह प्रकृति की नकल न करते हुए उसे अपने अनुसार चित्रित करता है। दृश्य-चित्रण का प्रथम उदाहरण रोम के निकट खुदाई में निकले पाम्पेई के भित्ति चित्र में प्राप्त होता है। इस भित्ति चित्र में इमारत, एक पुल, कुछ पशु, चरवाहा एवं एक वृक्ष का चित्रण है। दृश्य चित्र का वास्तविक विकास पुनर्जागरण काल से प्रारंभ होता है। इटली में 15वीं शती के एक वास्तुकार ब्रूनेलेशी ने गणित एवं ज्यामिति के जिन नियमों का प्रयोग किया उससे चित्रकला ने भी लाभ उठाया। इनके आधर पर चित्रों में व्यवस्थित परिप्रेक्ष्य का विकास आरंभ हुआ था और सपाट धरातल पर ज्यामितीय आकृतियों के निर्माण से गहराई तथा तृतीय आयाम का आभास दिया जाने लगा। 'परिप्रेक्ष्य के ज्ञान ने दृश्य-चित्रण में यथार्थता का प्रभाव उत्पन्न किया। 'परिप्रेक्ष्य' अंग्रेजी के शब्द PERSPECTIVE का रूपान्तर है। परिप्रेक्ष्य के संबंध में अंग्रेजी विद्वान एच.जे.डेनीस लिखते हैं - ''The Literal meaning of the term perspective is to see through'' उक्त शब्द को और अधिक स्पष्ट करने के लिए परिप्रेक्ष्य को क्षय-वृद्धि कहा गया। 'क्षय-वृद्धि वह वैज्ञानिक ढंग है जिसकी सहायता से ठोस आकारों को समतल पर इस प्रकार अंकित किया जाता है जिससे कि उनका रूप आकृति की तरह ही ठोस व प्रमाणयुक्त दिखाई दे। मानों उसे एक विशेष दृष्टि बिन्दु से देखा गया है। ऐसा करने पर आकृति के कुछ अंग अदृश्य हो जाते हैं तथा कुछ में क्षय हो जाता है।''

दृश्य-चित्रण के दो प्रकार होते हैं : पहला आकृतियों के साथ और दूसरा केवल प्रकृति से प्रेरित।' वास्तव में दृश्य-चित्रण का प्रचलन यूरोप के कला पुनर्जागरण से ही प्रारंभ होता है। फ्लांडर्स के कलाकार जान वान आइक ने मेरिज के चित्र में दृश्यांकन का प्रभाव यथार्थवादी शैली में प्रस्तुत किया। आइक बंधुओं ने तेल चित्रण का आविष्कार किया। इस प्रयोग की सफलता से चित्र केनवास पर बनने लगे और इन्हें कहीं भी जाने और ले जाने में सुविधा हो गई। इस प्रकार कला भित्ति से उतरक कर केनवास पर आ गई। फ्लोरेंस (इटली) के चरम पुनरुत्थान के महान कलाकार लियोनार्दो-दा विंची ने मोनालिसा की प्रसिद्ध कृति में प्रकृति और मानवता को एक साथ चित्रित किया। पृष्ठभूमि में प्रकृति का इतना सजीव चित्रण इसके पूर्व नहीं हुआ। वाल्टर पोटर लिखते हैं- His art, it was to be something in the world, must be weighated with more of the meaning of nature and purpose of humanity. Nature was "the true mestress of higher intelligences." पूर्णतः दृश्य चित्रण का प्रयोग स्पेन के कलाकार एलग्रेको ने किया। उनकी कृति "VIEW OF TOLEDO" में उन्होंने एक पहाड़ी शहर जिसमें वे स्वयं निवास करते थे उसका सुन्दर दृश्यांकन किया।'' इस प्रकार का स्वतन्त्र दृश्यांकन बारोक शैली के जन्मदाता एवं महान चित्रकार पीटर वॉल रूबेन्स (1577-1640) ने किया। उनके दो दृश्य चित्र उपलब्ध हुए पहला AUTUMAN LANDSCAPE WITH A VIEW OF NET STEEN (1636)', दूसरा 'LANDSCAPE WITH A SHEPHERED AND HIS FLOCK (1638) दोनों दृश्यांकन में प्रकृति का सुन्दर चित्रण किया गया है। ''रूबेन्स के समकालीन हॉलेण्ड के कलाकार रेम्ब्राण्ट (1606-1669) ने भी दृश्यांकन किया। रेम्ब्राण्ट के भी दो दृश्य चित्र उपलब्ध हुए हैं- पहला "The Risen Christ Appearing to the Magdaten" और दूसरा "Winter Landscap" यूरोप में दृश्य चित्रण का वास्तविक जन्म अठारहवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध एवं 19वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से माना जा सकता है और इंग्लैण्ड इस विधा में सबसे ऊपर रहा है। यहाँ दो महान कलाकारों ने दृश्य-चित्रण को नई दिशा दी। ये दोनों कलाकार समकालीन थे। प्रथम जोसेफ टर्नर (1775-1851) और दूसरा जॉन कान्स्टेबल (1776-1837) जहाँ टर्नन ने बहुत तेजी से किन्तु व्यक्तिगत बुद्धिमत्ता से दृश्य चित्रण किया, वहीं कॉन्स्टेबल ने नवीन विषयों का एक भिन्न मिजाज से दृश्यांकन किया जैसे The Cottage in a Cornfield दोनों कलाकारों का केनवास विस्तृत था। टर्नर ने समुद्र के मिजाज को भांति-भांति से चित्रित किया वहीं कॉन्स्टेबल ने ग्रामीण जीवन, खेत-खलिहान, नदी-किनारा, छोटे नगर आदि विषयों को व्यक्तिगत चिंतन और निज शैली से चित्रित किया। इनका प्रभाव तत्कालीन ही नहीं आज भी उतना ही प्रभावी है। यूरोप की क्रान्तियाँ और कैमरे के आविष्कार ने कलाकारों को नवीन पथ खोजने पर मजबूर किया। कला भी अब पूर्ण स्वतंत्रता का दावा करने लगी विशेषतः 19वीं शताब्दी से एक नये युग का आरंभ होता है जहाँ से आधुनिक कला नये विचारों, तकनीकों और विकृतियों का सहारा लेकर अभिव्यक्ति होने लगी। इस दिशा में दृश्य चित्रण में भी प्रयोगवाद ने जोर पकड़ा। चित्रकार आभास को पकड़ने लगा। यहीं से प्रभाववाद का जन्म होता है। Impressionism का प्रादुर्भाव फ्रांस में 1860 और 1870 के मध्य हुआ और 1871 से 1880 तक परिपक्व हुआ। वास्तव में प्रभाववादी चित्रकारों ने प्रकाश का वैज्ञानिक ढंग से विश्लेषण कर अपने चित्रों में साकार किया और प्रभाव को तत्काल तथा सूर्य के प्रकाश के बदलते स्वरूप को चित्रित किया। मोने, माने,

मालवा के वरिष्ठ चित्रकारों के साथ जोशी जी।

पिस्सारो, सिसले, देगा, रेनॉर आदि इस वाद के प्रतिनिधि कलाकार थे। निष्कर्ष रूप में दृश्य चित्रण की जन्मभूमि यूरोप ही है। भारत में दृश्य-चित्रण का विकास 19वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में प्रारंभ होता है। यूरोपीय कला का परिचय मुगलों को हो चुका था किन्तु कंपनी सरकार और बाद में ब्रिटिश राज में ही भारत में दृश्य चित्रण का वास्तविक विकास प्रारंभ होता है। अंग्रेजों द्वारा मद्रास, कलकत्ता, लाहौर आदि स्कूलों की स्थापना भारत में पश्चात्य कला के प्रचार के लिए की गई। बम्बई स्कूल ऑफ आर्ट की स्थापना 2 मार्च 1857 में सर जमशेद जी भाई टाटा के एक लाख रूपये दान से की गई।'' जमशेदजी अपने जहाज लेकर सुदूर पूर्व और चीन तक व्यापार करने जाते थे। संयोग से एक अंग्रेज दृश्य-चित्रकार भी टाटा के जहाज में उनकी अनुमति से यात्रा कर रहा था। जहाज जहाँ भी लंगर डालता वह चित्रकार बहुत ही सुन्दर दृश्य चित्र बनाता। टाटा ने विचार किया यह विद्या मेरे देश के युवा चित्रकारों को भी सिखलाई जाय तब टाटा ने अपने योगदान से यह स्कूल खुलवाया। पश्चिमी भारत पर इस स्कूल का अत्यधिक प्रभाव रहा है। इस स्कूल में अंग्रेज कला शिक्षक, दृश्य-चित्रण, व्यक्ति चित्रण, स्थिर चित्रण, नेचर ड्राइंग संयोजन आदि विषयों को पढ़ाते थे। शरीर-शास्त्र, पर्सपेक्टिव, प्रकाश छाया के साथ भिन्न-भिन्न प्रविधियों का भी प्रशिक्षण देते थे।मालवा पूर्णतः जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट से ही प्रेरित रहा। इसका मूल कारण मालवा के कलाकार अभ्यास मालवा में ही करते थे किन्तु परीक्षा जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स, मुम्बई जाकर देते थे। सर्वप्रथम मालवा के धार स्टेट के बिडवाल ग्राम में जन्मे (1893) महर्षि देवलालीकर जिनकी उच्च शिक्षा इन्दौर में ही हुई। बम्बई में सर जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट्स में पढ़ने गये।' पश्चात आप इन्दौर लौटकर आये और महाराजा होल्कर के सहयोग से सन 1927 में इन्दौर स्कूल ऑफ आर्ट का शुभारंभ किया। इस स्कूल के माध्यम से ही मालवा के कलाकारों को दृश्य चित्रण का वास्तविक परिचय हुआ। कलागुरु देवलालीकर ने अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के कलाकारों को मालवा की धरती पर प्रशिक्षित किया। बेन्द्रे और हुसैन, विश्व-विख्यात कलाकारों में स्थान पा चुके हैं। इनके अतिरिक्त डी.जे.जोशी, मनोहर जोशी, एस.जी.किरकिरे, एल.एस.राजपूत, विष्णु चिंचालकर भी सशक्त कलाकार रहे हैं।

बेन्द्रे, डी.जे.जोशी, मनोहर जोशी, एल.एस.राजपूत, विष्णु चिंचालकर चन्द्रेश सक्सेना, श्रेणिक जैन दृश्यांकन के बेजोड़ कलाकारों में अपना प्रमुख स्थान रखते हैं। बेन्द्रे ने प्रारंभ में दृश्य चित्रण पर अधिक ध्यान दिया। आपने पर्यटन विभाग में कार्य करते हुए कश्मीर में बहुत ही सुन्दर दृश्य चित्र बनाये। डी.जे.जोशी देवलालीकर के प्रमुख शिष्य एवं प्रभाववादी दृश्य चित्रकारों में प्रमुख स्थान रखते थे। आपके दृश्य चित्रों ने पूरे देश में धूम मचाई। आपके दृश्य चित्रों में भारतीय कला जिज्ञासुओं ने रंग-बिरंगे मालवा के दर्शन दिये। आपके गुणी शिष्यों में पद्म श्री वि.श्री.वाकणकर, स्व.चन्द्रेश सक्सेना, श्रेणिक जैन आदि है।स्व.विष्णु चिंचालकर इन्दौर स्कूल ऑफ आर्ट में कला अध्यापक रहे फिर स्वतंत्र चित्रकार के साथ-साथ लोकप्रिय समाचार पत्र 'नई दुनिया' से जुड़े। आप दृश्य चित्रों में भी कोलाज विधा का प्रयोग करते थे। स्व.एल.एस. राजपूत जलरंगों में छोटे-छोटे आकार के दृश्य-चित्र प्रभाववादी शैली में बनाते थे। आपने ग्वालियर को अपनी कर्मभूमि बनाया। स्व.चन्द्रेश सक्सेना, धार में डी.जे.जोशी के शिष्य रहे। आपने दृश्य चित्रों में अपने चिंतन के अनुरूप अनेक प्रयोग किये। उज्जैन, धार, माण्डव आदि स्थानों के दृश्य जलरंगों के

विदुषी कमला रत्नाम् के हाथों सम्मानित होते हुए जोशी जी

माध्यम से एकदम भिन्न प्रकार से चित्रित किये। इन्दौर में वर्तमान में श्रेणिक जैन अपने काल्पनिक दृश्यांकन से सभी को आश्चर्य चकित कर रहे हैं। आप डी.जे. जोशी, जगन्नाथ, मुरलीधर अहिवासी जैसे गुरुजनों से प्रशिक्षित हुए। प्रो.कर्णसिंह इन्दौर स्कूल ऑफ आर्ट में कला शिक्षक हैं और दृश्य चित्रण में अपना विशेष स्थान रखते हैं। इस विधा में ओर भी युवा कलाकार हैं जो प्रयोगरत हैं। मालवा का अति प्राचीन, सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और धार्मिक नगर उज्जैन है। यहाँ भी आधुनिक कला परम्परा 20वीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध से प्रारंभ होती है। यहाँ स्व. एम.एस.भाण्ड सन 1935 तक कला अध्यापन का कार्य करते हुए ग्वालियर चले गये और वहाँ भाण्ड स्कूल ऑफ आर्ट आपने प्रारम्भ किया। कलागुरु मास्टर मदनलाल आप ही के शिष्य थे। श्री कोरान्ने, श्री सोमनी भी उल्लेखनीय है। किन्तु 1945 के लगभग स्व.सी.एच.खाडिलकर मन्दसौर से स्थानान्तरित होकर माधव महाविद्यालय उज्जैन में आये। आप बम्बई से ए.एम.की उपाधि प्राप्त थे। सन 1953 में स्व. वि.श्री वाकणकर बम्बई से सर जे.जे. स्कूल ऑफ आर्ट का डिप्लोमा प्रापत कर उज्जैन आये और आपने माधवनगर क्षेत्र में घण्टाघर के समीप भारती कला भवन स्कूल प्रारंभ किया। आप स्व.डी.जे.जोशी के धार स्थित कला विद्यालय में शिष्य रहे थे। आपने उज्जैन में अपने शिष्यों को सप्ताह में एक दिवस दृश्य-चित्रण की ओर प्रेरित किया। आपसे प्रेरणा प्राप्त सच्चिदा नागदेव, मुजफ्फर कुरेशी, शिवकुमारी रावत, रामचन्द्र भावसार, रहीम गुट्टी, कमल चव्हाण, विष्णु भटनागर, डॉ.एस.के.जोशी, श्री राधेश्याम भारद्वाज, जयन्त टाँक, सुनन्दा आदि अनेक कलाकार हैं। सन 1964 में उज्जैन के माधव महाविद्यालय में चित्रकला विषय की एम.ए. की कक्षाएँ प्रारंभ की गई। इस पाठ्यक्रम में दृश्य चित्रण विषय भी पढ़ाया जाता है। स्व.सी.एच. खाडिलकर, प्रो.शिव कुमार जोशी, डॉ.रामचन्द्र भावसार, डॉ.प्रभाकर वाध, डॉ.एस.के.जोशी और वर्तमान में डॉ.अल्पना उपाध्याय अन्य विषयों के साथ दृश्यांकन का भी प्रशिक्षण दे रहे हैं।

कन्या महाविद्यालय दशहरा मैदान में भी एम.ए.चित्रकला विषय है और वहाँ भी दृश्य कला सिखाई जाती है। रतलाम नगर में बी.ए. कक्षाओं तक चित्रकला विषय का प्रशिक्षण दिया जाता है। इसी प्रकार कुछ वर्ष पूर्व मन्दसौर महाविद्यालय में भी चित्रकला विषय प्रारंभ किया गया है। धार में स्व.फड़के के प्रयास से धार स्कूल ऑफ आर्ट प्रारंभ किया गया। स्व.डी.जे. जोशी यहाँ प्रथम प्राचार्य रहे। आपने यहाँ दृश्य-चित्रण में अनेक विद्यार्थियों को प्रशिक्षित किया। देवास के शा.महाविद्यालय में अफजल पठान ने इस विषय को रुचि से पढ़ाया। भोपाल के तीन विद्यालयों में चित्रकला विषय पढ़ाया जाता है। वहाँ भी पाठयक्रम में दृश्य चित्रण को महत्व प्रदान किया गया है। निष्कर्ष रूप में मालवा में अनेक दृश्य चित्रकारों ने जन्म लिया जो आज संपूर्ण भारत में अपने दृश्यांकन के द्वारा महत्त्वपूर्ण स्थान प्राप्त किये हुए हैं उनमें प्रमुख स्व.कलागुरु देवलालीकर, स्व.डी.जे.जोशी, स्व.एल.एस.राजपूत एवं विष्णु चिंचालकर, स्व.एन.एस.बेन्द्रे, मनोहर जोशी, डॉ.वाकणकर, स्व.चन्द्रेश सक्सेना, प्रो.शिवकुमारी जोशी, श्रेणिक जैन, सचिदा नागदेव, स्व.अफजल पठान, डॉ.रामचन्द्र भावसार, डॉ.एस.के.जोशी, डॉ.विष्णु भटनागर आदि हैं। सुखद यह है कि मालवा में चित्रकला फल-फूल रही है और नयी पीढ़ी में भी अच्छे चित्रकारों का बाहुल्य है।

17 एम.आय.जी. मुनिनगर, उज्जैन

परिजनों की दृष्टि में श्रीकृष्ण जोशी

घर में सबके जोशी काका

राजेन्द्र जोशी

वैसे हम सभी जोशी परिवार के सदस्य हैं किन्तु प्यार से हमारे दादा जी श्रीकृष्ण जोशी को सिर्फ जोशी कहकर पुकारते थे और कालान्तर में वे जोशी काका के नाम से ही जाने जाने लगें। जोशी परिवार की पारिवारिक पृष्ठभूमि बहुत संघर्षशील रही है। कला जोशी परिवार के खून में ही वास करती है। हमारे दादा जी भी कलाप्रेमी थे तथा श्रीकृष्ण जोशी के बड़े भ्राता मेरे पिता स्व.धर्मराज जोशी श्रेष्ठ मूर्तिकार एवं रेडियो सिंगर रहे हैं। जोशी काका ने प्रारंभिक शिक्षा जूना महाकाल (उज्जैन) के मंदिरों एवं रामघाट की सरकारी रोशनी में जारी रखी तथा धीरे धीरे इस मुकाम तक पहुँचे। हमारे पैतृक मकान में अतिप्राचीन श्रीकृष्ण एवं राधा की मूर्ति स्थापित है। इसी प्रकार रामघाट पर धर्मराज मंदिर पर भी मूर्ति स्थापित है। मूर्तियों के शृंगार की प्रेरणा स्व.दादा जी से इन्हें प्राप्त हुई और ये इन मूर्तियों का शृंगार करने लगे तभी से कला रूपी बीज डॉ.श्रीकृष्ण जोशी में पैदा हुआ और कला के प्रति जागरूकता आई, धीरे-धीरे कला में स्नातक, स्नातकोत्तर एवं डॉ.की उपाधि प्राप्त की, आज भी आप कला के प्रति एवं परिवार के प्रति समर्पण भाव रखते हैं। प्रकृति चित्रण में आपकी अत्यधिक रूचि रही है। आपने कई राज्यस्तरीय एवं राष्ट्र स्तरीय पुरस्कार प्राप्त कर जोशी परिवार के साथ शहर के नाम को भी गौरवान्वित किया है। आज हमारे काका के मार्गदर्शन में सीखे छात्र कला के क्षेत्र में काफी नाम कमा रहे हैं। मैंने स्वयं ने भी काका के मार्गदर्शन में चित्रकला विषय में स्नातक उपाधि प्राप्त की है। हमारी काकी स्व.शिवकुमारी जोशी भी माधव महाविद्यालय में चित्रकला विभागाध्यक्ष रही हैं तथा स्वयं श्रीकृष्ण जोशी भी चित्रकला विभागाध्यक्ष रहे हैं। डॉ.श्रीकृष्ण जोशी को चित्रकला के साथ साथ संगीत कला का भी शौक रहा है। आप एक अच्छे तबलावादक भी हैं। इतिहास एवं साहित्य के क्षेत्र में भी आपकी अत्यधिक रूचि है। आप छात्र राजनीति में भी सक्रिय रहे हैं तथा आप विक्रम यूनिवर्सिटी के वेट लिफ्टर भी रहे है। हमारे काका डॉ.श्रीकृष्ण जोशी की एक मात्र पुत्री है श्रीमती डॉली पाहवा जो कि अपने जीवन साथी राजीव पाहवा के साथ समाजसेवा एवं पर्यावरण सुधार कार्य में सतत लगी रहती है। हमें हमारे काका डॉ.श्रीकृष्ण जोशी पर नाज़ है। हम उनके मंगल स्वास्थ्य की कामना करते हैं तथा विश्वास करते हैं कि वे सतत कला प्रवाह में अपना सक्रिय योगदान देते रहेंगे।

(लेखक श्रीकृष्ण जोशी के भतीजे हैं तथा स्वयं भी चित्रकार हैं, और सेवानिवृत्त शिक्षक हैं)

119, बक्षी बाजार, उज्जैन
मो.96692-51919

स्वाभिमान और पुरुषार्थ की प्रतिमूर्ति

एक सच्चे और समर्पित चित्रकार के रूप में मैंने, अपने ससुर डॉ.श्रीकृष्ण जोशी को देखा है। निष्ठा और आत्म-सम्मान, दोनों गुणों को साधते हुए, मैंने उन्हें कला-यात्रा में आगे बढ़ते हुए पाया है। यह उनकी लगन, मेहनत और पुरुषार्थ ही है कि बचपन के अभावों को दरकिनार करते हुए उन्होंने शिक्षा प्राप्त की तथा एक शिक्षक की नौकरी से उन्नति करते हुए वे चित्रकला के प्रोफेसर के पद तक पहुँचे। वे जन्मजात कलाकार हैं। संगीत, नाटक, साहित्य, नृत्य, मूर्ति-कला इत्यादि सभी क्षेत्रों में आपकी रुचि रही है तथा सहभागिता भी। लेण्डस्केप तथा पोर्ट्रेट बनाने में आपको महारत हासिल है। जिजीविषा से लबरेज़ तथा मित्रों के मित्र, वे उम्र के इस पड़ाव पर भी सतत कार्यशील हैं। उनका घर, कला के विद्यार्थियों के लिये सदैव खुला रहता है। बच्चों को निःशुल्क शिक्षण भी आप देते हैं। समय को वे कभी व्यर्थ नहीं जाने देते। सफ़र में हो, महफ़िल में बैठे हों, बीमार हो बिस्तर पर लेटे भी हों पर क़लम और कागज वे नहीं छोड़ते, स्केच, दृश्य-चित्र बना ही देते हैं। हिन्दी-साहित्य के भी अच्छे जानकार हैं तथा कविताएँ भी लिखते हैं। उनके जीवन को देखकर मुझे भी प्रेरणाएँ प्राप्त होती रहती हैं। मैं उनके यशस्वी और शतायु होने की कामना करता हूँ।

दामाद श्री पाहवा एवं पुत्री डाली के साथ श्रीकृष्ण जोशी और श्रीमती जोशी

राजीव पाहवा (लेखक जोशी जी के दामाद हैं तथा समाजसेवी हैं।)

मेरे पिता : डॉ.श्रीकृष्ण जोशी

मेरे पिता, मेरे लिये एक आदर्श व्यक्ति हैं, जिन्होंने बचपन से लेकर आज तक विपरीत परिस्थितियों में भी अपने धैर्य को बनाये रखते हुए, अपने जीवन को गढ़ा है। बचपन में, माँ को खो देने पर, उन्हें अपने पिता का स्नेह, दुलार मिला, जिसने उन्हें कर्मठ और परिश्रमी व्यक्तित्व का धनी बनाया। वे समय के पाबंद रहते हैं और जो भी कार्य करते हैं उसे शत-प्रतिशत गुणवत्ता तक ले जाने का प्रयत्न करते हैं। मेरा बचपन बीमारियों से ग्रस्त रहा। यह मेरे पिता का ही धैर्य, निष्ठा और परिश्रम था कि मैं आज स्वस्थ हूँ। मेरी माँ, मेरे पिता की गुरु रही हैं और उनसे प्राप्त चित्रकला के ज्ञान का मान आज भी वे उन्हें ही देते हैं। दोनों ने मिलकर कई सुंदर पेंटिंग्स का निर्माण किया है। वे विक्रम विश्वविद्यालय के चित्रकला विषय के पहिले पी.एचडी. उपाधि-धारक हैं। हमारे घर पर बड़े-बड़े कलाकार आया करते थे। श्री वाकणकरजी, खाडिलकर जी, पद्मश्री राजपूत सा, बेंद्रजी के नाम मुझे अभी भी स्मरण है। उनके व्यक्तित्व में सहजता, सरलता, सहृदयता, कृतज्ञता, संतत्व इत्यादि गुण समाहित हैं, जिनकी मैं बड़ी कायल हूं। वे सच्चे जिज्ञासु हैं और आज भी कुछ नया सीखने को लालायित रहते हैं और अपने चित्रकला-कर्म में प्रवृत्त हैं। मैं उनके प्रति श्रद्धावनत हूँ तथा उनके स्वस्थ एवं दीर्घ जीवन के लिये प्रभु से प्रार्थना करती हूँ।

डाली (सखी पाहवा) (लेखिका जोशी जी की पुत्री हैं)

श्रीकृष्ण जोशी की कलाकृतियों पर सुधिजनों की टिप्पणियाँ

श्रीकृष्ण जोशी ने अपने चित्रों में वातावरण को चितेरने का प्रयास किया है। संघर्षों के मध्य पलने वाले इस चित्रकार को उपेक्षा के मध्य उठते देख आनन्द होता है। उसके इस जीवन पक्ष का प्रभाव चित्रों के रंग, संगीत व वातावरण को नहीं छुपाया यह एक बड़ी उपलब्धि है। कला-निलय के एक साधक के रूप में उनका प्रयास गहनीय है। यह प्रदर्शनी अपने मनोमय भावों की अभिव्यक्ति का साधन मात्र है, पूर्णता नहीं। आशा है वे उत्तरोत्तर हमें नई अभिव्यक्ति नए प्रादेशिक वातावरण का दर्शन कराएंगे जैसा कि वे इन चित्रों द्वारा कर रहे हैं।

स्व.पद्मश्री वि.श्री.वाकणकर (10-08-1971)

श्रीकृष्ण जोशी एक नवोदित चित्रकार हैं। जीवन मन्थन से जो लोनी स्वरूप चित्र प्राप्त होते हैं, उनमें संघर्ष छिपा है। साधना के ताप से पिघलते हुए रूप, रेखा और रंगों का यह संसार अनायास आनन्दोल्लास का दर्पण बन जाता है। चित्रकार पारदर्शी जलरंगों से खेलने में पटु है। इस दुर्गम पथ पर चलकर कलाकार कला जगत में शुक्रतारा बनकर चमके ऐसी शुभेच्छा है।

प्रो.शिवकुमारी रावत
अध्यक्ष चित्रकला विभाग मा.म.वि., उज्जैन

उच्च ब्राह्मण कुल में जन्में डॉ.श्रीकृष्ण जोशी से मेरा परिचय गत 50 वर्षों से रहा है। वे कालिदास साहित्य से जुड़े हुए तथा उनके महाकाव्यों और नाटकों के पाठक रहे हैं। आपने कालिदास की रचनाओं से प्रभावित होकर अनेक चित्रों की रचना की है। तथा अखिल भारतीय कालिदास समारोह के अन्तर्गत राष्ट्रीय चित्र एवं मूर्तिकला प्रदर्शनियों में पुरस्कार भी प्राप्त किये हैं। मैंने शासकीय माधव महाविद्यालय में उनके साथ चित्रकला अध्यापन कार्य भी किया है। डॉ.जोशी जल रंग द्वारा दृश्य चित्रण करने में सिद्धहस्त हैं। समय पर कार्य करना उनके स्वभाव में है अतः वे महाविद्यालय में हमेशा समय पर आते थे और अपना अध्यापन कार्य अपनी पूरी शक्ति लगाकर किया करते थे। आज भी वह घर पर अध्यापन कार्य में व्यस्त रहते हैं, चित्र रचना करते हैं मैं डॉ.श्रीकृष्ण जोशी के स्वस्थ रहने और दीर्घायु रहने की कामना करता हूँ।

वरिष्ठ चित्रकार श्री आर.सी.भावसार के साथ।

डॉ.रामचन्द्र भावसार, वरिष्ठ चित्रकार
सेवानिवृत्त वरिष्ठ कलाचार्य, मा.म.वि.उज्जैन

श्रीकृष्ण जोशी ने अपने चित्रों में पर्यावरण को चितेरने का प्रयास किया है। इनकी पेन्टिंग्स मनमोहक है। उज्ज्वल भविष्य के लिए शुभकामनाएँ

श्रीमती प्रतिभा पाटिल
महामहिम राज्यपाल, राजस्थान

''जोशी जी के चित्रों का अवलोकन कर खूब आनंद आया। उनके देशी चित्र तथा वाटर कलर पद्धति के यानी दोनों धाराओं में ही खूब प्रवाह नजर आ रहा है। इनके लिए मैं क्या कहूँ खूब मजा आया।''

पद्मश्री कृपालसिंह जी शेखावत (जयपुर)

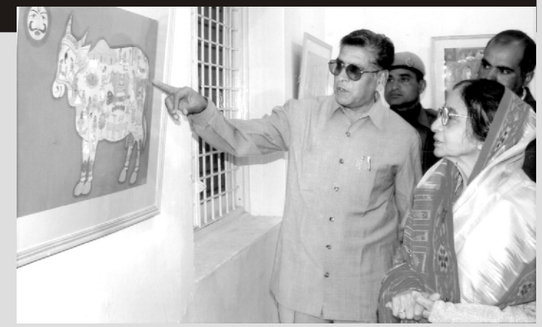

तत्कालीन राज्यपाल (राजस्थान) श्रीमती प्रतिभा ताई पाटिल को चित्र दिखाते हुए डॉ.जोशी।

मेरी निगाह में श्रीकृष्ण जोशी

ईश्वरी रावल

एक चित्रकार के जीवन में, उसके आसपास जो कुछ घटता है वह उसकी स्मृति में चला जाता है। चित्रांकन उन्हीं सब लम्हों का पुनर्सृजन है। यह उनकी मनःकृत अवस्था का प्रतिफल है। चित्र अनागत का स्वप्न है और चित्रकार का घटित अतीत भी। एक चित्रकार के पास रच लेने की अनिवार्यता नहीं एक लंबा धैर्य होता है जिसे वह अंत तक बनाये रखता है। डॉ.श्रीकृष्ण जोशी ऐसे ही चित्रकार हैं जिन्होंने भारतीय कला परंपरा को समझने, उसे दिल में गहरे उतारने और उसके प्रति प्रेक्षक के मन में इज्जत पैदा करने का प्रयास ता-जिन्दगी किया। रंग-रेखाओं में विश्वास की प्रामाणिकता उनकी कृतियों में भरी पड़ी है। मेरे सहपाठी और अभिन्न मित्र श्री जोशी की जिन्दगी की सच्चाई उनके चित्रित पवित्र शिप्रा के घाटों, शिलाओं, पौराणिक नगरी अवंतिका यहाँ की गलियों, छज्जों और प्रकृति के निर्वस्त्र सौंदर्य में बरामद की जा सकती है। जलरंग कला का चमत्कारी और विशिष्टता मूलक माध्यम है। रंग में जब तक जल है तभी तक वह आपको तोड़ने मरोड़ने की इजाजत देता है और सूखने पर इंकार कर देता है। चित्रण के सभी माध्यमों में जलरंग पर नियंत्रण अत्यन्त कठिन होता है किन्तु श्रीकृष्ण जोशी की जलरंग की सृजनात्मक सामर्थ्य अपनी गुणवत्ता में गहरी उतरी है। उनके जलरंग के दृश्यचित्र और पौराणिक संरचनाएँ केवल उनके ही नहीं अपितु उनके देखने वालों के भी हैं, चित्र से संवाद करने वालों के भी है। उनके यहाँ जलरंग की ऐसी सुघड़ लय है जो लगातार लोक मानस को उद्वेलित रखती है। माधव महाविद्यालय में कला संकाय के प्रोफेसर के रूप में काम करते हुए वे अपनी कला से अधिक अपने विद्यार्थियों के नजदीक रहे। उनके अधीन कई विद्यार्थियों ने पीएच.डी. की उपाधि प्राप्त की एक मास्टराना नैतिकता उनमें है और जमकर है। उनके आकार जहाँ एक ओर विश्वसनीय लगते हैं वहीं दूसरी ओर चित्र का कथ्य उनके लंबे अनुभव का प्रामाणिक दस्तावेज है।

अभा ख्याति प्राप्त कलाकार एवं राष्ट्रीय पुरस्कार प्राप्त
मो.94240-08937

अधिकारियों और नेताओं को कला विषय गौण लगता है...

डॉ.श्रीकृष्ण जोशी से जगदीशचन्द्र पण्डया की बातचीत

जगदीशचन्द्र पण्डया : आपकी कला यात्रा कहाँ और कब प्रारंभ हुई ?

श्रीकृष्ण जोशी : उज्जैन (म.प्र.) में सन 1955 से मेरी कला यात्रा प्रारंभ हुई। किन्तु कला की ओर वास्तविक रूप में उन्मुख हुआ सन् 1963 जब ख्यात मूर्तिकार श्री अनिल कुमार (शांति निकेतन) ने मेरा विषय परिवर्तन करवाया और मैं विज्ञान संकाय छोड़कर कला संकाय में आ गया। स्व.श्री सी.एच.खाडिलकर, स्व.प्रो.शिव कुमारी रावत और स्व.पद्मश्री वि.श्री.वाकणकर जी ने भी मेरा इस क्षेत्र में समुचित मार्गदर्शन किया।

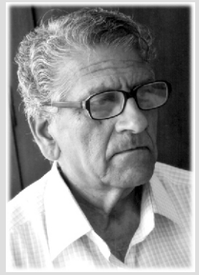

आपके कला गुरु कौन थे और आपने उनसे क्या सीखा?

प्रारंभिक ज्ञान स्व.श्री खाडिलकर जी से प्राप्त किया। दृश्य चित्रण, संयोजन और आलेखन कला स्व.प्रो.रावत से तथा त्वरित रेखांकन स्व.वाकणकरजी से सीखा।

आपके सहपाठी मित्र जिनकी कला से आप प्रेरित हुए, उनके संबंध में प्रकाश डालिये?

स्व. नगजीराम (उज्जैन) कुशल व्यक्ति-चित्रकार थे। उनसे व्यक्ति-चित्रण की प्रेरणा मिली। अखिल भारतीय ख्याति प्राप्त चित्रकार ईश्वरी रावल से संयोजन और आलेखन की प्रेरणा मिली।

पश्चिमी और पूर्वी कला में क्या अंतर है?

प्रश्न विस्तृत है। अति संक्षिप्त रूप में केवल इतना ही कहा जा सकता है कि पश्चिमी कला यथार्थवादी है, उसमें भौतिक पक्ष प्रबल है जबकि पूर्वी कला आध्यात्मिक है और इसमें कल्पना तत्व प्रमुख है। उदाहरण के रूप में प्राचीन यूनान के कलाकारों के नाम ज्ञात होते हैं किन्तु भारतीय अर्थात पूर्वी कलाकारों ने अपनी कृतियाँ ईश्वर अर्पण हेतु बनाईं इसलिये 'मैं' अर्थात नाम को कोई महत्त्व नहीं दिया। विश्व विख्यात अजंता के चित्रों पर किसी कलाकार के नाम का उल्लेख नहीं मिलता है। मध्यकाल के पश्चात मुग़ल काल और राजपूत काल में कलाकारों का उल्लेख मिलता है।

कला अनेक प्रकार की है, उनके बारे में कुछ बताइये?

कला के प्रकार अनेक हैं। मुख्यतः वास्तुकला, मूर्तिकला, संगीतकला, नृत्य कला और चित्रकला प्रमुख हैं। इन्हें 'फाइन आर्ट' भी कहा जाता है। विशेषकर मध्यकालीन मंदिरों में सभी कलाओं का संगम मिलता है।

भारतीय कला का अन्य कलाओं से अन्तः सम्बन्ध है। भारतीय कला का पहला प्रामाणिक ग्रंथ 'विष्णु धर्मोत्तर पुराण है।' इसके तृतीय खण्ड में कलाओं पर प्रकाश डाला गया है और इनके अंतः सम्बन्धों की भी चर्चा की गई है। वज्र और मार्कण्डेय मुनि का वार्तालाप है। जैसे किसी देवता की प्रतिमा बनाना हो तो सर्वप्रथम चित्रकला के नियमों का ज्ञान आवश्यक है। इसी प्रकार चित्रकार को मुद्राओं हेतु नृत्यकला का ज्ञान होना भी आवश्यक है। इसी प्रकार वाद्य संगीत, गीत विद्या का भी।

मध्यकाल में कलाओं पर अनेक ग्रंथ लिखे गये हैं। प्राचीन ग्रंथ हैं- वात्स्यायन का 'कामसूत्र'। मध्यकालीन ग्रंथों में महाराज भोज का' 'समरांगण सूत्रधार' (ग्यारहवीं शती), भुवनदेव कृत 'अपराजित पृच्छा', सोमेश्वर देव संकलित, 'अभिलाषितार्थ चिंतामणि' (बारहवीं शती), 'शिल्परत्न' (सोलहवीं शती) इत्यादि।

आधुनिक कला क्या है? इसका जन्म कैसे हुआ, संक्षेप में बतायें।

आधुनिक कला अर्थात आज की कला। उन्नीसवीं शताब्दी से आधुनिक काल का आरंभ माना जाता है। इसके जन्म की पृष्ठभूमि में कई कारण हैं। संक्षेप में हैं- परंपराओं से मुक्ति, नये सृजन की भावना, विज्ञान, केमरे का आविष्कार, स्वतंत्रता की भावना, धर्म-बंधन से मुक्ति इत्यादि। कला भी साहित्य के समान, समाज का दर्पण है। प्रथम विश्व युद्ध, द्वितीय विश्व युद्ध की विभीषिका ने कलाकारों को भी झकझोर कर रख दिया। कलाकार अति संवेदनशील मानव होता है। उसकी कला में यह सब प्रकट होने लगा। अभिव्यक्ति में उसे जो भी बाधक लगा, उसने उन सब बंधनों को त्याग दिया। जैसे कला के नियम। कला का उद्देश्य होता है, समाज में घट रही घटनाओं की तीव्र अभिव्यक्ति। इसका सबसे ज्वलंत उदाहरण है- पिकासो की विशाल कृति 'गोअर्निका (सन 1937)। यह चित्र जर्मन अत्याचार का प्रतीक है।

कला के आधुनिक वादों पर संक्षिप्त में कुछ बताइये?

मध्यकाल का समापन और उन्नीसवीं शती से आधुनिक काल का प्रारंभ माना गया है। उन्नीसवीं शती में चार धाराएँ प्रमुख थीं। नव-शास्त्रीयतावाद, स्वच्छंदतावाद, यथार्थवाद और प्रभाववाद। बरोक और रोकोको शैली के विरोध में नव-शास्त्रीयतावाद प्रारंभ हुआ। प्राचीन यूनानी कला से प्रेरणा लेकर नव-शास्त्रीयता वाद प्रारंभ हुआ। यह वर्तमान और अतीत से प्रेरित था। इसमें भी नियम की कठोरता आने लगी, तब प्रतिक्रिया स्वरूप स्वच्छंदतावाद (रोमांटिज़्म) का उदय हुआ। चित्रकला अर्थात रंगों के भावनात्मक पहलू के साथ-साथ दर्शक पर तत्काल प्रभाव पड़े, इस वाद का प्रमुख आधार था। एक दूसरे के विरोध स्वरूप नये-नये वाद जन्म लेने लगे। यह सिलसिला आज भी जारी है। संक्षेप में, आधुनिक काल का सर्वाधिक प्रभावशाली वाद प्रभाववाद था। तत्पश्चात नव-प्रभाववाद, उत्तर प्रभाववाद, प्रतीकवाद, फाविज़्म, धनवाद, भविष्यवाद, अभिव्यंजनावाद, अमूर्त-चित्रण, दादावाद अतियथार्थवाद इत्यादि सामने आये।

आपकी रुचि पारंपरिक कला में है अथवा आधुनिक कला में?

अतीत से प्रेरणा लेकर प्रयोग करना, अर्थात दोनों में।

आपका प्रिय वाद कौन सा है?

मेरा प्रिय वाद प्रभाववाद है। मोने, माने, पिस्सारो आदि कलाकारों ने जो प्रयोग किये, मुझे अच्छे लगे। ये फ्रांसीसी कलाकार तेल-रंगों में कार्य करते थे। इस प्रकार मेरी और इनकी तकनीक में साम्य नहीं है क्योंकि मैं जल-रंग में कार्य करता हूँ।

आपके प्रिय कलाकार कौन कौन से हैं?

पश्चिमी कलाकारों में लियोनार्दो-दा-विंची, राफेल, रेम्ब्रा और मोने। भारतीय कलाकारों में बेंद्रे, ढांड, डी.जे. जोशी, श्री राजपूत, विष्णु चिंचालकर, प्रो.शिव कुमारी रावत आदि।

कला के प्रचार-प्रसार हेतु आपके विचार/सुझाव हों तो बताएँ ?

बीसवीं शती के छठे दशक में चित्रकला विषय कक्षा छह में अनिवार्य था एवं कक्षा सात व आठ तथा कक्षा नौ व दस में ऐच्छिक था। किन्तु धीरे-धीरे शिक्षा विभाग ने इस विषय को बंद कर दिया। उज्जैन में केवल उत्कृष्ट विद्यालय में कथा ग्यारह व बारह में है। जबकि यह विषय पुनः माध्यमिक कक्षाओं में आरंभ होना चाहिये। ऐसा लगता है अधिकारियों, नेताओं को कला गौण विषय लगता है। इसलिये अब तक किये गये प्रयासों का कोई सार्थक असर दिखाई नहीं देता है।

नये कलाकारों के लिये कोई संदेश?

कला को पूजा/आराधना समझकर समर्पण भाव से आगे बढ़ें।

112, संतनगर, उज्जैन (म.प्र.)
मो.99770-50269

वरिष्ठ चित्रकार डॉ.श्रीकृष्ण जोशी की पेंटिंग्स

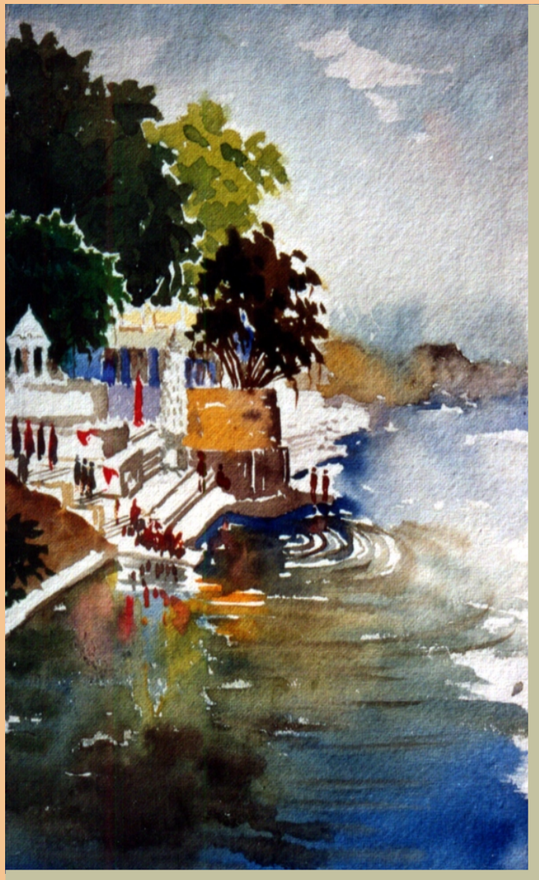

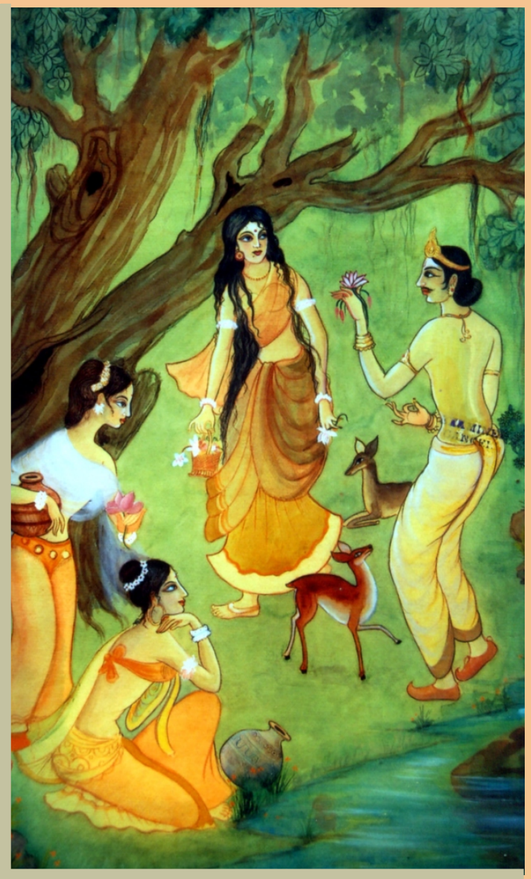

मध्य प्रदेश नाटक लोककला अकादमी

पंजीकृत नं.5220/76

प्रधान कार्यालय- माधवी, 129, दशहरा मैदान, उज्जैन, 456010

दूरभाष - 0734-2520263

संस्थापक : डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य

विगत 42 वर्षों से उज्जैन नगर
के रंगकर्म की
एक प्रतिष्ठित और लोकप्रिय संस्था
म.प्र.नाटक लोककला अकादमी,
जो रंगकर्म
से संबंधित विधाओं के प्रति समर्पित है

1- प्रशिक्षण- नाट्य डिप्लोमा कोर्स
2- विशेषज्ञों के व्याख्यान
3- मंच सज्जा, प्रकाश और ध्वनि
4- अभिनय
5- पार्श्व मंच
6- माईम
(राष्ट्रीय माईम महोत्सवों का आयोजन)
7- लोक संस्कृति
8- विशेष अवसरों पर कालजयी संस्कृत
नाटककारों के नाटकों का मंचन एवं
प्रतिमाह अन्य नाट्य प्रदर्शन
9- चौपाल नाटक

मध्यप्रदेश नाटक लोककला अकादमी उज्जैन के पदाधिकारी

डॉ.निवेदिता वर्मा	**राजीव शुक्ला**	**संजय मुंगी**	**प्रकाश बांठिया**	**कृष्णा बनर्जी**
महानिदेशक	निदेशक	महासचिव	कार्यकारी अध्यक्ष	अध्यक्ष
मो.नं.94250-66911	मो.नं.94250-94611	मो.नं.85188-9988	मो.नं.98260-69558	मो.नं.098203-40589

श्रीराम दवे	**जितेन्द्र टटवाल**	**हरदीप दायले**	**जितेंद्र वाड़िया**
कार्यालय प्रमुख	निदेशक रंग मंडल	सचिव	सहसचिव
मो.नं.94259-15010	मो.नं.85188-9988	मो.नं.9770871304	मो.नं.79879-94939

ઇન્ડેક્ષ્ટ-સી

ઈન્ડસ્ટ્રીઅલ એક્ષટેન્શન કોટેજ
(ગુજરાત સરકારની સંસ્થા)

iNDEXT-c

રજી. ઓફીસ :
બ્લોક નં. ૭/૧, ઉદ્યોગ ભવન, સેકટર - ૧૧, ગાંધીનગર.
ફોન. : ૦૭૯ - ૨૩૨૫૪૨૬૧ - ફેકસ:૦૭૯ - ૨૩૨૫૬૦૦૭
E-mail : exdire-indext-c@gujarat.gov.in
Website : www.craftofgujarat.gujarat.gov.in

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સી - કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ સ્થાપવામા માહિતી અને માર્ગદર્શન પૂરું પાડતી ગુજરાત સરકારશ્રીની સંસ્થા

ઈન્ડેક્ષ્ટ-સીની રચના કોઈપણ નફાકારક પ્રવૃત્તિ સિવાયના નીચેના ઉદેશો માટે થયેલા છે.

૧. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ સ્થાપવા ઈચ્છુક સાહસિકોને ઉદ્યોગોની પસંદગી, સ્થળ પસંદગી તથા જે તે ઉદ્યોગ માટે સરકારશ્રીના પ્રવર્તમાન પ્રોત્સાહનો / લાભો વિગેરેની જાણકારી આપવી.

૨. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ ક્ષેત્રની વિવિધ સહાયની યોજનાઓને એકત્રિત કરી તે વિશે ભાવિ ઉદ્યોગ સાહસિકોને માહિતી આપવી અને આવી માહિતીનું સાહિત્ય પ્રકાશિત કરવું.

૩. કુટિર અને ગ્રામોદ્યોગ ક્ષેત્રના વિવિધ ઉદ્યોગની માહિતી અને ઉદ્યોગ માટેની રૂપરેખા (પ્રોજેકટ પ્રોફાઈલ)એકત્રિત કરી તે વિશે ઉદ્યોગ સ્થાપવા ઈચ્છુક વ્યકિતઓને તેની જાણકારી આપવી.

૪. કુટિર ઉદ્યોગ ખાતાની તથા કુટિર ઉદ્યોગ સંલગ્ન બોર્ડ / કોર્પોરેશનની વિવિધ યોજનાઓના ફોર્મ / અરજીપત્રક પૂરા પાડવા.

૫. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસ માટે જાહેરાત મારફત પ્રચાર ઝૂંબેશ ચલાવવી.

૬. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસ માટે સેમિનાર, વર્કશોપ તથા પ્રદર્શનનું આયોજન કરવું અને આવા આયોજન માટે સહાય પૂરી પાડવી.

૭. કુટિર ઉદ્યોગના વિકાસમાં ઉપયોગી હોય તેવી અન્ય પ્રવૃતિઓ હાથ ધરવી.

૮. કુટિર ઉદ્યોગ ક્ષેત્રની આર્થિક સમસ્યાઓના નિવારણ માટે બેન્કો તથા અન્ય નાણાંકીય સંસ્થાઓ જોડે ચર્ચા-વિચારણા હાથ ધરવી.

मनोराग-14

समावर्तन के अधबीच चिन्तन केन्द्रित अर्द्धवार्षिक स्तंभ

विशेष सम्पादक : **रमेश दवे**
सहयोग : **श्रीराम दवे**

(40)

मनोभूमि

रमेश दवे

(41)

कहानी की कहानी

अवधारणा और संरचना

डॉ.मालती शर्मा

(45)

श्रुति

महेन्द्र शर्मा

(46)

उर्दू शायरी में वेदान्त और

गंगाजमनी तहज़ीब

राकेश भारतीय

इस बार विशिष्ट चिंतक : डॉ.मालती शर्मा

नत्थि संति पर सुखम्

रमेश दवे

बौद्ध वाङ्.मय में बुद्ध वाणी इन चार महावाक्यों में अभिव्यक्त हुई है।

- नत्थि राग समो अग्नि : राग अथवा प्रेम के समान कोई आग नहीं
- नत्थि दोस समो कलि : द्वैष के समान कोई मैल नहीं
- नत्थि खंद समो दुक्खा : पंच स्कंधों के समान दुख नहीं
- नत्थि संति परं सुखम् - शांति से बढ़कर कोई सुख नहीं

बौद्ध वाङ्.मय यह भी बताता है कि मनुष्य का अस्तित्व दो चीजों से निर्मित है - (1) रूप और (2) नाम। रूप यानी देह और नाम यानी मन। मन के भी चार रूप है - वेदना, संज्ञा, संस्कार और विज्ञान। यदि मनुष्य इनकी उपेक्षा करता है तो पाँच स्कंध मनुष्य का जीवन दुखमय बना देते हैं। ये पाँच स्कंध हैं - काम, क्रोध, लोभ, मोह और मत्सर। इनमें जीना देह की आसक्ति में जीना है, वासना में जीना है, मन के ज्ञान और विज्ञान से पृथक होना है जिसका परिणाम जीवन में अशांति और दुख होता है।

मनुष्य की मनोभूमि चिन्तन की भूमि है। इस भूमि पर मनुष्य स्वयं से प्रश्न करता है और स्वयं ही उत्तर खोजता है - अंग्रेजी के महान कवि टेनिसन ने अपनी कविता में ऐसा ही प्रश्न किया था और उत्तर भी दिया था-

What am I
An infant crying in the night
An infant crying for the light
And no language but a cry!

इसका तात्पर्य है - ''मैं हूं ही क्या, एक रात के अंधकार में रोता हुआ शिशु, एक प्रकाश के लिए रोता हुआ शिशु जिसके पास भाषा तो नहीं, केवल रूदन ही है।'' अर्थात यह रूदन ही उसकी भाषा है। जीवन में जितने भी दुख हैं वे मनुष्य ने स्वयं पैदा किए हैं और जितने भी सुख हैं वे स्वयं अर्जित किये हैं - अपने श्रम से, अपनी साधना से, संघर्ष से और ज्ञान से। हमारे वैदिक वाङ्.मय में तो माना गया है कि यह सम्पूर्ण सृष्टि प्रज्ज्वलित तप की रचना है। हमारे जीवन बोध में ज्ञान-मय सत्य और व्यवहार-मय सत्य जिस प्रकार से उपस्थित हैं हमें अपने मनुष्य होने, बने रहने और मनुष्यत्व के नए नए संवेदन प्राप्त करने में सहायक होते हैं। हमारी मनोभूमि विचार-संज्ञा से परिचालित होती है जो ज्ञान, विज्ञान, अनुभव और चिन्तन का परिणाम है। मनुष्य कितना भी दुख में हो मगर उसकी कामना सदैव सुख और आनंद की होती है। तमाम सुख, साधन, संपत्ति के बावजूद कहीं न कहीं कोई कमी अगर रहती भी है तो साहित्य शक्ति है जो रचना के आनंद का सुख देती है। पीड़ा से गुजरने पर ही आनंद का मार्ग खुलता है। अंग्रेजी निबंधकार रजलिट कहता था - 'आनंद रचने की कला तो स्वयं को आनंद-मय रखने में निहित है।' एक लेखक ने तो यह भी कहा था - 'पीड़ा से गुजरे बिना प्रेम और आनंद की प्राप्ति नहीं होती।' यह भी माना गया है कि साहित्य ही एक मात्र वह मार्ग है जहाँ हमारी आत्मा लिखे हुए शब्दों में अपने आनंद को अभिव्यक्त करती है।

मनोभूमि में इतना सब ज्ञान बखानने का अर्थ स्वयं को ज्ञानी सिद्ध करना नहीं है बल्कि हम जो साहित्य-जीवी हैं, उनमें नए नए उन्मेष के साथ श्रेष्ठ रचना पढ़ने और श्रेष्ठ साहित्य रचने को प्रेरित करना है। कोई भी संस्कृति न तो सतत दुख में जीती है न निरन्तर सुख में। इसीलिए तो कवि पंत ने कहा था *''मैं नहीं चाहता चिर सुख/मैं नहीं चाहता चिर दुख/''।* साहित्य और कलाएँ एक सांस्कृतिक भूगोल की रचना करती हैं। इतिहास और भूगोल में अन्तर ही यह है कि ''इतिहास व्यक्ति में समाप्त हो जाता है और भूगोल संस्कृति में जीवित रहता है।''

समावर्तन की यह मनोभूमि श्रेष्ठ मनोराग की भूमि है जो आमंत्रित करती है उनको जिनकी प्रज्ञा के आलोक से समावर्तन आलोकित होने की कामना और प्रतीक्षा करता है। इस अंक में वरिष्ठ लेखिका लोकभूषण डॉ.मालती शर्मा (पुणे), डॉ.महेन्द्र शर्मा (भुवनेश्वर), श्री राकेश भारती (दिल्ली) के चिंतन परक आलेख इस मनोराग को समृद्ध कर रहे हैं। सभी के प्रति आभार।

कहानी की कहानी : अवधारणा और संरचना

डॉ. मालती शर्मा ''लोकभूषण''

लोक परम्परा में कहते आ रहे हैं, सुनते भी कि- *''कहानी-सी मीठी नहीं/कहानी-सी झूठी नहीं/कहानी-सी साँची नहीं।''* कहानी की 'कहन' विश्व का अस्तित्व है, 'बिना कहानी' के कहन के विश्व गूँगा है, अस्तित्व होते हुए भी उसका कोई अस्तित्व नहीं है। मनुष्य आजीवन दिन-रात, रात के सपनों में कहानी कहता, सुनता, सुनाता, कहानियाँ बनाता है। कहानियों में दिन-रात रहते हुए एक दिन छोटी या बड़ी कहानी बन इस दुनिया से चला जाता है। कुछ जिंदगियाँ खुद को कहानी बनाती है, कुछ कहानियाँ जिंदगियाँ बनाती हैं। विश्व में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं मिलेगा जिसने कभी कोई कहानी कही, सुनी न हो।

आज भी साहित्य की विधाओं में कहानी पढ़ी जाने वाली लोकप्रिय विधा है। लघुकथा और चुटकुला उसका सबसे छोटा रूप है। इस विश्व में कहानी की कहन ज्ञान-विज्ञान, तकनीक, सभी प्रकार की कलाओं, कौशल, कारीगरी का प्राणतत्त्व है 'होना'। एक अच्छी शल्यक्रिया की सफल प्रक्रिया अपने में 'कहन' है, सफलता की कहानी है। अभिव्यक्ति की ही कुशल शक्ति है कला। अनगढ़पत्थर से ताजमहल और अजंता, एलोरा की गुफाओं तक, मैथिलीशरण गुप्त जी ने जिसे कला की शक्ति कहा है, जिसके लिए कवि दयाराम कहते हैं- *'कहे दयाराम, सबु सीखिवो बेकाम/जो पै बोलिबो न सीख्यो/सबु सीख्यो गयो धूरि में।'* अब यहाँ प्रश्न उठता है कि ऐसी 'कहन' की कहानी की, पहली कहानी का जन्म कब और कैसे हुआ ? कौन थे उनके पहले वक्ता, श्रोता, क्या था उसका कथ्य?

प्रश्न विकट है और महत्त्वपूर्ण भी पर स्थिति ऐसी है कि साहित्य में मेरी जानकारी में कहानी का इतिहास अभी तक लिखा गया है, कहानी की कहानी नहीं। लोक-साहित्य, लोकवार्ता में पहली कहानी कौन-सी थी, इसकी खोज हुई नहीं। यद्यपि लोकवार्ता, लोक-साहित्य में ऊपर से नीचे तक, देवी-देवता, दैत्य-दानव,राक्षसों, परियों की, भूत-प्रेत, डायन-चुड़ैल, बेताल की, राजा-रानी, समाज के हर वर्ग-आयु के स्त्री-पुरुषों की, इतना ही नहीं पशु-पक्षी, वृक्षों, फूल-पत्तियों की, व्रत, पर्व, तीज-त्योहारों की, सामाजिक रीति-नीति, गुणों-अवगुणों की, लोक साहित्यिक गाथाओं की, लोकोक्ति, पहेली, लोककथाओं की, लोक-कथन, कहावतों, पहेलियों की, प्रतीकों, मिथकों की लोककथाएँ, लोककहानियाँ ही कहानियाँ हैं। विश्व लोकवार्ता में सृष्टि के पंचतत्त्व, प्रकृति का कण-कण, क्षण-क्षण कहानी कहता है कि इतनी असंख्य कहानियों के बीच पहली कहानी, मूल कहानी की खोज जरूरी नहीं समझी गई। वे कहानियाँ क्यों, कैसी बनी, सोचा ही नहीं गया। मेरा विश्वास है कि लोकवार्ता में खोज करने पर वह मिलेगी जरूर। आदिवासियों, जनजातियों की लोकवार्ता में और उसके होने की अधिक संभावना भारतीय लोकवार्ता में है।

कहानी सृष्टि का युग्मराग है वक्ता, श्रोता दो तारों का। एक के अभाव में जीवनराग नहीं बज सकता। लोक परम्परा कहती है- 'ताली एक हाथ से नहीं बजती।' कहानी भी अकेली नहीं बनती। दूसरा तार दृश्य हो या अदृश्य, भीतर या बाहर। सृष्टि के युग्मराग कहानी के दो तार वक्ता और श्रोता हैं। लोककथा कहानियों के वक्ता, श्रोता मनुष्य ही नहीं विश्व की जड़, चेतन कोई भी वस्तु हो सकती है। व्रत-पर्व की कहानियों में पूजा के लिए भरा जलकलश ही किसी स्थिति में कहानी सुननेवाला, कोई और न हो तो कलश श्रोता होता है। कहानी के वक्ता, श्रोता तो हर तरह की कहानियों में हैं। बिना 'हुँकारा' भरनेवाले के कहानी कैसे?

विश्वभर के लोकजीवन में लोक-कथा पर कहानियों के इतने व्यापक फलक को देखते हुए उसके मूल पर विचार न होना थोड़ा आश्चर्यजनक तो है ही। अपनी बात कहूँ तो मेरे विचार में यह सृष्टि ही विश्व की मूल और पहली कहानी है। *'सृष्टि वक्ता है, श्रोता जिन्दगानी है, / सृष्टि ही कहानी का अतीत/वर्तमान है और भविष्य भी,/जिन्दगानी ही कहानी की रवानी है।'*

जैन धर्म दर्शन आदिनाथ ऋषभदेव पहले तीर्थंकर से विश्व की पहली कहानी का उद्भव मानता है और कल्पवृक्ष, कालसर्प योग के माध्यम से कहानी का कथ्य व्याख्यायित करता है। सबसे बड़ी बात युगलों के पैदा होने की वह करता है। तीर्थंकर ऋषभदेव की दो पुत्रियाँ थीं- सुन्दरी और ब्राह्मी। उन्होंने विश्व की कल्पवृक्ष की अवस्था से ऋषभदेवजी के आदेश से सृष्टि में सुन्दरी से 'असि' अर्थात् यंत्रों का आविष्कार किया, ब्राह्मी ने 'मसि' यानी भाषा और लिपि का। इस तरह आदिनाथ से कृषि सभ्यता का उद्भव हुआ। आदिनाथ ने इसके दो बीज बताए - राग और विद्वेष। कालसर्प योग के अनुसार विद्वेष की चरम परिणति आज का विश्व का आतंकवाद है। राग- विद्वेष से यह संसार बना और जन धर्म के परिग्रह और अपरिग्रह सिद्धान्त उद्भूत हुए।

युगलिक अवधारणाएँ

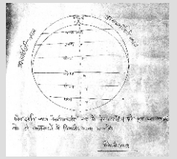

जैन धर्म दर्शन की धरती पर मनुष्य के जन्म की युगलिक अवधारणा भी विश्व की पहली कहानी की अवधारणा और सृष्टि के युग्मराग से आश्चर्यजनक रूप से मेल खाती है। जैन दर्शन में काल अनंतानंत है। एक पूरे कालचक्र के दो खंड माने जाते हैं (देखें चार्ट)। दो कालखंड में विभाजित काल की भी छह स्थितियाँ हैं। छह पूरी होने पर दूसरा कालचक्र शुरू होता है। सबकी आदिनाथ से महावीर स्वामी तक गहन दार्शनिक विवेचना है। पर लोक परम्पराकाल को दो युगों में देखती जानती है- (1) कल्पवृक्ष युग, (2) कर्म युग। कल्पवृक्ष युग में इस धरती पर पहले एक बार में युगलिक जन्म लेते थे जिनमें एक नर, एक मादा होता था। वयस्क होने पर उन्हीं में यौन संपर्क पर संसार चलता था। इस युगलिक जन्म में सृष्टि का युग्मराग जीवन में था। एक बार, एक दिन एक अप्रत्याशित प्राकृतिक घटना से ताड़ या किसी और प्रकार का फल नर युगलिक के सिर पर गिरा और उसकी मृत्यु हो गई। इस घटना से सारे युगलिक बहुत परेशान हुए। वे आदिनाथ जी के पास गए। आदिनाथ जी बोले ''यह कल्पवृक्ष युग, माँग और आपूर्ति युग का अंत है, कर्म युग का प्रारंभ है। अब युगलिक नहीं नर और मादा अलग-अलग जन्म लेंगे पर सांसारिक कर्मों में युगलिक रहेगा। संसार युगलिक से ही चलेगा।'' अनादिकाल से सृष्टि में जीवन के उद्भव और भाषा के आविष्कार के बाद विश्व के समूचे ज्ञान-विज्ञान, साहित्य, कला-कौशल, कारीगरी, सामाजिक आचार-विचार, व्यवहार, सीमातीत जीवन के सत्यों और तथ्यों की जानकारी लोक तक पहुँचाने का सहज और प्रभावशील माध्यम कहानी, कहानी की कहन रही है। वाचिक और लिखित दोनों परम्पराओं में, आज मीडिया में भी दृश्य-श्रव्य रूपों में, फिल्मों और विज्ञापनों की तो वह रीढ़ है। अनादिकाल से, वैदिक युग से तो प्रामाणिक रूप से कहा ही जा सकता है कि लोक को जीवन के तथ्य और सत्यों की जानकारी देने का, शिक्षा संस्कारों की दीक्षा का माध्यम कहानियाँ ही हैं। कठिन से कठिन विषय नासमझ, मूर्ख को भी कहानी के माध्यम से सिखाया जा सकता है। इसका सबसे ज्वलंत प्रमाण सर्वज्ञात विष्णुचन्द्र शर्मा का 'पंचतंत्र' है। हमारा भारत शायद विश्व का पहला देश है जिसे वेदपूर्व, वैदिक, संस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रंश भाषाओं की कहानियों की समृद्ध परम्परा उत्तराधिकार में मिली है और जिसके पास महर्षि वेदव्यास और उनके शिष्यों, ऋषियों-मुनियों से लेकर आज के भागवत और सत्यनारायण व्रत कथा कहने सुनाने वाले कथावाचकों की अटूट, अनूठी आकाशगंगा है। 'फिर सूत जी बोले', 'इस पर शुकदेव जी ने कहा', वक्ता-श्रोता के प्रश्नोत्तरों से कहानी से कहानी निकलने की अटूट शृंखला है। विंध्याचल और सतपुड़ा के जंगलों में आदिवासियों, जनजातियों की कहानियाँ संग्रह करनेवाला पहला रचनाकार गुणाढ्य है। बृहद्कथा का रचनाकार जिसके पास, पहली मानी जाती समुद्री पर्यटन की कहानियों का पहला ग्रन्थ 'कथा सरित्सागर' है। लोक किंवदंती के अनुसार कहानी कहने-सुनने वाले पहले वक्ता, श्रोता शिव-पार्वती हैं।

पार्वती के आग्रह पर कि कुछ ऐसी बात करो जिसका रस सबसे अलग हो, शिवजी ने 'अमर' कथा सुनाई। विश्व में शायद भारत ही वह देश है जिसमें समस्त ज्ञान-विज्ञान की शिक्षा और संस्कार, आचार-व्यवहार की शिक्षा देने वाले ऋषि-महर्षियों के विश्वविद्यालय, विद्यालय गुरुकुल और आश्रम थे। प्रकृति के सुरम्य प्रदूषण रहित वातावरण में, कृष्ण और सुदामा एक साथ पढ़ते थे। आज तो यह कल्पना कठिन है कि जब बिजली नहीं थी, मनोरंजन के अन्य साधन नहीं थे, सर्दियों की ठंडी-अँधेरी रातों में अलाव पर तापते हुए कहानियाँ कहते-सुनते, पहेलियाँ बुझाते हुए, मनोरंजन के साथ सामूहिक वैचारिक मत - अनुभवों के आदान-प्रदान में, जीवन जीने में कितनी बड़ी भूमिका कहानियों ने निभाई है। विशेष रूप से द्वितीय विश्व युद्ध के समय जब कैरोसिन नहीं मिलता था, मिलता तो कठिनाई से धुँए वाला पीला तेल।

बच्चों के लोकजीवन में विद्या के, शिक्षा और संस्कारों के, दादी-नानी-माँ की कहानियों के प्राथमिक विद्यालय थे। जाड़ों की ठंडी रातों में रजाई की गर्मी में दादी-नानी के हृदय से चिपककर जो शिक्षा और संस्कार मिलते थे, वे उनके बालमन पर अंकित हो जाते, आजीवन उनका व्यक्तित्व गढ़ते थे। यद्यपि गाँवों में भी शिक्षा के लिए पाठशालाएँ 'चटसार' थीं। लोक-परम्परा दोनों का उल्लेख करती है।अभी भी 2-3 दशक पहले ये नानी-दादी के कहानी विद्यालय थे। माँ में इनकी अटूट शृंखला थी। मैथिलीशरण गुप्त जी ने अपने काव्य 'यशोधरा' में इस लोक-परम्परा का उल्लेख किया है। पीढ़ी-दर-पीढ़ी लोकजीवन में कहानियों की निरंतरता की पुष्टि की है। माँ यशोधरा और राहुल के प्रश्नोत्तर में यह कहानी कहने-सुनाने के विद्यालय हैं।

'माँ कह एक कहानी/बेटा समझ लिया क्या/तूने मुझको अपनी नानी ?/मुझसे कहती थी यह चेटी/तू मेरी नानी की बेटी/कह माँ कह लेटी ही लेटी/राजा था या रानी/कह...'

लोक परम्परा में कामकाज भरे दिन में बच्चों को कहानी सुनाने की हठ रोकने को बड़ी अच्छी वर्जना (टेबू) उस युग में थी कि दिन में कहानी सुनाने से मामा गैल भूल जायेगा। हालाँकि गैल भूलना तो आज भी है पर भूली गैल बताने के साधन बहुत हैं।

घटनाशीलता, उत्सुकता, रोचकता लोक-कथा कहानियों की संरचना में, कहन में ये तीनों प्राणतत्त्व हैं। कहानी में घटनाएँ श्रोता की उत्सुकता बढ़ाती हैं। अगली घटना या उसी घटना के चरण के बारे में वह पूछता है- 'हाँ, फिर क्या हुआ? ... अच्छा, इसके बाद क्या ?' जहाँ घटना, घटना बंद हो जाती है, कहानी खत्म हो जाती है। कभी-कभी पहली से निकली दूसरी कहानी शुरू हो जाती है और उसकी घटनाएँ श्रोता की उत्सुकता के साथ कहानी चलती है। खत्म तो वह भी होती है।

इस संदर्भ में लोक-परम्परा में कभी न खत्म होने वाली कहानी सुनने वाले राजा और उसे हँसाने वाले एक चतुर कहानी कहने वाले की कहानी भी अक्सर कही जाती है, जिसमें आए कहानी संरचना के इन तीनों तत्त्वों को आज भी कहन की संरचना के आधारभूत मूलस्तंभ कहा जा सकता है। कहानी यों है- कहानी सुनाने वाला बोला- सुनिए राजा साहब! एक सास-बहू थीं, सास ने एक थाली में बहू को चावल बीनने को दिए। बहू ने चावल बीनकर आँगन में रख दिए और दूसरे कामों में लग गई। राजा ने पूछा- फिर क्या हुआ ? कहानी कहनेवाला बोला- एक चिड़िया आई चावल लेकर फुर्र उड़ गई। फिर दूसरी आई, चावल लेकर फुर्र उड़ गई। फिर तीसरी आई वह भी चावल ले फुर्र उड़ गई। राजा बोला - आगे तो कहो कि क्या हुआ? कहानी कहने वाला बोला- फिर दो-तीन चिड़िया आईं, चावल लेकर फुर्र उड़ गईं। राजा 'फुर्र उड़ गई' सुनते-सुनते तंग आ चुका था। वह बोला और कितनी कहानी बाकी है। सुनानेवाला बोला- अभी तो एक चौथाई। थाली चावलों से भरी है, चिड़िया आती जा रही हैं, अभी कहानी बहुत लंबी है।राजा कहानी सुनानेवाले की चतुराई भाँप गया। उसने हार मानते हुए कहा- अब तुम मुझे बस कहानी का अंत बता दो। कहानी सुनानेवाला मुस्कराया बोला- अंत! अंत तो बहुत सहज है, बहू को सास के चावलों की याद आई, वह थाली भीतर उठा ले गई, चावल सीजने को रख दिए, बस कहानी खत्म।

कहानी की संरचना में उसकी प्रभावशीलता में उत्सुकता जगाने वाली आकर्षक शुरूआत और मन पर छाप छोड़ने वाला अंत मुख्य है। कहानी की संरचना में शुरूआत में- एक राजा था, एक बुढ़िया थी, दो भाई थे, एक बार ऐसा हुआ था, 'था', 'थी' का आना कहानी की प्रामाणिकता है कि इस कहानी का कथ्य घट चुका है। क्या था, कैसा था, हममें यह जानने की उत्सुकता जगाता है। कहानी में रोचकता भी पैदा करता है, पुष्टि भी। 'एक होता राजा' मराठी कहानियों का मंगलाचरण कथन है। इसीलिए शायद लोकजीवन में बच्चे कहानी सुनना खेलते हुए और यदा-कदा बुजुर्ग भी कहानी सुनाना न चाहने पर यह कथन कहते देखे गए हैं। कहानी का प्रारंभ और अन्त सुनाकर- एक था राजा एक थी रानी / दोनों मर गए खत्म कहानी।

लोककथा के कहानियों के शीर्षक

किसी भी रचना का शीर्षक उसका व्यक्तित्व होता है। कथ्य का परिचय, उद्देश्य का द्योतक और अर्थगर्भता का व्यापक फलक भी है। लोककथा कहानियों के शीर्षकों के उन्हें देने के आधार बहुत से हैं पर हमारी लोककथा कहानियों की विशाल समृद्ध लोकपरम्परा में लोककथा कहानियों के प्रकारों के विभाजन और नामकरण के आधार तीन प्रमुख हैं- (1) विषय, (2) संरचना, (3) उद्देश्य। लोककथा कहानियों के बड़े प्रकार चार हैं- (1) पौराणिक, (2) ऐतिहासिक, (3) मनोरंजक/लोक-काल्पनिक, (4) भौगोलिक। व्रत, पर्व, त्योहारों की कहानियों, लोक-कथाओं का एक और प्रकार बनता है- 'धार्मिक'। भौगोलिक कथा कहानी प्रकार के बहुत आयाम हैं, प्रांत, जनपद, आँचल, भाषा, बोलियाँ, जाति, जनजातियाँ, आदिवासी जातियाँ। लोककथा कहानियों के प्रकारों में इस प्रकार के अंतर्गत सबसे बड़ा भंडार है और इन कहानियों में ही विश्व लोकवार्ता के एक जैसे तत्त्व मिलते हैं जो मिथक और प्रतीक हैं। थोड़े प्रकारांतरों के साथ ये एक सौ हैं। हिन्दी भाषा में उल्लेखनीय और ऐतिहासिक कार्य, आदिवासी लोककला एवं बोली विकास अकादमी मध्यप्रदेश, संस्कृति परिषद् भोपाल, म.प्र. ने 'चौमासा' पत्रिका के साथ अनुषंग पुस्तिका के रूप में आदिवासी जनजाति की 'भीली लोक-कथाएँ, भारिया लोक-कथाएँ, कोरकू लोक-कथाएँ, मोंगिया लोक-कथाएँ आदि तथा सभी भाषा बोलियों, निमाड़ी मालवी, बुंदेली, अवधी आदि सभी भाषा बोलियों की कथा-कहानी प्रकाशित करके किया है। छिटपुट रूप में अन्य संस्थाओं द्वारा भी ऐसे प्रकाशन हुए हैं पर वे मध्यप्रदेश संस्कृति परिषद् जैसे सुसंबद्ध नहीं हैं। संरचना पर कहानियों के शीर्षक की व्यापक रूप से जानी जाती लोक-कथाएँ हैं- 'पंचतंत्र', 'सिंहासन बत्तीसी', 'बेताल पच्चीसी', जिनके नामकरण का आधार है संग्रह में संकलित कहानियों की संख्या। 'सिंहासन बत्तीसी' में सिंहासन में लगी 32 पुतलियों की कही बत्तीस कहानियाँ हैं। 'बेताल पच्चीसी' में विशाल वटवृक्ष के नीचे रोज बेताल, राजा विक्रम को एक कहानी सुनाता है और अंत में एक ऐसा प्रश्न रख देता है कि राजा को उत्तर देना पड़ता है। न दे पाने पर बेताल रुठकर फिर पेड़ पर जा बैठता। यह प्रक्रिया हिन्दी में मुहावरा भी बनी है। 'फिर बेतलवा डार पर।' ये दोनों कथासंग्रह संस्कृत में हैं पर इनके अनुवाद बहुत हुए और लोक-कथाओं, किंवदंतियों, जनश्रुतियों के रूप में बहुत लोकप्रिय हैं जनजीवन में। पंचतंत्र में लोककथाओं के पाँच अध्याय हैं। कहानियों की संरचना में संग्रहों के नामकरण का यह आधार आज भी है।

ऐतिहासिक-पौराणिक

पुराण और इतिहास लोक-कथा कहानियों के संदर्भ के अजस्र स्रोत हैं। कहानी की संरचना में किसी एक की अधिकता नामकरण का आधार बनती है पर किसी-किसी कहानी में ये दोनों इतने मिल जाते हैं कि अलग करना कठिन होता है। यद्यपि लोकजीवन में इतिहास, पुराणों से सीधे ली गई कथा-कहानियाँ पर्याप्त हैं पर इतिहास-पुराण की संरचना में किंवदंतियों और जनश्रुतियों के रूप में मिश्रण की कथा-कहानियों की संख्या अधिक है। यादाश्त में छूटे अंश, समयानुसार बदलते रूपों में कथा-कहानियाँ आती रहती हैं। इस तरह ये दोनों प्रकार लोक-कथा कहानियों के संदर्भ अधिक हैं।

धार्मिक और मनोरंजक लोक-काल्पनिक

लोक-कथा-कहानियों के ये दोनों प्रकार कथा कहानियों के और बहुत बड़े विशाल प्रकार हैं। ये दोनों प्रकार ही लोककथा और लोक कहानी में अन्तर विभाजित करने वाली रेखा है। लोकजीवन में सामान्यतः लोककथा-कहानी एक हैं, ऐसा समझा जाता है। उद्देश्य और लक्ष्य की दृष्टि से दोनों में अन्तर है भी नहीं। दोनों का लक्ष्य लोकजीवन में जिंदगी के तथ्यों और सत्यों को पहुँचाना और उनकी स्थापना करना है। अन्तिम उद्देश्य पर उद्देश्य तक पहुँचने के रास्ते थोड़े-से अलग हैं और संरचनागत भिन्नता भी। यही लोककथा, कहानियों को दो बड़े प्रकारों में विभाजित करनेवाला पक्ष है।

धार्मिक

धार्मिक लोक-कथा, कहानियों का सीधा उद्देश्य लोक-जीवन में रीति-नीति धार्मिक सत्य-तथ्यों के दोनों पक्षों सकारात्मक और नकारात्मक पहलुओं को प्रस्तुत करते हुए जीवनमूल्यों के महत्ता की स्थापना इसी रूप में करना है कि मन पर उनका प्रभाव अमिट रहे। इस प्रकार में बहुत बड़ा वर्ग व्रत पर्व त्योहारों की, सीधे-सीधे जीवन मूल्यों से जुड़ी लोक-कथा, कहानियों का आता है और इनमें परम्परागत पौराणिक और शास्त्रीय संदर्भ प्रमुखता पाते हैं। इस वर्ग में संरचनागत विविधता नामकरण के आधार में परिलक्षित होती कथ्य का विषय सूचित करती है जैसे- नीति-कथाएँ, बोध-कथाएँ, जनश्रुतियाँ, किंवदंतियाँ, दृष्टान्त-कथाएँ, दंत-कथाएँ, लोक-कथनों, लोकोक्तियों की कथाएँ, व्रत-पर्व, तिथि-त्योहार की कथाओं के नाम होते हैं जैसे 'करवाचौथ की कहानी', 'अहोई अष्टमी की कहानी', 'संकट चौथ की कथा', 'नागपंचमी की कथा', 'शिवरात्रि की कहानी', 'दिवाली की कहानी'। इस वर्ग की कहानियों में समय की सीमारेखा है। कभी भी नहीं, उसी दिन, पर्व, तिथि पर उसी समय कही जाती है। हर कहानी के अन्त में जीवन में व्रत-पर्व की पूजा और कहानी की महत्ता, समय के बदलते रहने की सत्यता, कहानी के अंत में कहे जाते फलादेश में अभिव्यक्त होती है, आशावादिता के रूप में। पश्चिमी उत्तर भारत में कहा जाता है- *'जैसी अगार आई काऊकूँ मति अइयो, जैसी पिछार आई सब काऊँ कूँ आवै।'* अर्थात् कथा के प्रारम्भ में जो कष्ट विपत्ति के दिन आये, व्रत-पर्व की उपेक्षा से जो कष्ट पड़े, वैसे किसी को न उठाने पड़ें, बाद में जैसी-जैसी सुखद स्थिति बनी, सब किसी के जीवन में आये। अन्त में पूर्वोत्तर उत्तर भारत और बिहार में फलादेश में कहा जाता है- *'जैसे उनके दिन बहुरे, सबके बहुरे।'* कथा-कहानियों के इस वर्ग की संरचना की सबसे बड़ी विशेषता है कहानी में से कहानियाँ निकलते जाना जो अगले जन्म तक की कहानी तक होती है। इस संरचना का सबसे अच्छा उदाहरण है- सत्यनारायण व्रतकथा। किसी-किसी व्रत-पर्व की तो महत्ता स्थापित करने के लिए 6-6, 7-7 कहानियाँ तक होती हैं। इस दृष्टि से हिन्दी भाषा में 12 माह के भारतीय व्रत, पर्व, त्योहारों पर एकमात्र अकेला कार्य डॉ. विद्याबिंदु सिंह का 'दिन-दिन व्रत-पर्व' ग्रंथ है, जिसमें वन्य संस्कृति, कृषि संस्कृति, गोपालक संस्कृति से लेकर अधुनातन लोकजीवन में मनाये जाते व्रत, पर्व, त्योहार, उत्सवों का शास्त्रीय और लोक परम्परित समन्वित रूप जीवन मूल्यों की समग्रता लिए है, अभिप्राय लिए प्रस्तुतीकरण है। ग्रंथ में दिये विभिन्न पर्व, व्रत, त्योहारों पर बनते लोकचित्रों ने इसका महत्त्व और बढ़ा दिया है। ये लोकचित्र व्रत, पर्व, त्योहारों के अभिप्रायों को व्यक्त करते हैं। यद्यपि श्री पी.बी. काणे के विख्यात ग्रंथ 'धर्मशास्त्र का इतिहास' में व्रत, पर्व, त्योहार उत्सव हैं पर लोक परम्परा और शास्त्र सम्बन्धि दूसरा कार्य मेरी जानकारी में नहीं है। इस वर्ग की लोक-कथा, कहानियों की संरचना के रूप में कई ग्रंथों का विषय होंगे।जैसा कि पहले कहा व्रत, पर्व, त्योहारों, उत्सवों पर सत्यनारायण व्रतकथा, श्रीमद्भागवत सप्ताह, रामायण कथा के आयोजनों में आज भी लोक-परम्परा की भारतीय संस्कृति की कथा-कहानियों की, गाँव के अलावों-चौपालों की, सामाजिक सामूहिकता और उत्सव पर्वों में भागीदारी जीवित है। श्रद्धा भाव से पूरी कथा सुनने, पूरे सप्ताह पूरी कथा सुनने के लिए जा पाना आज की व्यस्त जीवन शैली में वक्त न होने पर शुभारंभ में समापन में खास तौर से श्रीमद्भागवत कथा के भंडारा में इष्ट मित्रों, आत्मीय, आस-पास के लोग, आयोजक के नाते-रिश्तेदार श्रद्धा भाव से चढ़ावा और आयोजक के लिए उपहार लेकर पहुँचते हैं। खीर और मालपुए का प्रसाद तो गाँव से बाहर आने-जाने वालों के लिए रख दिया जाता है। सत्यनारायण व्रत कथा का प्रसाद लेने आस-पड़ोस, मित्र, परिचित वर्ग जब जिसे वक्त हो, पहुँचता है और सामाजिक भागीदारी, मैत्री भाव पुष्ट करता है। पुण्य लाभ लेते हैं। ऐसे आज के आयोजन भारतीय लोक सांस्कृतिक परम्परा की कथा-कहानियाँ सुनाने की 'एकदा नैमिषारण्ये' की परम्परा जीवित है। बस आयोजनों के पीछे, बदले समय के अनुसार थोड़ा अंतर आया है। तब कथा-कहानियाँ सुनाना जीवनमूल्यों की शिक्षा का, सृष्टि के, प्रकृति के व्यापक फलक को साध लेने का सहज माध्यम था। देवी-देवता भी पात्र होते थे। सहज और रोचक ये कथा-कहानियाँ, धार्मिक विधियों की दीक्षा दे श्रद्धा भाव जगाती थीं, क्योंकि उनमें जीवन होता था। आज के कथा-भागवत-रामायण के ऐसे आयोजन, आयोजक की समाज में, धर्म-कर्म में श्रद्धा भाव की बड़ाई, सामाजिक प्रतिष्ठा के प्रेरक अधिक हैं और इनके पीछे कथावाचकों की माँग भी है। पूरा समाज इन्हें ज्ञान के दो अक्षर सुनने और पुण्यलाभ की दृष्टि से लेता है। सत्यनारायण व्रतकथा में लोक-कथा, कहानी की संरचना के पूरे तत्त्व हैं, 'स्कन्दपुराणे रेवा खण्डे', फिर 'शुकदेव जी बोलें' से लेकर व्रतकथा की महत्ता तक।

मनोरंजक, लोक-काल्पनिक

लोक-कथा, कहानियों का यह प्रकार 'लोक' की कहानी गढ़ने की अपार क्षमता का त्रिकालिक विस्तार है। लोक परम्परा को अनादि बीते हुए कल को आज से और आने वाले कल से जोड़ने वाली लोक की कल्पना की, अद्भुत कल्पना की ऊँची उड़ान है। यही कहानी का अधुनातन प्रकार है। इस कथा-कहानीलोक में, इस दृश्यमान-अदृश्यमान जगत् की, हर व्यक्ति, वस्तुस्थिति की कहानी बनती है। इस कण आपस में बोलता, बतियाता कहानी कहता सुनता है। कथा-कहानियों के हर प्रकार पर कोई बंधन नहीं। संरचना के असंख्य प्रकार इसमें मिल जाएँगे। उद्देश्य अगर कोई है तो मनोरंजन, बात का मीठी लगना, रोचक होना। कभी-कभी किसी कहानी में साहित्य की कई विधाएँ रंग भरती दिखेगी। कहानी की संरचना के सभी तत्त्व कहानी की अभिव्यक्ति बढ़ा रहे होंगे। इस दृष्टि से ब्रज में बहुप्रचलित और बड़े चाव से कही सुनी जाती कोरिया की कहानियों की शृंखला है। इसमें कोरिया के सगुनी दामाद की *'आजा री नींदरिया, भोर कटैगी मूँड़रिया'* और *'खिचड़ी खा चिड़ी'* विशेष रोचक और उल्लेखनीय हैं।

मनोरंजक, लोक-काल्पनिक कहानियों के प्रकार

वस्तुतः देखा जाये तो लोक-कथा, कहानियों का यह ऐसा उर्वरा प्रकार है कि इसकी कहानियों का विभाजन-नामांकन एक कठिन कार्य है। कहानी की संरचना के सारे स्रोत, इनकी रचना के आधार बनते नया रूप लेते हैं पर परम्परा से सम्बन्ध बनाये रखते हैं। अब इस प्रकार में कहानियों के जो बहुत उभरकर दो प्रकार आते हैं, वे हैं- 1. भूत-प्रेत, चुड़ैल-डायन कथाएँ-रहस्य कथाएँ, 2. पर्यटन कहानियाँ। इन दोनों प्रकारों में कहानी की संरचना के प्राणतत्त्व, घटनाशीलता, रोचकता, उत्सुकता भरपूर मात्रा में होते हैं। भूत-प्रेत, डायन-चुड़ैल की कहानियाँ रहस्यकथाओं की हमजोली हैं। यद्यपि संख्या में कम हैं पर इसी में जादू-टोने की कहानियाँ भी आ जाती हैं। प्रकृति का कौन-सा रहस्य कहाँ कब खुल ले, लोकमेधा कल्पना की कैसी अद्भुत उड़ान भरे और यों इस प्रकार की कहानी का फलक बहुत ही बड़ा हो जाता है, कहें तो सीमाहीन। कहानी के इस प्रकार, रहस्य-कथाओं ने साहित्य में जासूसी कहानी-उपन्यासों का, एक विधा का रूप ही ले लिया है। जासूसी कहानी-उपन्यासों में पाठक का मन बाँधने की उत्सुकता, रोचकता होती है। हिन्दी-साहित्य में भूत-प्रेत, डायन-चुड़ैल की रहस्य-कथाओं की सुदीर्घ परम्परा में विख्यात ग्रंथ हैं- बाबू देवकीनंदन खत्री के 'भूतनाथ', 'चंद्रकांता', 'चंद्रकांता संतति'। भूत-प्रेत, चुड़ैल, जादू-टोने की रहस्यकथाओं की लोक परम्परा विश्व-साहित्य में आज भी जीवंत है। एक नाम अंग्रेजी साहित्य से तो लिया ही जा सकता है- जे.के रौलिंग का, जिन्होंने जादू जानने वाले बच्चे हैरी पौटर के माध्यम से जादू की कहानियों की पूरी दुनिया खड़ी की। अपने समय में जादू की इन कहानियों की सीरीज काफी विख्यात और चर्चित रही।

पर्यटन कहानियाँ

संस्कृत भाषा 'कथासरित्सागर' समुद्री पर्यटन कथाओं का पहला ग्रंथ माना जाता है। आगे इसके बहुत अनुवाद हुए। जनश्रुतियाँ, किंवदंतियाँ लोक-प्रचलित हैं। आज तो लोक कहानियों का यह प्रकार पत्र-पत्रिकाओं की पठनीयता बना हुआ है। इसकी संरचना में ऐतिहासिक और भौगोलिक तत्त्व प्रमुखता से रहते हैं। आज कहानियों का सबसे मधुर और मनभावन रूप संस्मरण है। छोटा रूप लघुकथा, चमत्कृत रूप चुटकुला है।

कहानी का झूठ और सच्चाई

कहानी और परम्परागत लोक-कथा कहानियों और आज की कहानी के लिए, दोनों की रचनाशीलता के लिए दो प्रमुख आवश्यक तत्त्व हैं झूठ और सच्चाई । वे रचनाकार की कल्पनाशीलता की ऊँचाई और जागतिक, अनुभव की गहराई, मूलभूत याचकीय मनोवृत्तियों की समझ में गहरी पैठ पर निर्भर है। ये दोनों लोक-कथा कहानियों और कहानी की अवधारणा और संरचना के भी अनिवार्य तत्त्व हैं।

जीवन जगत् के काल्पनिक झूठ और मूलभूत मानवीय प्रवृत्तियों के आधार पर रचनाकार जो कहानी की दुनिया खड़ी करता है, उसे सच्चाई की धरती देने के लिए अनुभव जगत की गहराई चाहिए। दोनों में अच्छी बुनावट और प्रभावशीलता रचनाकार के अभिव्यक्ति कौशल और क्षमता पर निर्भर है। लोक-परम्परा में त्रिकालिक सत्य लिए ऐसे कितने ही कथा-कहानियों के अज्ञात नाम रचनाकार हैं। विश्व साहित्य की अमर कहानियों के तो हैं ही। इस समय ओ हैनरी की कहानी 'लास्ट लीफ' याद पड़ रही है। लोक व्यवहार में बहुधा यह कहा जाता है एक झूठ के लिए दस झूठ बोलने पड़ते है। कथा कहानियों की संरचना, अवधारणा में झूठ, सच्चाई की रचना की जटिल प्रक्रिया को लोक-व्यवहार का यह कथन कितनी सहजता से स्थापित कर देता है। कथा-कहानियों की लोक परम्परा में आज भी कल्पनाशीलता की ऊँचाई और अनुभवसम्पन्नता की कहानियाँ विलक्षण व्यक्तित्व वाले गंगाराम पटेल और बुलाकी नाई की काशी यात्रा की 14 मंजिलों की कहानियों का जीवंत नाम है। ये डैमन गाँव के थे। यह गाँव, जाटों का गाँव है। किरावली तहसील में भरतपुर आगरा सड़क के बीच का इलाका है, जाटों में ये पैलवार गोत्र के थे। इनके पिता का नाम चाँदराम था, ये उनके बड़े पुत्र थे। 100 गाँव इन्हें लगान देते। इनकी हवेली बड़ी शानदार थी। इनका समय ई. सन् 1750 बताया गया है। डॉ. केशव प्रथमवीर जी ने एयरफोर्स के ग्रुप कैप्टन भाई सिंह जी के बुजुर्ग पिता से मिली जानकारी से वह हवेली की अटारी भी देखी जहाँ बैठकर गंगाराम पटेल ने ये 14 मंजिल की कहानियाँ लिखी। वह सीढ़ी भी देखी जिससे चढ़कर वे अटारी पर जाते और ऊपर पहुँच कर सीढ़ी हटा देते ताकि कोई आकर लिखने में व्याघात न डाले। गंगाराम पटेल और बुलाकी नाई की ये काशी यात्रा की 14 मंजिल कहानियाँ बहुत लोकप्रसिद्ध हैं। ये उत्तर भारत विशेषकर ब्रज, मध्यप्रदेश खास तौर से बुन्देलखण्ड, हरियाणा, राजस्थान में, अहमदाबाद, गुजरात में कही-सुनी जाती हैं। पूरी 14 मंजिल की कहानियाँ जानने वाला कोई व्यक्ति न मिले पर दो-चार कहानियाँ जानने वाले हैं। एक-दो जानते तो सभी क्षेत्रों में मिलेंगे। पर कितने दुर्भाग्य की बात है कि कहानियों का उनके अपने गाँव में, कोई लिखित, वाचिक रूप नहीं मिलता। डॉ. प्रथमवीर जी ने बहुत पूछताछ की। इसी को कहते हैं- 'घर का जोगी जोगड़ा।' पर लोक परम्परित कहानियों की संरचना की दृष्टि से ये 14 मंजिलें अनमोल धरोहर है। सभी दृष्टि से गंगाराम पटेल और बुलाकी नाई की 14 मंजिल कहानियों की संरचना संस्कृत कहानियों के प्रसिद्ध संग्रह 'बेताल पच्चीसी' से मिलती हैं। जैसे बेताल के पूछे प्रश्न का उत्तर देना, समस्या का समाधान विक्रमादित्य को करना होता था, न कर पाने पर विक्रमादित्य को छोड़ पेड़ की डाल पर जा बैठने की बेताल की शर्त थी। वैसी ही शर्त गंगाराम पटेल और बुलाकी नाई के बीच में थी। यात्रा की प्रत्येक मंजिल के अंत में रात को धर्मशाला या किसी भी ठहरने के स्थान पर घोड़े के लिए घास और अपने और पटेल साहब के लिए दाना-पानी लाने के दौरान डगर में देखे अजूबे के पीछे रही कहानी बतानी होगी। ऐसा क्यों था, इसका समाधान करना है, यह चुनौती माननी होगी वर्ना बुलाकी नाई उसी समय यात्रा अधूरी छोड़ अपने घर चले जाने की शर्त दुहराता। कहानियों में नाई को आश्वस्त करने के नुस्खे ठाकुर साहब के और घर लौट जाने के बुलाकी नाई के ठनगन बहुत रोचक रहते हैं। और गंगाराम पटेल और बुलाकी नाई की काशी यात्रा की 14 मंजिलों की ये कहानियाँ परम्परागत कथा-कहानियों और आज की कहानी के लिए भी संरचना के सभी आयामों में झूठ और सच्चाई के जो दो प्रमुख तत्त्व हैं- रचनाकार की कल्पनाशीलता की ऊँचाई और मानव की मूलभूत प्रवृत्तियों की गहरी पैठ और सामाजिक जीवन की अनुभव-सम्पन्नता की अनमोल धरोहर है। किसी शोधार्थी, संस्था या अकादमी द्वारा इन 14 मंजिली कहानियों का, इन कहे सुने जाते रहे क्षेत्र के जानकार लोगों के बचे रहते संग्रह करा लेना, भारत की विश्व लोकवार्ता को संरचना की अकेली और अनमोल देन होगी।

लोक-कथा कहानियों की कहने की शैलियाँ

हमेशा से कहानियाँ कहने-सुनाने की वाचिक परम्परा में दो शैलियाँ रही हैं। किसी भी बात को विस्तारपूर्वक सांगोपांग रूप से कह सुनाने की शैली। कथा-कहानी कह सुनाने के आदिपुरुष महर्षि वेदव्यास जी के नाम पर व्यास शैली कही गई। इस शैली में विश्व में सबसे बड़ा ग्रंथ महाभारत, पुराण को माना गया है। किसी भी बात को संक्षेप में पर प्रभावशाली रूप में कहने की शैली समास शैली है। इस शैली में नीति-कथाएँ, बोध-कथाएँ, दृष्टान्त-कथाएँ, जनश्रुतियाँ, दंत-कथाएँ, किंवदंतियाँ कही-सुनी जाती हैं। खोज करने पर कथा-कहानियों की और भी शैली मिल सकती हैं। समास शैली कहानी कहने, सुनने वाले रचनाकार की शब्दों की पकड़, विषय और भाषा पर अधिकार, अभिव्यक्ति की क्षमता की कसौटी है। कथा-कहानी के अंत में चयनित शब्दों में कथ्य की गूँज छोड़ जाना, समास शैली की प्रभावशीलता है। बड़ी से बड़ी बात को यहाँ तक कि रामायण की कथा को भी कुछ पंक्तियों में कह देना समास शैली में अभिव्यक्ति क्षमता है। इसके समर्थन में पश्चिमी उत्तर भारत विशेषतः ब्रज क्षेत्र, बुन्देलखण्ड और राजस्थान के कुछ भाग भरतपुर, धौलपुर के लोकजीवन में कही जाती एक सेठ और कथावाचक की कहानी है जो समास शेली की क्षमता पर सटीक बैठती है। कहानी यों है- 'एक सेठ जी रामायण की कथा न सुनने को, अपने पास वक्त न होने का बहाना बनाकर टाल देते। कई कथावाचक मुँह की खाकर लौट गए। चर्चा सुन एक चतुर कथावाचक ने उन्हें रामायण की कथा सुनाने का निश्चय किया। जब वह कथा सुनाने सेठजी के पास पहुँचा तो सेठ जी दुकान जाने के लिए तैयार हो रहे थे। वाचक की बात सुन उन्होंने कहा- ''कैसी रामायण की कथा? मेरे पास जरा भी वक्त नहीं।'' कथावाचक बोला- '' कोई बात नहीं आप पगड़ी तो बाँधिये, मैं उतनी देर में पूरी रामायण सुना दूँगा।'' उसकी असफलता निश्चित जान, सेठ जी मान गए। कथावाचक विश्वास भरे स्वर में बोला, सुनिए सेठ जी कथा- *''एक राम हते, एक रावन्ना/ एक छत्री हते, एक बामन्ना/बाने/उनने बाकी/उनकी नारि/त्रिया हरी/बाने/उनने बाकी/नाटक कटी/उनने उनको मारन्न/ इती बातको बातन्ना/बात को बनि गयौ बतन्ना/तुलसी भरि/रचि/लिखि दियौ पोथन्ना।''* सेठजी हार गए और लोक में यह रामायण की कथा प्रसिद्ध हो गई। कथन में ब्रज और बुन्देली के शब्द अलग हैं। लिखने के लिए लोक में तीनों शब्द प्रचलित हैं। अलग-अलग जगह कहे जाते हैं और अब लोक परम्परित समास शैली की रामायण की कथा के साथ मैं आज की सबसे छोटी कहानी सुना कर कहानी की कहानी को विराम देती हूँ। ट्रेन की सीट पर दो आदमी बैठे थे, एक ने पूछा- 'आपने भूत देखा है'...'नहीं और आपने?'...हाँ कहा और गायब हो गया। स

फ्लैट-8, मधु अपार्टमेंट 1034/1 मॉडल कॉलोनी,
कैनाल रोड पुणे-411005 मो.नं.9423247033

श्रद्धांजलि

ख्यात कवयित्री और लोक मर्मज्ञ तथा कई पुस्तकों की लेखिका डॉ.मालती शर्मा (पुणे) का 13 अक्टूबर 2018 को असामयिक निधन होने के कारण समावर्तन परिवार भी सकते में है। कुछ दिनों पूर्व ही उन्होंने 'कहानी की कहानी : अवधारणा और संरचना' शीर्षक आलेख भेजकर बातचीत की थी तथा कहा था- 'ईश्वर जितना लिखवा सकता है उतना लिख दूँगी बाकी वह जाने।' इस प्रकार की कहानी लिखती-लिखती वे खुद एक कहानी और चिर स्मरणीय हो गयी हैं। 'समावर्तन' के प्रति उनके स्नेह को हम कभी नहीं भुल पाऐंगे। उनकी स्मृतियों को हमारा विनम्र नमन...

समावर्तन परिवार

उज्जैन, भोपाल, इन्दौर, मुम्बई, सूरत, गुना, कोलकाता

श्रुति

महेन्द्र शर्मा

ध्यान की धवल आँच जो विचार की लहर है उससे प्राण और प्राणी का निर्माण होता है। मनुष्य मूलतः ताराओं की ख़ाक है। पैदा हुआ है वह उस अक्षया माँ से जो ग्रह से अधिक अभिभाविका है तो उसका विघटन कैसे होगा या होता है- *वायुर निलममृतमथेदं/ भस्मांतम शरीरं।/ॐ क्रतो स्मर कृतगँ स्मर/क्रतो स्मर कृतंग स्मर।।* (ईशावास्योपनिषद् मंत्र-17) अर्थात उसकी एक असंवादित चीख उठेगी उसका प्राण समस्त में व्याप्त प्रसरित वायु में भस्मांत है। धूल-सा बिला जाएगा पुनः, आया था जिससे और जहाँ से वह। परमधाम का यात्री यह... अपने उपादान तत्त्वों में अपने को सदा के लिए विलीन करना, अपने सूक्ष्म और स्थूल शरीर को विघटित करना चाहता है, अतएव हे प्रभु आप मेरे कर्मों का स्मरण करें- अपने स्वभाव से। आपने ही कहा है- *'अहं स्मरामि मद्भक्तं नयामी परमां गतिं।'* अंतकाल में सही, मैं आपकी स्मृति में आ गया तो आपकी सेवा में उपस्थित हो जाऊँगा। उस असंवादित चीख या शब्द का मूल स्रोत कहाँ है, किससे है ? चीख की अर्थात् शब्द तरंग के अभिघात की उत्पत्ति कहाँ हुई- महामौन विश्व ब्रह्माण्ड में ? उस निशब्द नाद की पहचान के लिए, उसे सुनने के लिए वैज्ञानिक कमर कसे बैठे हैं 'लाइगो' की विशाल प्रयोगशाला में अब। लाइगो अर्थात् 'लेजर इंटरफेरोमीटर ग्रेवीटेशनल वेम् ऑब्जरवेट्री में। विश्व भर के वैज्ञानिक उस अँधेरे कृष्ण गह्वर (Black hole) को आँखें फाड़-फाड़ देख रहे थे, अब कान फाड़ कर सुनने में लग गए हैं। साधारण शब्दों में हम कह सकते हैं कि विज्ञान ज्ञान के सभी प्रयास परम सत्य के इर्द-गिर्द एक-एक प्रदक्षिणा भर है, शायद इसलिए। भारतीय श्रुति-स्थापित परम्परा में, आसान शब्दों में परम सत्य 'शुचिश्रवा' (विष्णु सहस्रनाम) है। वह सर्वतः 'श्रुतिमत्' (गीता-छंद 13-13) है। इसलिए 'श्रवास' शब्द कान ही नहीं नाम को भी सूचित करता है। वह परम सत्य 'महास्वनः' है। एक पुकार है वह, फुसफुसाहट है वही प्रत्येक प्राण की, अनिवार धड़कन और ताप है, महान् सत्ता की साँस है। प्रत्येक हृदय में व्याप्त वही यजुर्वेद ऋग्वेद या श्रुति हैं। वही लय है उसके श्वास की जो सामवेद है। अंतःचक्षु से ससीम की प्रत्यक्ष करने की क्षमता असीम का संस्पर्श करती है। उस परम सत्य का जो पवित्र आत्म है अर्थात् 'श्रीनारायण' है, 'एकमेव' है। वही 'सुवर्ण पुरुष सूर्य के मध्य देखा गया, वही 'हिरण्मय', 'हिरण्यगर्भ' है (छांदोग्य उप. 1-6-6)। सर्वव्याप्ति की अनुभूति एक बड़ा पर्याय है मनुष्य की व्युत्पन्न या प्रकाशित अवस्था का। इस अवस्था में 'यह' और 'वह' अलग-अलग पहचान नहीं रह जाते, एकमेव सत्य के अलग-अलग रूप मात्र होते हैं। सब कुछ परिव्याप्ति है। इस प्रश्न का उत्तर देना संभव नहीं कि किसकी परिव्याप्ति है, क्योंकि 'किसकी' वह है जो शब्दों से परे है। प्रत्यय से, रूप से यहाँ तक कि देश-काल से वह परे है। जो सब कुछ है परिव्याति उसकी है जो है। वह जो है। बौद्ध लांगचेंपा लिखते हैं- *इसलिए कि सब कुछ और कुछ नहीं/एक भाग है उसका/जो पूर्ण है प्राणी में है जो/निज में पूर्ण-अच्छा या बुरा/आपकी स्वीकृति या अस्वीकृति से/कोई लेना-देना नहीं उसे/कोई भी इस बात पर/लगा सकता है ठहाके...*

नित्य स्थित उस परिव्याप्ति को कोई बयान नहीं कर सकता। परम सत्य जो स्वतः में है, क्षुद्रतम लघुतम क्षणों में है उसका प्रेक्षण संभव नहीं, क्योंकि प्रेक्षक या द्रष्टा को उन लाखों, करोड़ों क्षुद्रतम क्षणों में जाने की आवश्यकता होगी, उसे विश्लेषित करने जो अभी वर्तमान के लाखों, करोड़ों क्षणों में है और दूसरे क्षण को वह स्वयं और जगत् दोनों अतिक्रामित कर जाएँगे उसको। इस निर्मित विश्व में सब कुछ अतिक्रामी है और एकमेव सत्य जिसमें नैरंतर्य है वही एक 'स्थित' है बाकी सब परिवर्तनीय स्थितियाँ मात्र। वह स्थित स्वतः स्थित है सूक्ष्मतम खण्डों में, कोटि क्षणों में, कोटि-कोटि अति क्षुद्रतम कणिकाओं से लेकर शाश्वतकाल प्रवाह के जड़ पत्थर कंकड़ से लेकर वायु, जल, अग्नि क्षिति मृण की रग-रग तक में, प्रत्यक्ष में कल्पना में, हर कहीं मौजूद है वह। पारिजात की सुगंध से लेकर कल्पना के बंशीबट में, शिशिर बसंत, ग्रीष्म प्रखर से लेकर कुछ इंगित कर रहे पर्वत शिखर तक में।

''वास्तवता को उस परम सत्य को सूर्य के उदय-अस्त, जन्म-मृत्यु, क्षणजीवी उनके बुलबुलों को, जीवनधार में बुद्बुद् नियमबद्धता को हम ससीम मनुष्य आविष्कृत अनाविष्कृत करते हुए वास्तविक कहते और मानते हैं और उसे भी जिसे सिर्फ अपनी प्रत्यय की चेतना से शब्दहीन भाषा माध्यम से अपनी ओर अपनी चारों ओर की चीजों को एकरूपक की तरह हम आविष्कृत करते हैं।''- लायल वॉट्शन्

वर्ष 2016, 11 फरवरी रात आठ बजे केलिफोर्निया इंस्टिट्यूट ऑफ टेक्नालॉजी के वैज्ञानिक डेविड रित्ज ने वॉशिंगटन शहर में स्थित अमेरिका के नेशनल साइंसेस फाउण्डेशन के मुख्य कार्यालय में सारी पृथ्वी के संवाददाताओं के सामने घोषणा की, ''हमने महाकर्षण तरंगों की पहचान कर ली है, हमने की है।'' इस घोषणा से संसार भर के वैज्ञानिकों में खुशी की लहर दौड़ गई। प्रायः छै दशक से गवेषक इस सफलता की प्रतीक्षा में थे। इस प्रभाव के बारे में वैज्ञानिक अल्बर्ट आइंस्टाइन् ने ठीक सौ वर्ष पहले अनुमान किया था। क्या है वह प्रभाव ? रित्ज् की घोषणा से पता चला वह प्रभाव महाकर्षण तरंग (eiavifahonal wave) है।

वैज्ञानिक रित्ज् के बाद स्टेन यूनिवर्सिटी के वैज्ञानिक ग्रेवियेला गंजलिस् ने इस सफलता की व्याख्या की- ''130 करोड़ वर्ष पहले पृथ्वी से 130 करोड़ आलोक वर्ष की दूरता में (आलोक वर्ष= आलोक एक वर्ष में जितनी दूरी तय करता है) सूर्य से 21 गुना और 36 गुना भारी दो कृष्ण गह्वर (Black hole) परस्पर के निकट होकर एक-दूसरे की परिक्रमा कर रहे थे। इस तरह घूमने से परस्पर की उनकी दूरी कम हुई और एक समय दोनों के मिलने पर एक कृष्ण गह्वर बना। घूम रहे दोनों कृष्ण गह्वर का कुल वस्तुत्व था सूर्य का 65 गुना, लेकिन सूर्य का 65-62 या तीन गुना पदार्थ कहाँ गया? आंइस्टाइन के $E=mc^2$ समीकरण के अनुसार पदार्थ और शक्ति के बीच रूप परिवर्तन संभव है। रूप में आलोक वर्ष की दूरता में संगठित हुए इस महाप्रलय में यही अकल्पनीय परिमाण शक्ति महाकर्षणीय तरंग रूप में विस्तारित हुई। इसी तरंग के प्रभाव की वर्ष 2016 सितम्बर 14 में पृथ्वी के 'लाइगो' यंत्र से शिनाख्त हुई। शिनाख्त किए जाने का अर्थ है इसका अस्तित्व है। इस तरह दो कार्यों में सफलता मिली है। महातरंग वास्तव में है और इसकी शिनाख्त भी संभव है।

महाकर्षण तरंग है क्या? इसे जानने के लिए आंइस्टाइन के साधारण सापेक्षित तत्त्व अथवा महाकर्षण से सम्बन्धित न्यूटन और आंइस्टाइन के तत्त्वों के बीच के प्रभेद को जानना जरूरी है। साधारण सापेक्षित तत्त्व के अनुसार महाकर्षण, वस्तुत्व या शक्ति की उपस्थिति में उसके निकट चारों ओर के स्थान और काल की मुड़ने की अवस्था है। स्थान से गुजरते हुए अन्य वस्तु का पथ टेढ़ा हो जाता है अतएव न्यूटन की व्याख्या में महाकर्षण आकर्षण बल है, लेकिन आंइस्टाइन के तत्त्व में वह ज्यामिती का प्रभाव है। दोनों के तत्त्वों में और एक गहरी भिन्नता है, एक उदाहरण से इसे समझा जा सकता है। मान लीजिए किसी कारण से सूर्य अपने स्थान से एकाएक अंतर्धान हो गया। सूर्य के अंतर्धान होने की खबर पृथ्वी को तुरंत मिल जाएगी, लेकिन साधारण सापेक्षिक तत्त्व के अनुसार यह संभव नहीं है। खबर पहुँचने में समय लगेगा। खबर पहुँचेगी किस तरह? उत्तर है- महाकर्षण तरंग के माध्यम से।

महाकर्षण को समझने के लिए आलोक तरंग सहित इसकी तुलना की जा सकती है। महाकर्षण तरंग का वेग आलोक के वेग सहित समान है। विद्युतीय और चुंबकीय प्रभाव की सम्मिलित गति का फल है - आलोक तरंग। क्षुद्रतम धावमान विद्युत युक्त कणिकाओं पानी इलेक्ट्रॉन से आलोक तरंग की गति आरंभ होती है। महाकर्षीय बल देश-काल का कंपन है। वस्तु के वस्तुत्व या उसकी अवस्थिति में एकाएक परिवर्तन से इसका सूत्रपात होता है। किसी तारे में एकाएक विस्फोट, किसी नक्षत्र का अपने अक्ष के चारों ओर आवर्तन दो कृष्ण गर्त्त की परस्पर प्रदक्षिणा और पारस्परिक संघर्ष से एक होना आदि सारी घटनाओं से स्थान-काल में जो कंपन की सृष्टि होती है, उसकी शिनाख्त करने का स्वप्न वैज्ञानिकों ने देखा था।

सन् 1915 में आंइस्टाइन ने ''साधारण सापेक्षित तत्त्व' का आविष्कार किया था। 1916 में पता चला था कि महाजागतिक हलचल से महाकर्षीय तरंग विस्तारित होगी अर्थात् स्थान-काल में कंपन की सृष्टि होगी। इस कंपन के फलस्वरूप तरंग जिस दिशा में जाएगी वहाँ उस दिशा में स्थान एक बार ऊपर, नीचे प्रसारित होगा

और दूसरे ही क्षण संकुचित होगा। जिस वक्त स्पेस ऊपर-नीचे प्रसरित होगा उस वक्त वह बाँए-दाँए भी प्रसरित होगा। स्पेस के प्रसरण संकोचन से गुजरती तरंग, आलोक वेग से गतिमान भी रहती है, लेकिन स्पेस का संकोचन प्रसारण का परिमाण कितना होगा यह निर्भर करता है तरंग पर और उसके स्रोत से कितनी दूर उसका परिमाप हो रहा है उस पर। जल में एक पत्थर या कंकर गिरे तो ज्यों तरंगें उठती हैं और पत्थर गिरने के स्थान से धीरे-धीरे वह सीमित होती जाती है ठीक उसी की तरह। एक अति शक्तिशाली महाकर्षीय तरंग के प्रभाव से स्पेस के दैर्ध्य प्रस्थ में जो संकोच-प्रसार होगा उसी अति सूक्ष्म परिवर्तन की शिनाख्त कर पाने में छः दशकों से चले आ रहे वैज्ञानिकों के कठिन प्रयासों के बाद अब ये सफलता उन्हें मिली है।

आज की प्रयुक्ति विधा की निपुणता से, यंत्रों की संवेदनशीलता बढ़ाकर 'एडवांस लाइगो' का निर्माण किया गया है। ह्यानफोर्ड और लिविंगस्टोन के दो स्थानों में। यहीं वर्ष 2016, 14 सितम्बर को परस्पर अभिलंबित टैनल में स्पेस के दैर्ध्य प्रस्थ के घटने-बढ़ने का पर्यवेक्षण संभव हुआ। परिणाम था मूल दैर्ध्य के 10 2/1 भाग का एक भाग। अतएव महाकर्ष तरंग पृथ्वी से निश्चित ही गुजरी है और लाइगो ने इसकी शिनाख्त की है। चार सौ वर्ष पहले गैलिलियों ने दूरवीक्षण से महाकाश को देख ज्योतिर्विज्ञान में एक क्रांति लाई थी। उन्होंने देखा था पृथ्वी की तरह अन्य ग्रहों के भी चंद्र हैं और वे ग्रह के चारों ओर घूम रहे हैं अतएव पृथ्वी केन्द्रित विश्व की पारम्परिक धारणा गलत है। इसके बाद कई तरह के कई तरह के दूरवीक्षण यंत्र आए हैं, वैज्ञानिकों ने कई तरह की आलोक रश्मियों का विश्लेषण किया है जैसे गामा रश्मि, अति बैंगनी रश्मि आदि का। विभिन्न आलोक से महाविश्व में विभिन्न वस्तुओं और घटनाओं का संधान किया है, अतएव महाकर्षण तरंग की शिनाख्त कर पाने का अर्थ है महाविश्व और कृष्ण गह्वर को (जहाँ आलोक का प्रश्न ही नहीं) एक और नजरिए से देखना। महाकर्ष तरंग से इस तरह की घटना, वस्तु या परिदृश्यों (Phenomena) और वैश्विक निरंतरता और उसकी परिव्याप्ति की नई-नई पहचान संभव हो सकेगी। उपरोक्त विवरणों से अलग जो सबसे महत्त्वपूर्ण बात है वह यह कि जो तरंग अभिघात या लहर पृथ्वी में पहुँची थी, उसे लाइगो के वैज्ञानिकों ने शब्दों में रूपातंरित कर सुना भी। लाइगो से जुड़े कोलबिंया विश्वविद्यालय के वैज्ञानिक जावोल्कस् मार्का ने कहा है- *''ज्योतिर्विज्ञान की अब तक केवल आँखें थीं, उसके साथ अब कान भी जुड़ गया है। इतने दिनों तक जिस महाविश्व की एक निर्वाक् छवि थी, वह अब वाद्य संगीत के माध्यम से सुनी भी जा सकेगी।''*

वैज्ञानिकों की दूसरी महत्त्वपूर्ण उपलब्धि यह है कि विश्व सृजन की उसकी पृष्ठभूमि की महान् एकमेव शक्ति, उसे वास्तवता में में परिणत कर रही प्रक्रिया का उन्होंने ठौर-ठिकाना देख लिया और सुन भी लिया है। इसलिए वैज्ञानिक बेरी सी बेरिस् (Barry c . Barioh) ने कहा *''सबसे शक्तिशाली महाकर्षण तरंगें निसृत होती हैं एक बड़ी वैश्विक घटन से जैसे दो कृष्ण महागह्वरों के टकराने से या भूकंप से।''* इस महाविश्व में स्थान-काल के तंतुओं की बनावट में फाँक की 'सृष्टि' कोई महान् प्रभु शक्ति ही कर सकती है अपनी इच्छा-अनिच्छा से। शक्ति की ध्वंस की अनिच्छा, सृजन की इच्छा की खातिर है। इसी खेल का तमाम सामान है ये नाम-रूप की दुनिया, ये महाविश्व की रचना। 'इच्छा-अनिच्छा' के ध्यान में परिणत धवल आँचल और प्रकाश की प्रभु-रचना है ये जन्म-मृत्यु। ये जीव जीवन, ये मनुय जीवन।

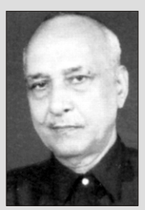

एन. 4/25, आई.आर.सि. विलेज
नयापल्ली, भुवनेश्वर 751015 (ओड़िशा)

उर्दू शायरी में वेदान्त और गंगाजमनी तहज़ीब

राकेश भारतीय

साम्प्रदायिक वैमनस्य से उपजी हुई हिंसा इस समय पूरे विश्व की सलामती के लिए एक बहुत बड़े खतरे के रूप में खड़ी है। शायद ही कोई सप्ताह उन खबरों से खाली गुजरता हो जब 'धर्म' या 'सम्प्रदाय' को दुहाई देकर दुनिया में कहीं न कहीं किसी इंसानी समूह की बेरहमी से न काट-मार डाला गया। औरतों-बच्चों तक को अकल्पनीय निर्दयता के साथ मार डालने का सिलसिला दर सिलसिला बना हुआ है और समझ पाना मुश्किल हो रहा है कि इंसान के ऊपरी खोल में छिपे इतने सारे हैवान कहाँ से नमूदार हो रहे हैं। इस पृष्ठभूमि में एक बार फिर याद कर लेना मुनासिब होगा सर्वसमावेशी सद्भाव के उस नायाब नमूने को जिसे हिन्दुस्तान की धरती ने सदियों पहले पूरी दुनिया के सामने रखा था और तमाम चुनौतियों के बावजूद अब तक बनाये रखा है। सर्वसमावेशी सद्भाव को वेदान्त में अनेकता में निहित एकत्व को रेखांकित कर व्याख्यायित करता है। 'ईशावास्योपनिषद्' सहज सम्प्रेषणीय तथा बेहद स्पष्ट तरीके से सबमें एक ही मूल तत्त्व की व्याप्ति के अहसास को तमाम तरह की जुगुप्सा का नाश हो जाना बताता है- *''यस्तु सर्वाणि भूतानि आत्मन्येवानु पश्यति/सर्वभूतेषु चात्मान ततो न विजुगुप्सते''।* (जो व्यक्ति सभी जीवों को अपनी आत्मा में और अपनी आत्मा को सभी जीवों में देखता है वह इस अनुभूति के चलते किसी से घृणा नहीं करता। यहाँ अभिप्राय ब्रह्मस्वरूप आत्मा से है।)

भारत भूमि में सम्प्रदायों में धार्मिक अनुष्ठान इत्यादि को लेकर प्राचीनकाल में झगड़े नहीं हुए, ऐसा नहीं था। पर साम्प्रदायिक झगड़ों की छोटी-छोटी लहरों को बौद्धिक, तार्किक तथा आध्यात्मिक रूप से समृद्ध एक बड़ी तथा मुख्य लहर इस कदर आप्लावित करते हुए चलती थी कि वही सदियों से हिन्दुस्तान की पहचान बनी रही, बनी हुई है। हिन्दुस्तानी तहजीब ने हमेशा सबको साथ लेकर चलना चाहा, सबका भला करना चाहा, संकुचित एवं सीमित सम्प्रदायवाद को निष्कृष्ट माना, व्यापक एवं सर्वसमावेशी भलाई को वरेण्य कृत्य करार दिया। हिन्दुस्तानी जमीन की इस विशिष्ट सोच को सबसे पहले स्वामी विवेकानंद ने पूरे विश्व के धर्मप्रतिनिधियों के सामने रखा। 11 सितम्बर, 1893 को शिकागो की धर्मसंसद में उन्होंने कहा..*''हम न सिर्फ वैश्विक सहिष्णुता में विश्वास करते हैं, बल्कि हम सारे धर्मों को ही सत्य मानकर स्वीकार करते हैं। मुझे गर्व है उस देश का वासी होने का जिसने धरती के सारे धर्मों और देशों के प्रताड़ित लोगों केा आश्रय दिया''* और 15 सितम्बर, 1893 को शिकागो में ही प्रस्तुत अपने पर्चे में विवेकानंद ने मानो सर्वसमावेशी भलाई की हिन्दुस्तानी सोच को महज एक वाक्य में उतार कर रख दिया- *''पूरे विश्व को मेरी चुनौती है कि पूरे संस्कृत दर्शन में कहीं एक कथन खोजकर दिखा दे जहाँ कहा गया हो कि सिर्फ हिन्दू का ही उद्धार होगा, औरों का नहीं।''*

यदा-कदा हिन्दुस्तान की धरती पर वर्तमान काल में हो रहे साम्प्रदायिक झगड़ों को कई 'बुद्धिजीवी' इस्लाम धर्म के अनुयायी शासकों के लम्बे चले शासन से जोड़कर देखते हैं। यह सही है कि सनातन धर्म के ही विभिन्न स्वरूपों तथा व्याख्याओं के खण्डन-मण्डन में सदियों से सक्रिय सीमित समूहवादी सोच के सम्प्रदायवादी स्वरूप को इस्लामी शासन ने एक झटका दिया, उसको संरचनात्मक बदलाव लाने पर बाध्य कर दिया। यह भी सही है कि धर्म के आधार पर उत्पीड़ितों के धार्मिक प्रतीकों यथा मन्दिरों की लूट एवं तोड़फोड़ की अनेकानेक घटनाएँ इतिहास में इस्लाम धर्म के अनुयायी शासकों के काल पर बदनुमा धब्बों के रूप में दर्ज हैं। पर यह भी सही है कि हिन्दुस्तानी जमीन के इसी संक्रमण काल में 'धर्म' तथा 'संस्कृति' के विशिष्ट हिन्दुस्तानी नमूने ने अपनी सर्वसमावेशी तथा सर्वकल्याणकारी प्रकृति के अद्भुत आयाम प्रस्तुत कर गंगाजमनी तहजीब की नींव डाली, उस तहजीब को *''एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति...''* तथा *''सर्वे भवन्तु सुखिनः...''* सोच वाली पहले से चली आ रही संस्कृति के ही एक विस्तार के रूप में दुनिया के सामने रख दिया। इस मान्यता को पुष्ट करने के लिए हजारों उदाहरण मौजूद हैं पर हम इस वक्त उस भाषा में व्यक्त उदाहरण देना चाहेंगे जो आज के जमाने में कुछ कमअक्ल मात्र मुसलमानों की भाषा मनवाने के दुराग्रही हैं, मात्र मुस्लिम तहजीब का झण्डा बनाने के दुराग्रही हैं। हमारा आशय उर्दू भाषा से है जो हिन्दुस्तान में ही आकार लेकर पनपी तथा , हिन्दुस्तान में ही जिसमें शायरी के हजारों लाजवाब नमूने लाखों लोगों की जबान पर चढ़कर पीढ़ी दर पीढ़ी समादृत हुए। मीर तकी मीर उस दौर के शायर हैं जब इस्लाम मत के अनुयायी शासकों की सबसे मजबूत रही हुकूमत यानी मुगल साम्राज्य पतनोन्मुख था और हिन्दुस्तान में सामाजिक-आर्थिक-सांस्कृतिक अराजकता फैली हुई थी। मीर ने अपनी शायरी में न सिर्फ उस युग की पीड़ा को अभूतपूर्व अंदाज में व्यक्त किया, बल्कि 'प्रेम' की महत्ता को शायरी में उस बुलन्दी तक ले जाकर जबान दी जो उपनिषदों के दर्शन के काफी करीब है। वे कहते हैं- *''दैरो-हरम से गुजरे अब दिल है घर हमारा/है खत्म इस आबले पर सैरो-सफर हमारा''* (मन्दिर और काबा दोनों हम देख आये, मन नहीं रमा। अब दिल ही हमारा घर है, इसी छाले रूपी घर यानी दिल पर हमारी सारी यात्रा समाप्त होती है।) अद्वैत का भाव, मन्दिर-मस्जिद कोई भेद नहीं रखते, मीर की शायरी में बारम्बार बेहद स्पष्ट रूप से व्यक्त होते चलते हैं। एक और उदाहरण- *''किसको कहते हैं नहीं मैं जानता इस्तामो-कुफ्र/दैर हो या काबा मतलब मुझको तेरे दर से है।''* (मुझे नहीं मालूम कि इस्लाम के अनुकूल क्या है और क्या उसके हिसाब से गुनाह। मंदिर हो या काबा, मुझे तो उस सर्वशक्तिमान की देहरी से मतलब है।)

अद्वैत दर्शन की तार्किक पद्धति की ऊँचाई तक दुनिया का कोई भी दर्शन नहीं पहुँच सका है, वही एक दर्शन इंसान को उसके वजूद के मायने ब्रह्मस्वरूप ही होने की बुलंदी के करीब ले जाकर समझाता है। साम्प्रदायिक सद्भाव इस दर्शन की नैसर्गिक परिणिति है, क्योंकि जब मूल तत्त्व ही एक है तो 'हम' में और 'तुम' में सम्प्रदाय-भेद का सवाल कहाँ उठता है। मीर की बेहद लोकप्रिय पंक्तियाँ तो जैसे उर्दू में इस दर्शन का सीधा, स्पष्ट और सारगर्भित बयान ही है। *''उसके फरोगे-हुस्न से झमके है सब में नूर/शम्म-ए-हरम हो या कि दिया सोमनाथ का''।* (एक ही प्रभु का प्रकाशमान अस्तित्व सब में प्रकाश लाता है, चाहे काबा में जलती हुई शमा हो, चाहे सोमनाथ मंदिर में जलता हुआ दिया हो।) गौरतलब है कि मीर की ये पंक्तियाँ एकदम सीधे-सीधे मुण्डकोपनिषद् के निम्नलिखित कथन से ताल मिलाये हुई हैं- *''तमे भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वमिदं विभाति''* (सब कुछ ब्रह्म के अनुसार ही प्रकाशित है। उसी के प्रकाश से यह सब तरह-तरह से प्रकाशित हो रहा है।) मीर ने मुगल साम्राज्य का पतन होते देखा तो उनके परवर्ती और उतने ही महान् शायर *''मिर्जा गालिब''* ने तो उसका जनाजा ही उठते देखा। गालिब का पूरा का पूरा जीवन साम्प्रदायिक संकीर्णता से ऊपर उठा हुआ था। वे तो अद्भुत निस्संगता से फरमाते हैं-

''दैर नहीं, हरम नहीं, दर नहीं, आस्ता नहीं/बैठे हैं रहगुजर पे हम, कोई हमें उठाये क्यों'' *(दैर-मन्दिर, हरम-काबा, आस्तां- चौखट, रहगुजर-आम रास्ता)* एक ही ईश्वर से सब वाह्य प्रतीकों में 'नूर' की उपस्थिति वाली मीर की ही बात को गालिब बड़े दुस्साहसी ढ़ंग से आगे बढ़ाते हैं- *''गो वां नहीं पर वां के निकाले हुए तो हैं/काबे से इन बुतों को भी है निस्बत दूर की।''* (संकेत उस तथ्य की ओर है कि काबे में पहले मूर्तियाँ रखी जाती थीं, बाद में उन्हें निकाल दिया गया था। कहने का मतलब है कि मूर्तियों का भी काबे से सम्बन्ध है, भले दूर का।) मिर्जा गालिब के शिष्यों और प्रशंसकों में हिन्दू भी थे, मुस्लिम भी थे। उनकी शायरी का पहला संग्रह (दीवान) उनके परम मित्र एवं शिष्य एक हिन्दू मुंशी हरगोपाल तफ्ता के प्रयत्नों से ही प्रकाशित हुआ था। वे अपने को समस्त सृष्टि को एक मानने वाला कहते हैं तथा सम्प्रदायवाद के खात्मे को ही 'धर्म' मानते हैं- *''हम मुव्वहहिद हैं, हमारा केश है तर्क-ए-रुसूम/मिल्लतें जब मिट गईं, अज्जा-ए-ईमां हो गईं''* (हम समस्त सृष्टि को एक मानने वाले हैं और हमारा तरीका सारे रीति-रिवाजों का त्याग कर देने का है। हमारे हिसाब से सारे सम्प्रदायों का खात्मा होने पर ही वे धर्म का अंग बनते हैं।) 'धर्म' के अपने-अपने बाह्य प्रतीकों को वे एक सतही चीज मानते हैं और धार्मिक होने की असली कसौटी परस्पर वफादारी में देखते हैं- *''नहीं कुछ सबीह-ओ-जुन्नार के फंदे में गीराई/वफादारी में शेख-ओ-बिरहमन की आजमाइश है''।* (हिन्दुओं के जनेऊ और मुसलमानों की तसबीह कोई पकड़ (प्रभाव) नहीं रखते। शेख हों या ब्राह्मण, असली कसौटी तो उनकी निष्ठा ही है। यानी निष्ठा ही उनकी 'धार्मिकता' तय कर सकती है।) सीमित सम्प्रदायवादी सोच से ऊपर उठकर 'धर्म' के व्यापक स्वरूप को समझे बिना सहिष्णुता एवं सद्भाव के सदियों पुराने खास हिन्दुस्तानी नमूने में विश्वास किये बिना गालिब ऐसी शायरी कर ही नहीं सकते थे। ये वो शायरी है जो किसी मुल्क की सरजमीन की आत्माभिव्यक्ति बन जाती है, जिसमें उस मुल्क की आत्मा ही झलक-झलक जाती है। साम्प्रदायिक सद्भाव के बूते पर आकार ली गंगाजमनी तहजीब के साम्राज्यवादी शोषण कर रहे अंग्रेज आक्रांताओं के खिलाफ खड़े होने के लिए हिन्दु-मुसलमान को प्रेरणा दी। 1857 का पहला स्वतंत्रता संग्राम अंग्रेजों के शासन के लिए खतरे की घण्टी था, वे समझ गये कि हिन्दू-मुस्लिम एकता देर-सबेर उनको उखाड़ कर रहेगी। और फिर ईमान में कमतर चंद लालची हिन्दुस्तानियों को हथियार बनाकर उन्होंने गंगाजमनी तहजीब में नियोजित ढ़ंग से सेंध लगाना शुरू कर दिया। विरोधाभासी पैबन्दों को धर्म की गोद से जोड़कर जैसे-तैसे खड़ा किया गया 'पाकिस्तान' उसका ही नतीजा है। बेमिसाल शायर और सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तां हमारा' कहने वाले 'इकबाल' का 'पाकिस्तान' का प्रवक्ता बन जाना उर्दू शायरी की गंगाजमनी परम्परा में घटी सबसे बड़ी दुर्घटना है। पर अंग्रेजों के शासनकाल में ही, बल्कि जज के रूप में बाकायदा अंग्रेजों के मुलाजिम भी, एक ऐसे भी शायर हुए हैं जो हिन्दू-मुस्लिम एकता के बहुत बड़े समर्थक तो थे ही, गंगाजमनी तहजीब के जीते-जागते उदाहरण भी थे। ज्यादातर लोग ''अकबर इलाहाबादी'' को मात्र हास्य-व्यंग्य का बेहतरीन शायर मानते हैं, इस दिशा में वे अप्रतिम भी हैं पर उनकी कुछ अलग ही किस्म की पंक्तियाँ साम्प्रदायिक सद्भाव का बेजोड़ बयान तथा गंगाजमनी तहजीब की परिभाषा ही साबित होती हैं- *''तराने मेरे हम आहंगे-दैर-ओ-काबा हैं यकसां/जबां पर मेरी मौजूं होती है हम्द और भजन दोनों''* (मेरे तराने मन्दिर और मस्जिद, दोनों से हम आहंग हैं, यानी ये दोनों ही उनमें एक सी आवाज में व्यक्त होते हैं। खुदा की शान में कही गई शायरी और भजन, दोनों ही मेरी जबान पर गीत बनकर ढलते हैं।)

अपने मुल्क की गंगाजमनी तहजीब से ओतप्रोत अकबर इसे छोड़ कर जाने की बात सोच ही नहीं सकते- *'' हिन्द से आपके हिजरत हो मुबारक 'अकबर'/हम तो गंगा ही पे अब मार के आसन बैठे'' (हिजरत- अपना वतन छोड़कर कहीं और जा बसना)* क्यों न हो। गौर करने लायक है कि मीर के पूर्वज हेजाज (सउदी अरब) से भारत आये थे और गालिब के पूर्वज समरकंद (उजबेकिस्तान) से, मीर गालिब की खालिस हिन्दुस्तानी गंगाजमनी तहजीब में रची-बसी शायरी की ही परम्परा तो अपने खास अंदाज में आगे बढ़ायी अकबर ने। ये अकबर जैसा देशभक्त ही कह सकता था- *''पाबन्द किसी मश्रब-ओ मिल्लत का नहीं हूँ/घोड़ा मेरी आजादी का अब जाता है बगटुट'' (मश्रब-ओ-मिल्लत - वर्ग या सम्प्रदाय)*

अगर अकबर ने अंग्रेजों के मुलाजिम रहते हुए भी हिन्दू-मुस्लिम एकता की जरूरत तथा साम्राज्यवादी शोषण के असली चेहरे को बड़ी तल्खी से अपनी शायरी में चित्रित किया तो उनके बाद के दौर के रघुपति सहाय 'फिराक गोरखपुरी' ने तो बाकायदा आजादी की लड़ाई में वर्षों तक गोरखपुर के वतनपरस्तों का नेतृत्व ही किया। फिराक एक शायर के रूप में अकबर को बहुत महत्त्वपूर्ण मानते थे। अपनी शायरी में फिराक ने गंगाजमनी तहजीब की पूरी रेंज उतार कर रख दी, हिन्दुस्तानी औरतों के योगदान के विभिन्न आयामों को बड़ी खूबसूरती से उन्होंने ही पहली बार विस्तार से उर्दू शायरी में पेश किया। उर्दू को मात्र मुसलमानों की बपौती माननेवालों के मुकाबिल यह तथ्य ताल ठोंककर खड़ा है कि हिन्दू फिराक

अपने दौर के सबसे बड़े उर्दू शायर हैं, सर्वकालिक बड़े शायर में एक तो हैं ही। जैसे हिन्दुस्तान या गंगाजमनी तहजीब की परिभाषा ही वे तय कर देते हैं-*''सर जमीने-हिन्द पर अकवामे-आलम के फिराक/काफले बनते गये हिन्दोस्तां बनता गया।''*(फिराक कहते हैं कि हिन्दुस्तान की पवित्र धरती पर दुनियाभर की जातियों के यात्रीदल आते गये और बसते गये, और इस तरह हिन्दुस्तान का निर्माण होता रहा।) मीर, गालिब तथा अकबर की तरह ही फिराक के यहाँ भी धर्म के बाह्य-प्रतीकों से बहुत ऊपर उठा हुआ 'प्रेम' प्रतिष्ठित है- *'' सरवरे कुफ्फार है इश्क और अमीरुल-मोमनीं/काबा-ओ-बुतखाना औकाफे-दिल आली जनाब।''*(हिन्दुओं के लिए भी सबसे ऊपर इश्क है और सच्चे मुसलमानों के लिए भी। काबा और बुतखाना तो मात्र दिल बहलाने की जगहें हैं।)

वेदांत में दृश्यमान जगत् का अस्तित्व बस माया के ही तहत है, शांकरभाष्य के अनुसार। फिराक जैसे इसी अवधारणा को शब्द देते हैं- *''ऐ फिराक आफाक है कोई तिलिस्म-अन्दर तिलिस्म/है हर एक खाब हकीकत हर हकीकत एक खाब!''* (यह दुनिया किसी इन्द्रजाल के भीतर इन्द्रजाल की तरह है। यहाँ हर सत्य एवं स्वप्न सा लगता है और हर स्वप्न सत्य-सा।)

उर्दू शायरी में प्रेम के बेहद सफल और लोकप्रिय शायर 'जिगर मुरादाबादी' अपनी शायरी का उत्तरार्ध आते-आते तसव्वुफ (सूफी दर्शन) की परम्परा के अनुसार इश्क-ए-मजाजी *(सांसारिक सौन्दर्य)* से इश्क-ए-हकीकी (वास्तविक सौन्दर्य) की यात्रा तय करते दिखते हैं जो उपनिषदों के दर्शन को काफी करीब है। एक प्रतिमान उदाहरण देखें- *''मजाज हो कि हकीकत यहाँ तो हाल यह है /तेरे हुजूर से उठे तेरे हुजूर आए।''* यही एकत्व की अवधारणा झलकाने वाले दो और उदाहरण- *''कोई न यहाँ अदम, न हस्ती/ अव्वल आखिर जो कुछ है तू है।''* (अदम-परलोक) *''रूह काबिल से निकलकर असिल में गुम हो गयी/ने से होते ही जुदा नग्मा परेशां हो गया।'' (ने - बांसुरी, काबिल- शरीर)* ये वही जिगर मुरादाबादी हैं जो पाकिस्तान के कद्रदानों में भी बेहद लोकप्रिय थे पर उनके वहाँ बस जाने की तमाम लुभावनी पेशकश ठुकरा देते थे। यहाँ तक कि पाकिस्तान बनने के बाद वहाँ बसने जाने वालों को जिगर 'वतनहराम' कहा करते थे। गंगाजमनी तहजीब में विश्वास करने वाला और तसव्वुफ की गहराइयों में उतरकर शायरी की बुलंदियाँ छूने वाला ही ऐसा कह या कर सकता है।

एकत्व, सद्भाव, सर्वसमावेशी भलाई इत्यादि की भारतीय अवधारणा को दार्शनिक रूप से व्यक्त करने वाले वेदान्त से लेकर व्यावहारिक रूप से उसी को अनुशंसित करनेवाली गंगाजमनी तहजीब की उर्दू शायरी के नामचीन उस्तादों के कृतित्व में इस कदर मजबूत अभिव्यक्ति हमारे समय में सिर उठा रही साम्प्रदायिक नफरत के खिलाफ हमें राह दिखा सकती है। इतिहास गवाह है कि संक्रमण काल में साहित्य राह दिखाने के लिए आगे आता रहा है। सच्चा साहित्य धार्मिक-साम्प्रदायिक संकीर्णता से ऊपर उठकर वैश्विक सद्भाव तथा अमन-चैन के पक्ष में खड़ा होता है। हिन्दुस्तान की धरती पर सदियों से प्रवाहित तथा पूर्व के संक्रमण काल में बारम्बार खरी उतरी सर्वसमावेशी सद्भाव तथा भलाई की पैरोकार हमारी अजस्र सांस्कृतिक धारा ही हमारी असली ताकत है। इसी ताकत के बूते पर हम अपने समाज को बचाये रख सकेंगे, दूसरे डाँवाडोल समाजों को भी राह दिखा सकेंगे। बकौल मीर- *''तौबा सद बार कि मस्ती में पिरो डाले हैं/दाने तस्बीह के हैं, रिश्ता-ए-जुन्नार के बीच''* (सौ बार भी पश्चात्ताप करना पड़े भले, मीर अपनी मस्ती में इस्लामी सुमिरनी-माला के मनके जनेऊ के काते हुए धागे में पिरो डाले हैं। यानी हर हाल में गंगाजमनी तहजीब को बरकरार रखना चाहेंगे।) म

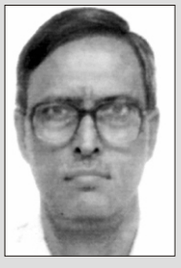

590, डी.डी.ए. फ्लैटस पाकेट-1,
सेक्टर 22, द्वारका नई दिल्ली-110077

पुस्तकें मिलीं

जाँच अभी जारी है (व्यंग्यसंग्रह)
डॉ.सुरेन्द्र गुप्त
अंकुर प्रकाशन, दिल्ली-110009
मूल्य रू.300/-

देश, समाज और संस्कृति (आलेख)
डॉ.चन्दर सोनाने
विद्या बिहार, नईदिल्ली-110002
मूल्य रू.500/-

भारत में प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक और न्यू मीडिया
संदीप कुलश्रेष्ठ
प्रतिभा प्रतिष्ठान, नई दिल्ली-110002
मूल्य रू.400/-

इतिहास का चाकू (कविता संग्रह)
अरुण ठाकरे
बोधि प्रकाशन जयपुर-302006
मूल्य रू.100/-

कौन देस को वासी : वेणु की डायरी
सूर्यबाला
राजकमल प्रकाशन नईदिल्ली-11002
मूल्य रू.391/- (पेपर बेक संस्करण)

मेरी धरती मेरे लोग
(आधुनिक महाभारतम् - तेलुगु महाकाव्य का अनुवाद
शेषेन्द्र शर्मा
अनुवाद - ओमप्रकाश निर्मल
प्रकाशक - गुंटूरू शैलेन्द्र शर्मा मेमोरियल ट्रस्ट, हेदराबाद
मूल्य रू.425/-

लाल रंग की इमारत और सचिदा
नरेन्द्र नागदेव
पहले पहल प्रकाशन, भोपाल
मूल्य रू.300/-

निर्मल मन के मोती (कविता संग्रह)
गौरीशंकर उपाध्याय 'उदय'
प्रकाशक - संवाद शोध संस्थान, उज्जैन
मूल्य रू.201/-

शब्द और ध्वनि (अश्आर)
जगदीशचन्द्र पण्डया
प्रकाशक - गजलांजली, उज्जैन
मूल्य रू.300/-

कठिन समय में (डायरी)
रमेशचन्द्र शाह
किताबघर प्रकाशन, नईदिल्ली-110002
मूल्य रू.300/-

साथिन

रजनी मोरवाल

चयन : मुकेश वर्मा

''जाना है...जाने दो हमें ...छोरो न...चल परे हट लरके, ए दरोगा बाबू सुनत रहे हो''

''क्या चूँ -चपड़ लगा रखी है तुम लोगों ने'' दारोगा जरा नाराज लहजे में बोला या ये भी हो सकता है कि खाकी वर्दी ने उसकी आवाज को जबरन कर्कश बना दिया हो, बिना कलफ लगी आवाज का हवलदार तो पप्पू ही लगता है सो आवाज में थोड़ा कड़कपना लाना पड़ता है ठीक वैसे ही जैसे उनकी टोपी में एक सीधा तुर्रा खड़ा रहता है,

''जरा समझाओ तो इन लरकन को मुझे जाने नहीं देत रहे, मुझे जाना है अपनी साथिनों के पास'' अम्मा फिर चिल्ला थीं,

''अम्मा पगला ग हों क्या ? तुम्ही तो नुं कहत रहीं कि बुढ़ापा तुम हमार कंधा पे चर के काटोगी, अब जाना है-जाना है कि रट लगाए मरी जा रही हों'' मुरारी चीखा,

''कहत रहे पर जे तब कि बात है जब तुम्हार पिता जीवित रहे''

''तो अब क्या बिगर गया अम्मा ?'' गोविंदा छोटा है इसीलिए माँ का जरा लाडला रहा है और इसी लाड-प्यार ने उसे मुँहफट बना दिया था,

''अबहूं हम बोझ भए तुमन लोगन पे, जानत नहीं का बबुआ तुम ? जाओ पूछो तुमार महतारू से ''

''जे बात नहीं है अम्मा, थोरा बहुत तो तुम्हीं अड़जस नहीं कर पा रहीं, तुमार लरकी लोग होतीं तो क्या तुम इतनी सखत होतीं उनके लाने ?''

''कान्हा-कान्हा रच्छा करो हमारी....कान्हा ने लरकी न दी हमें तबऊ तो हम पे जे जुलम ढा रहीं तुम्हार लुगा , हमऊँ से गलती भ बबुआ, सारी गलती हमारी जो हम उनके लाने परेम से रहीं, सोचती थीं कि हमार लरकी पैदा ना भ तो हम बहू को ही उसके हिस्से का परेम दें किन्तु जे लोग तो हमार सर पर बैठ गईं'' अम्मा अपने इष्ट को याद करके रोने लगी थीं।

''अम्मा जे बात नहीं है, तुम परेम तो करतीं हो पर साथ-साथ सर पर टोला भी देतीं हों फिर चाहतीं हों कि सब तुम्हें परेम से पूछें , तुमारी कदर हो, खाबे के साथ रूलाबे की आदत है तुमारी, वा के लाने परसानी है बस...जकीन करो अम्मा'' गोविंदा के खरे बोल पर अम्मा को चिढ़ा देते हैं,

''हाँ-हाँ ...अब माँ हु दारी, वा बीबी लग रहीं प्यारी, वे हो गईं बेचारी और अम्मा हो गईं न्यारी''

''ऐसी तो बात ना है, तुम चलो तो घर....हम सबको समझा देंगे, एक चानस अउर दे दो...चलो ना ...ए अम्मा'' मुरारी अपनी रूठी हु अम्मा की चिरौरी कर-करके थक तो गया था किन्तु फिर भी वह को कसर नहीं छोड़ना चाहता था, अम्मा चली ग तो महिना काटना मुश्किल हो जाएगा, इन औरतों को कौन समझाए अब, वह खुद से ही झींकने लगा था।

ट्रेन चलने को हुई तो वह अम्मा को लगभग घसीटते हुए ट्रेन से नीचे उतर चुका था, अम्मा के चीखने-चिल्लाने से वहाँ काफी भीड़ एकत्रित हो ग थी। उसने अम्मा का मुँह अपनी हथेली से भींच दिया, अम्मा रो कम रही थी चिल्ला ज्यादा रही थी। अम्मा की गों-गों की आवाज से मुरारी का ध्यान अपनी हथेली पर गया था, उसने घबराकर अपनी हथेली हटा दी थी। अम्मा की कातरता ने उसे घबरा दिया था।

''अम्मा...ए अम्मा...तुम हों कि निक्कल्लीं ?'' उसने हँसते हुए पूछा था, ''हों-हों ...अम्मा इस बार सच में ही दहाड़े मारकर रो पड़ी थी, आस-पास भीड़ में से कुछ लोग उनपर हँसने लगे थे तो कुछ इसे उनका फॅमिली ड्रामा कहकर मजाक उड़ा रहे थे। मुरारी और गोविंदा दोनों बेटे किसी तरह रिक्शे में भरकर अम्मा को घर ले आए थे।

अम्मा पूरे रास्ते अपने पुराने दिनों को याद कर-करके दहाड़ें मारती रही थी,''जांगे एक दिन तो हम जरूर जा के रहेंगे, देख लियो भैया, तुम सभी को सोते में छोर के कट लेंगे'' यूँ तो अम्मा का नाम रामप्यारी था पर अम्मा नाम के उलट कृष्णा प्यारी होकर रह गई, उठते-बैठते कृष्णा-कृष्णा की टेर लगाए रहती थीं।

बचपन में मीरा की कृष्ण भक्ति सुनकर रामप्यारी भी भक्ति प्रेम में ऐसी डूबी कि कृष्ण को ही अपना इष्ट देवता मान लिया। द्वारिका नगरी तीर्थयात्रा से लौटते हुए नाना ने कान्हा की एक छोटी-सी चाँदी की मूरत ला दी थी, बस रामप्यारी उसे ही अपने सीने से लगाए-लगाए घर-आँगन में अंदर-बाहर घूमती खेलती-कूदती पर मजाल की कान्हा की मूरत कहीं छूट जाती।

ब्याह करके रामप्यारी मथुरा के हरेकृष्णा मोहल्ले चली आई । ब्याह के वक्त पति किशन लाल की उम्र थी 16 बरस और रामप्यारी कोई चौदह बरस की थी। एक रोज सोकर उठी तो साड़ी पर ढेर सारे लाल सुर्ख गुड़हल के फूल उग आए थे, इन छोटे-बड़े फूलों को बीनने की लाख कोशिश की थी उसने किन्तु हथेलियाँ रँग उठी थी उसकी, बहुत छोटी थी तब त्योहार पर अपनी छोटी-छोटी हथेलियों पर आलता सँजोए वह पूरे दिन हथेलियों हथेलियों से पसीज ही जाता था, को भीगने नहीं देती थी। किन्तु कितना भी परहेज करे शाम ढलते-ढलते आलता हथेलियों से पसीजकर बह ही निकलता था। ठीक वैसी ही ललाई इन फूलों को पकड़ने की जुगत में उसकी हथेलियों में भर-भर आ थी। बुक्का फाड़कर आँगन के बीचोंबीच तक दौड़कर आ चुकी थी रामप्यारी कि तभी सास ने पकड़कर नल के नीचे बैठा दिया था, एक घंटे बाद वहाँ से उठी तो सारे गुड़हल भीगकर न जाने कहाँ पिघल चुके थे बस रह ग थीं तो कुछ कलियाँ जो हर माह बेसब्री होकर खिल आया करती थीं, सासु माँ कहती,

''मरी ये कलियाँ ही तो होती हैं जो पेट की न जाने किस खोह में महीने भर पकती हैं फिर एक रोज मौका देखकर खिल जाया करती हैं, इनसे प्रेम करना सीख, इस दर्द में भी एक मीठी-सी कसक है पगली''

''मीठी-सी कसक ...सो कैसे ? मुझे तो दर्द महसूस होता है'' रामप्यारी की समझ के बाहर था कि क्यों हर माह उसकी कमर, पेट और सीने में खिलती अधकच्ची कलियों में सिहरन भरा दर्द उभरने लगा था। उम्र जब सीढ़ियाँ चढ़ने लगी तो हर माह में उम्र एक निश्चित सीढ़ी पर आकर रूकती और रामप्यारी को परिपक्वता का सबक सिखाती चली जाती थी। पल्लू में उभार आया तब तक रामप्यारी का दिमाग भी स्त्री देह की सभी अनकही बातें समझने लगा था। न सास को कुछ समझाने की जरूरत पड़ी न रामप्यारी को कुछ समझने की। कुछ भी कहो रामप्यारी को मासिक धर्म के उन पाँच दिनों का साथ बड़ा सुहाता था जब वह घर के एक कोने में ही सही किन्तु चुपचाप पड़ी अपनी बकाया नींद निबटाती थी, काँच की बोतल में गरम पानी भरकर वह देह की दुखती रगों की टीसें निबटाती रामप्यारी को ये दूर बैठना सुहाता तो न था पर आराम के उन दिनों में वह स्वयं के बेहद करीब होती थी। उसे दुख होता था तो सिर्फ एक ही बात का उन खास दिनों में वह अपने कान्हा के भी दर्शनों से वंचित हो जाती थी। रामप्यारी की खिड़की से लगकर झूलता कदम का बड़ा-सा पेड़ जिस पर रोज कोयल कूकती तो प्रतीत होता जैसे बरसों की आतुरता उसके हृदय को मथे जा रही हो, कभी-कभी तो उस कोयल को भरी दुपहरी धुनकी चढ़जाती। रामप्यारी दीवान फर्लांग कर खिड़की के किनारे खड़ी हो जाती और पत्तों से आच्छादित उस कदम की शाखों पर कहीं छिपी बैठी उस कोयल को ढूँढती

रहती फिर थक-हार कर वहीं दीवान पर ढह जाती। उसी अवस्था में पड़े-पड़े वह दीवान के मसनद में नाक गड़ाए देर तक लंबी-लंबी साँसे लेती रहती,

''क्या कर रही हो बहुरानी ?'' सास उसकी अजीब अवस्था को रंगे हाथों पकड़ ग थीं क बार,

''अ...अ....वह मैं तो ...'' कुछ जवाब देते न बनता तो वह हकलाने लगती थी,

''कुछ कहने की जरूरत नाए, हमऊँ सब समझत रहे''

''व्हो तो...व्हो तो मैं थककर यही लेट गई थी,

''बबुआ के बिस्तर में ? जवानी हमपर तो जैसन फूटी ही नाभ कभी ?''

''ऐसी बात नहीं है सासु माँ, व्हो तो मैं जांच रही थी की जे कौनसा इत्तर लगाने लगे हैं आजकल''

''हम्म...'' सास को मुसकुराता देख रामप्यारी शरमा गई थी, ''और वह कोयल क्या कह रही थी तुझसे ?'' सासु माँ रामप्यारी से चुहल करने लगी थीं, ''धत्त सासु माँ...आप भी हमें खींच रही हों अब''

''नहीं बहुरानी जेसन हमने ना देखें या दिन ? हम सब जानत हैं, यही तो है जो मीठी-सी कसक होती है, देह की कच्ची कलियाँ, इनकी कसक के सहारे ही तो फलती-फूलती हैं देह फिर मौका पाकर चटकती है और अपनी खुशबू से हमारा आँचल भर देती हैं''

''धत्त ..'' रामप्यारी लजा जाती और अंगियां को कसते हुए आँगन में चल देती,

''नया को गुल खिलाएगी,नया को गुल खिलाएगी तेरे-मेरे मिलन की ये रैना'' रामप्यारी गीत गुनगुनाती हु अलगनी पर सूख आए कपड़ों को तह कर रही थी, उधर सासु माँ लगातार मुस्कुराए जा रही थी, ''सासु माँ आज काहे इतनी मुलक रही हों ?''

''क्योंकि बबुआ दूजे गाँव से आज ही लौट रहा है, वैसे मैं भी ये जानना चाहूँ कि तू जो इतना क्यूँ चहक रही है ?''

''व्हो कुछ नहीं....बस जे आ रहे हैं सो मन प्रसन्न है आज, आप भी तो बार-बार अपनी गीली हो आ आँखें पोंछ लेती हो, सो क्या है भला ?'' एक तरफ माँ को बेटे के लौटने की आस है तो दूसरी तरफ न -नवेली बहू को अपने सुहाग का इंतजार'' रामप्यारी अपनी सासु माँ के गले लग जाती है, देर तक हृदय से मिला हृदय यूँ ही अपनी छाती की तपिस से एक-दूजे की भावनाओं को सहलाता रहता है।

''आज जरा ढंग से तैयार हो, कजरा, टीका-टमकी, आलता, गजरा और वही इत्तर भी छिड़क ले जो बबुआ को परसन है''

''धत्त...का कहती हो सासु माँ ?''

''जैसन हम जानत नहीं रहीं कि बबुआ के दीवान पर धरे मसनद में तुम क्या खोज रही थीं ?''

''क्या सासु माँ तुम भी छेर रही हमें''

''देख बहुरिया किशन लाल शहर से पढ़-लिखकर लौट रहें हैं अब उनके खाने-पीने, आराम और तमाम सुख-सुविधाओं का ध्यान रखना तुम्हारा कर्तव्य है। अब तुम बीबी का धर्म पालो, बच्चे पैदा करो और हम सब की सेवा करों। इसी में स्त्री का सुरग है समझीं कुछ ?''। सुबह-सुबह उठकर मंदिर की सफा करके पूजा-पाठ कर लिया करो और मैके की मूरत को भी वहीं स्थापित कर दो, नाते-रिश्तेदार देखते हैं तो हँसते है तुम्हारे बालपने पर।''रामप्यारी को सासु माँ की सारी बात पसंद आ गई थीं किन्तु अपने कान्हा की मूरत को अपने से दूर करना उसको जरा खला था, जाहिर में वे सिर्फ यही बोली थी,

''चौदह की उमिर है सासु माँ हमारी, हम सब समझतीं हैं, घर में अम्मा-बापू को भी यही लगता था कि हम बड़ी हो गईं हैं सो हमारा ब्याह कर दिया, हम बड़ी है सब समझ गईं'' सासु माँ अपनी छोटी-सी बहुरिया की बड़ी-बड़ी बातें सुनकर हैरान थीं पर उसकी समझदारी से प्रभावित भी हो रही थी। रामप्यारी ने घर की जिम्मेदारी इतनी भली-भांति ओढ़ली थी कि सबसे छोटी होते हुए भी वह घर में सबकी बड़ी बहु और चहेती भी बन चुकी थी, विदा में नानी ने आशीर्वाद के साथ-साथ कान में फुसफुसाया था,

''लाडो ससुराल में काम से सबका मन जीत लेना, ससुराल में इंसान की नहीं उसके काम की कदर होती है'' बस नानी की उसी युक्ति को रामप्यारी ने अपने जीवन का मूल मंत्र बना लिया था। घर के काम-काज के बाद पति के पहलू से लगी रामप्यारी के सबसे खुशनुमा क्षण बस यही तो होते थे। पंद्रह की उम्र में रामप्यारी ने मुरारी को जन्म दिया था। पुत्ररत्न ने उसे ससुराल की आंखो का तारा बना दिया था। रामप्यारी सोचती कि क्या होता जो वह एक बेटी को जन्म देती ? क्या तब भी सब उसे इसी तरह स्नेह और आदर देते ? शायद नहीं ...खैर रामप्यारी वह सब सोचना नहीं चाहती। वह तो इस धरती और उस आकाश की तमाम खुशियाँ अपने आँचल में भर लेना चाहती थी, वह खुशी में झूमना चाहती थी और कंठ भर-भर के संगीत उड़ेलना चाहती थी। जब वह ऐसा कर नहीं पाती थी तो सारी इच्छाएँ अपने बेटे की गतिविधियों में जीती थी। खिलाती तो मनुहार भरा गीत गाती, नहलाती तो खिलखिलाकर गाती, जब आँगन में सरमा खेलने दौड़ता तो वह उसकी पायलों के लटकते बूंदो में अपने ख्वाबों को पिरो देती और देर तक उनकी रूनझुन सुनती रहती ...शाम के धुँधलके में जब लोरी गुनगुनाती तो आसमानी ताकतों से तारें बटोर लाती और चाँद को तरसा-तरसाकर अपने लल्ला के इर्दगिर्द अंधियारी की चादर लपेट देती। लोरी गाती तो फिर यूँ गाती कि सारा घर सोया रहता और वह गुनगुनाती ही रह जाती। मुरारी उसका नंदलाल बन गया था अब और वह उसकी जसोदा मैया।

वक्त बीतते-बीतते गोविंदा उसकी गोदी में आ गया था, रामप्यारी की खुशियाँ अब जिम्मेदारी के बोझ से कुछ और दुहरी हो चली थी,

''क्या स्त्री का सुरग है नानी ? तुम जो कहती थीं मुझे अपने आशीर्वाद के साथ ? एक नन्हें से आशीर्वाद के साथ-साथ तुम कितनी बड़ी सख्त युक्ति मेरे कान में फुसफुसा ग थीं, मैं न जानती थी कि तुम्हारे फुसफुसाए उस युक्ति मंत्र को निभाते-निभाते जिम्मेदारी से मेरी कमर का दर्द, पिंडलियों की गाँठें, सीने में सख्ती, और आवाज में कर्कश खराश उतर आएगी और मैं बुढ़ाते-बुढ़ाते ढह जाऊँगी ? नानी ये सुरग हम औरतों को ही क्यों मिलता है ? तो क्यों न हम नरक की सीढ़ियाँ चढ़े ? कम-अज-कम जिंदगी हम अपनी मर्जी से तो जी ले ?'' रामप्यारी सिसकने लगी थी, देह के कोने-कोने में छिपी न जाने कौनसी-कौनसी नसें कसकने लगी थीं मगर उसके सारे सवाल निरूत्तर थे...ये वही सदियों पुराने प्रश्न थे जिन्हें हवा में त्रिशंकु बनकर लटकाने का श्राप मिला था, वे शापित हैं, उनका निररूत्तर रहना ही नियति है और इसी नियति में औरतों की किस्मत का फैसला भी शामिल होता है।

रामप्यारी को पति किशनलाल का भरपूर प्रेम नसीब था, रामप्यारी को पति से कोई शिकवा था न ही किशनलाल को रामप्यारी से कोई गिला। दोनों बच्चों की उम्र के साथ-साथ रामप्यारी और किशन लाल के बालों में भी सफेदी उतरने लगी थी, किशनलाल कहता - ''रामप्यारी तुम तो इन बच्चों की बहुओं और पोते-पोतियों में खप जाओगी मगर मेरा बुढ़ापा कैसे कटेगा ?''

''तुम भगवान से दिल लगाना, उन्हीं की सेवा में अपना सुकून तलाशना'' ''वाह जी हम बुढ़ा जाएंगे और तुम क्या हमेशा ही छड़ी-छाँट बनी रहोगी ?'' किशन लाल और रामप्यारी की चुहलबाजी के बीच कौन जानता था कि एक रोज किशन लाल गहरी नींद में ही भगवान से अपने मन के तार जोड़ बैठेगा और सबकुछ छोड़-छाड़कर बड़े सुकून से चिरनिद्रा में समा जाएगा।

''पेंशन बंध जाएगी'' मातमपुरसी करने आए लोगों में से न जाने कौन बोला था, ''हाँ ...बच्चे तो पल ही गए है, बस तनिक और रूक जाते तो उनकी ब्याह-शादी भी देख जाते''

''होने के काम सब होते है भाइयों, जाने वालों को कौन रोक सकता है''

''पीले पत्ते झड़ते हैं तो दुख नहीं होता क्योंकि यही प्रकृति का नियम है किन्तु किशन लाल की अभी उम्र ही क्या थी ?''

''सो तो है ..कभी-कभी तेज आंधियों के थपेड़े पके पत्तों के साथ-साथ असमय हरे पत्तों को भी उड़ा ले जाते हैं''

बारह दिवस जमीन पर चटा डालकर पड़े-पड़े रामप्यारी की कमर ही अकड़ने लगी थी, शिकायत करती भी तो किससे ? पति भी तो उसी का गुजरा था अब इतना तो सहन करना ही पड़ता। उबली सब्जियाँ और सूखी रोटी खा-खाकर उसके मुँह का स्वाद ही उसे पराया सा लगने लगा था, सफेद रंग तो उसका चलो फिर भी पसंद का था। सोने की चूड़ियाँ उसने खुद ही उतारकर बेटों के सुपुर्द कर दी थी। रामप्यारी को एकाकीपन खलने लगा था, उसने बरसों बाद कान्हा की मूर्ति को मंदिर से लाकर पुनः अपने कमरे में सजा लिया था साथ ही चन्दन का टीका भी...नियति को सहजता से मंजूर करना औरतों की आदत न सही मजबूरी भी नहीं होती, दरअसल इस सहजता के कारण तो वह चारदीवारी में रहते हुए भी अपने जीने की हजार-हजार वजहें तलाश लेती हैं। कान्हा को नहलाना उनके कपडे बदलना, हार-श्रृंगार करना, भोग चढ़ाना और भजन गाना। यही तो विधवा जीवन जीने की वे वजहें थीं जो रामप्यारी को अपने घर के पुरखों से वसीयत में मिली थी जिनके द्वारा उसका बाकी जीवन आसान होने वाला था, ठीक वैसा ही जैसा उसके घर की बड़ी-बूढियों का बीता था बहाने-बहाने से,''हाँ ओर नी तो क्या ? कान्हा खाएँ पूरी-हलवा और उन्हीं का झूठन छूटी थाली में हमऊं रोज खाएँ छप्पन भोग हेहेहेहे'' बाल विधवा हु बुआ बचपन से ही ये सारी चालाकियाँ सीख ग थी, ''हाय बुआ तुम तो बे मानी कर रही हों'' ''अरी चप्प लरकी का कह रही हों ?...हरे कृष्णा-हरे कृष्णा ...इसे बे मानी ना कहते हैं, इसे कहते हैं पूजा-पाठ, सेवा और आदर भाव समझी'' बुआ कानों को छूकर भगवान् से माफी मांगते हुए धीमी आवाज में उसे डाँटते हुए बोली थीं।

रामप्यारी ने पेंशन सँभाली और पेंशन ने बच्चों को और कुछ यूँ गुजर-बसर होने लगी थी उसकी जिंदगी, आँगन में पुराना पीपल जब-जब अपनी पीले पत्ते झाड़ता तब-तब रामप्यारी भी अपनी उम्र में से एक बरस उतारकर घर के पिछवाड़े टांग आती थी। मौसम की आहट बदलते ही आम पर जब भी पहला बौर खिलता तो रामप्यारी अपने अनुभवों की ओढ़नी से अपने-आपको कसकर लपेटती चली गई थी। बरस-दर-बरस बीते फिर रामप्यारी के कमरे की सफेद बत्ती बदलकर पीले लट्टू में परिवर्तित हो गई थी बल्कि संध्या ढलने से बहुत पहले ही उसके कमरे की बत्तियां बुझने भी लगी थी और कई दफे तो यूँ भी होता था कि रामप्यारी खटिया से उठती ही नहीं थी तो उसका कमरा अंधियारे की स्याह चादर ओढ़े उसके साथ-साथ ही गहरी नींद में जज्ब हो जाता था। घर में उसकी याद कभी किसी को आती या नई आती थी पर कान्हा उसे सुबह-शाम याद दिला ही देते थे कि रामप्यारी के बिना उनके सामने घी का दीपक भी जलाने कोई नहीं आता। रामप्यारी की व्यथा उस घर में कोई समझता था तो वह एक बस उसके कान्हा ही थे।एक रोज रामप्यारी पर चढ़ आई असमय पकी उम्र के उन सलेटी बालों पर बड़ी बहु की नजर पड़ गयी थी, जूड़े में खोंसी चांदी की पिन उसे कुछ यूँ रास आ गई कि वह पति से जिद कर बैठी कि चाहिए तो बस वही पिन चाहिए जो अम्मा के जुड़े में अटकी है। छोटी बहु को बड़की की वह जिद चुभी थी, जिद ही जिद में वह भी ढीठता पर उतर आ थी व अपनी बात मनवाने पर उतर आई थी। उसकी नजर तो कब से अम्मा के पैर में पड़े चांदी के कड़ों पर गढ़ी थी। घर की शांति बनाए रखने के लिए अम्मा ने बिना किसी ना-नुकुर किए अपने सबसे प्रिय गहने दोनों बहुओं के हाथों में सौंप दिए थे, वैसे भी यही दो चीजे थीं जिनके प्रति उनका मोह छूटता नई था, विधवा होने के बाद भी वह इन दो चीजों को अपने से विलग नहीं कर पाई थी किन्तु बहुओं की जिद के आगे उसने अपने मोह को तिलांजलि दे दी थी।

घर की बहुएँ नए जमाने की पढ़ी-लिखी लड़कियां थीं वे न कान्हा के भोग के लिए रसोई निकालती न अम्मा को इस बहाने पहले-पहल भोजन परोसा जाता। दिन चढ़े तक अम्मा चाय-ब्यालू को तरसती बैठी रहती फिर आवाजें देने पर नाश्ते का प्रबंध किया जाता, धीरे-धीरे अम्मा की आवाज क्षीण होती चली गई और घर की दीवारों ने अपने कानों को अपनी हथेलियों से ढांप लिया ....बस तभी से उस घर की दीवारों के कान नहीं रहे न ही उसमें बसने वाले लोगों के भी, रामप्यारी की आवाज उसके कमरे के भीतर दफन होने लगी थी और साथ-साथ रामप्यारी भी। बहुओं को अम्मा की रत्ती भर भी पड़ी नहीं थी वह तो दोनों बेटे ही थे जो उसे जीवित रखना चाहते थे उसकी जरूरत अब महीने के अंत में ही पड़ती थी। खाते में अम्मा की पेंशन जमा होती तो दोनों भा अम्मा के एटीएम कार्ड से उसे निकाल कर बाँट लिया करते थे, यही फायदा अम्मा की चलती साँसों की किस्त थी। अम्मा सब बूझती थी किन्तु क्या करती ? हाथ-पैर से लाचारी और बच्चों का मोह उसे मौन बनाए रखता था। मुरारी और गोविंदा अपने पिता की टाइप रायटर की दुकान संभालते थे, ''सुबह से शाम टक-टक करते-करते मेरी तो अँगुलियों की बारह बज जाती है भैया'' गोविंदा बड़ी मिन्नतों के बाद बड़े भा के साथ दुकान पर बैठने को राजी हुआ था, अकेले मुरारी से दुकान का काम-काज संभालता न था। उनकी दुकान ''शर्मा टाइप रायटर'' दरबार स्कूल के ठीक सामने थी। उन दिनों वाणिज्य विषय नया-नया सिलेबस में लगाया था सरकारी स्कूलों में, वाणिज्य विषय के छात्र न जाने क्या सोचकर टाइपिंग सीखते थे ? शायद हर माँ-बाप वाणिज्य पढ़ने वाले अपने बच्चों की सूरत में भविष्य के व्यवसायी या व्यापारी बनने का सपना देखते थे। खासकर गर्मियों की छुट्टियों में तो सुबह से शाम तक क -क बेच चलते थे। एक साथ इतने बच्चों को सिखाना मुरारी के लिए मुश्किल था सो उसने गोविंदा को भी जबरन अपने साथ उसी दुकान के कामकाज में शामिल कर लिया था हालांकि गोविंदा को इस काम से सख्त चिढ़थी। वह अपने पुस्तैनी कस्बे से निकलकर किसी बड़े शहर में बसना चाहता था पर मुरारी ने उसकी मंशा पहले ही भाँप ली थी, वह कहते हैं न मस्ताते सांड को जकड़ना हो तो खूँटे से बाँध देना चाहिए सो मुरारी ने ग्यारवीं पास करते ही गोविंदा का ब्याह करवा दिया था। घर-गृहस्थी की रस्साकशी और जवान बीबी के मोहपाश में जकड़ा गोविंदा अपने सपनों को भूलकर पेट की अग्नि को शांत करने की जुगत में जुट गया था। मुरारी का प्लान काम कर गया था, गोविंदा दुकान पर टाइपिंग सिखाने में मुरारी की मदद करने लग गया था। हालांकि माँग बढ़ने के साथ पूर्ती भी बढ़ने लगती है उसी तर्ज पर मोहल्ले में टाइप राइटिंग सिखाने की क सारी और दुकाने खुल चुकी थीं, वैसे भी मुरारी और गोविंदा की दूकान पर पड़े पुराने टाइप रायटरों की स्थिति देखकर छात्र न दुकानों का रूख करने लगे थे। ऐसे में दोनों भा किसी तरह गुजारे भर की आमदनी कमा ही लिया करते थे किन्तु बढती महँगा में परिवार के सदस्यों की सभी आवश्यकताएँ पूरी करते-करते दोनों भाइयों में भी खींचातानी होने लगी थी जो कभी-कभार खुलकर सामने भी आने लगी थी। बदलते हालातों में दोनों भा दुकान-मकान और संपत्ति के बँटवारे क बातें भी सोचने लगे थे। इस कशमकश के बीच दोनों भाइयों को अपनी माँ की याद महीने की अंतिम तिथि पर तो जरूर आ ही जाती थी। रामप्यारी की उस घर में किसी को जरूरत नहीं थी, हाँ मगर उसका होना फिर भी सबके लिए जरूरी हो चला था। भयंकर बारिश में टपकती छत से सीली हो

उठी दीवारें जब ठंड से सिकुड़ने लगती है तो अपने भीतर जज्ब हो चुकी कांपती नमी से बचने के लिए किसी बाहरी आवरण की तलाश करती हैं। अम्मा की स्थिति उस घर के कबाड़खाने में पड़े उसी फटे-टूटे त्रिपाल की मानिंद हो चुकी थी जिसे जरूरत पड़ने पर रफू करके घर की निरंतर कमजोर होती आर्थिक स्थिति पर तान दिया जाता था और जरूरत खत्म होने के बाद फिर उसी अँधेरे कबाड़खाने में पटक दिया जाता था। अम्मा ने एक भरी-पूरी उम्र गुजारी थी, वह अपने अनुभवों की पकी रोटी को ठंडा कर-करके टुकड़ा-टुकड़ा चबा रही थी ताकि आँतों की आंतरिक कुलबुलाहट को शांत करके किसी तरह अपने दिन काट सके। वह दिन-रात बस कान्हा से ही शिकायत करती और गाती रहती, गला अब भर-भर आता है उसका, आवाज भर्रा जाती है फिर भी वह निरंतर गुनगुनाती रहती,

मोरे कान्हा लगाओ बेड़ा पार रे
जीवन नैया बिना पतवार रे,
रास रचाते हो गोपियों के सँग में
काहे हमसे ही करो हो तकरार रे ?
मोरे कान्हा...मोरे कान्हा।

रामप्यारी दिन-रात गुनगुनाती हुई कान्हा से मिलन की कामना करती थी, बहुएँ कहती हैं,

''अम्मा पगला गयीं, कान्हा भरी जवानी ना आए इन्हें सँभालने तो अब इन बूढ़ी हड्डियों को पार लगाने क्या आवेंगें ?''

''ना जिज्जी ऐसा ना बोलो, भगवान् ना जाने किस रूप में दरसन दे देवें किसी पतों है ?'' छुटकी बहु को भगवान का डर है,

''चल तू अभी नादान है पगली, सारी जिंदगी अम्मा भगवान के नाम पर रसो का पहला भोग जीमती रहीं, क्या तुम नहीं समझती ये सब ?''

''हांय...ये चालाकी तो हम बूझ ही नहीं पाईं'' छूटकी वाक इस सब से अनजान थी, ''अब इत्ती भी भोली न बनों, दो बच्चन की अम्मा हो गयीं हों तुम भी अब'' जिठानी की लताड़ पर छुटकी चुप नहीं रहती वह जिठानी के मुँह लगने लगती है, ''अब तुम्हारी जैसी चालाकी तो आते-आते ही आवेगी ना जिज्जी'' वह हँसती है तो जिठानी आँखें तरेरकर उसे कहती, ''हम्म...अब अम्मा का फायदा हम ही तो नहीं लेते अकेले ? तुम लोग भी तो आधी तनख्वाह बंटवाते हो हर महिना'' ''चलो जाने दो जिज्जी...अम्मा बनी रहें इतनी सेवा तो हमें करनी ही चाहिए उनकी'' छुटकी के तर्क में दम था सो बड़की हाँ में हाँ मिलाने लगती है, ''हाँ ..अभी उसी रोज भागी जा रही थीं, तुम्हारे जेठजी टेशन से पकड़कर लाए बड़ी मशक्कत से'' ''लाए क्या ? बस यूँ कहों कि रिक्शा में भर लाए वर्ना वे तो चल ही दी थीं जिज्जी'' ''जानती नहीं कि वहाँ साथिनों की क्या दुर्गति होती है''

''कहाँ जाना चाह रहीं थीं वे ? द्वारिका ?''

''अरी नहीं रे पगली, द्वारिका में को ठौर नहीं है विधवाओं का, जे तो जाना माँग रहीं हैं पुरी धाम'' ''जंन्नाथ पुरी ?''

''हाँ जगन्नाथ पुरी...सुना है वहीं विधवाओं को आसरा है, हजारों-हजार विधवाएँ पल रही हैं वहाँ, मिट्टी के लोटे में उबला भात खाकर उम्र गुजार रही हैं बेवाएँ''

''तुम्हें कैसे पता जिज्जी ? छुटकी बहु हैरत से पूछती है,

''बचपन में जाना हुआ था मेरा एक दफे, मंदिर के पंडे एक बड़े से बाँस की खपच्ची से न जाने क्या सिर पर टक-टक मारते हैं'' ''वे भांपते होंगें जिज्जी कि किस दिमाग के भीतर कित्ता भेजा है या कि कित्ते खाली खोपड़ी लिए वहाँ चले आ रहे हैं'' छुटकी की ठिठोली पर बड़ी बहु चिढ़ उठती है, ''चप्प...ऐसा न है, वे उनका आशीर्वाद देने का तरीका होवे है पगली, कभी जाओ तो देखो, क्या बेकद्री है वहाँ ? घर से भाग आ या फिर समाज से दुत्कारी गयीं विधवाओं की...खासकर बाल विधवाएँ, ना घर की न घाट की...ना विधवा ना सुहागिन, बस दासियाँ होकर जिनगी काट रही हैं''

''जिज्जी पर अम्मा को क्या डर अब इस उम्र में ? वे करेंगी क्या वहाँ जाकर ?'' ''जाएँगी और उबला भात खाएँगी ? यहाँ हमपे एतबार ना है उनकों ? अरे उनकी औलादें हैं हम अगर उनका पैसा खा भी लेंगें तो को गजब हो जाएगा ? आखिर हमारा भी को हक है कि नहीं उनके पैसों पर ? उनके बाद हमें ही तो मिलेगा सब''

''जिज्जी तुम तो अभी से ही हक जमाने लगी हो''

''क्यों रे छुटकी तू क्या कम निकली ? अम्मा के पैर के कड़े हजम कर गई जैसे हमें कुछ खबर ही नहीं''

''अब जिज्जी बाँट-चूंट कर खाना और बैकुंठ में जाना''

''ऊंह ...हमने तो अम्मा की इत्ती-सी जूड़े की पिन ली थी, तुम तो बड़े भारी चांदी के कड़े डकार गयीं''

''चलो जिज्जी जैसे हम जानतीं नहीं, तीन पिनें थी एक गुच्छे में। एक दांत कुरेदने की, दुसरी कान का मैल निकालने की और तीसरी बालों की''

''अब रहने दे क्यों बात बढ़ा रही छोटी, अब हम दोनों मिल-बैठकर हिसाब कर लेती हैं कि कौन क्या लेगा ? देवर जी और तेरे जेठजी को भी बिठा लेते हैं साथ में, अब पहली फुर्सत में यही करना होगा''

''जिज्जी एक बात सुन लो वह अम्मा के चांदी वाले कान्हा तो हम ही लेंगीं जो अम्मा अपने मैके से ला थीं''

''ले-ले तू ही ले लेना, वैसे भी उसे अम्मा से माँगना अपनी सिर कुटा करना है सो तू ही कर लेना बहन'' बड़ी बहु किसी झंझट में नहीं पड़ना चाहती थी, ''और अम्मा के खाते के कागजात तो तुम्हीं रखकर बैठी हो जिज्जी, हमें भी तो बताओ कि कितना पैसा इकठ्ठा है उसमें ?''

''देख लियो बहन, पुराना कुछ पड़ा होगा अगर, बाकी पेंशन तो हम बाँट ही लेवें हैं हर माह आधा-आधा'' ''अम्मा का खर्चा तो अम्मा के पैसों से ही उठ जाता है, आर्थिक रूप से तो अबतक तो बोझ न बनीं वे हम पर भविष्य में बीमार वगैरह पड़ गयीं तो देख लेवेंगें, सहेगें बोझ आधा-आधा'' छुटकी हमेशा फैसले पर आ जाती है, शायद कम उम्र की जल्दबाजी उसकी बातों में भी उभर आती हैं किन्तु वह एकतरफा कभी नहीं सोचती, उसके फैसले में अम्मा को लेकर एक नर्म रूख हमेशा झलकता था जबकि इसके उलट बड़की बहु कुछ सख्ती से पेश आती थीं अम्मा के मामले में।

मुरारी और गोविंदा दुकान से लौटकर दोनों औरतों की आपसी उठा-पटक सुन रहे थे, दोनों भा चुपचाप इस स्थिति का माजरा ले रहे थे। उनके दिमाग की खुराफातों को औरतों की प्लानिंग ने और पुख्ता बना दिया था। गोविंदा ने मुरारी से की तरफ एक अहम् प्रश्न उछाला था।

''अम्मा किसके पाले में आएँगी ?''

''तुम्हें हमेशा अम्मा ने मुझसे ज्यादा प्रेम दिया है'' मुरारी अम्मा की प्रेम तराजू में अपने पलड़े को तौलने लगा था, ''किन्तु तुम घर के बड़े बेटे हो ये तुम्हारी जिम्मेदारी बनती है''

''आज के जमाने में ये सब फालतू की बातें हैं'' मुरारी ने अपने विचारों का आधुनिक रूप गोविंदा के समक्ष रखा था, ''सोच लो समाज क्या कहेगा ? पापा के मरने पर घर के मुखिया होने का जिम्मा उनकी पगड़ी के रूप में तुम्हें ही पहनाया गया था'' गोविंदा के तर्क में चालाकी थी, ''सबकुछ आधा-आधा है तो अम्मा भी बाँट ली जाएँगी, छह महीने हमारे साथ और छह महीने तुम्हारे संग रहेंगी''

''मंजूर है हमें'' गोविंदा अपने सहमती में सिर हिलाते हुए अम्मा के दरवाजे की ओर देखने लगा जहाँ से अम्मा के कान्हा को टेरने की अटूट ध्वनि सुना दे रही थी, ''जे अम्मा का सिर भी नहीं दुखता क्या, कसम से हमारा माथा घूमने लगता है, घर पहुँचकर भी शांति न मिले तो दिन भर का थका-हारा आदमी जाए तो जाए कहाँ ?'' गोविंदा जोर-जोर से पैर पटकते हुए अपने कमरे की तरफ चल दिया था, उसके पीछे-पीछे उसकी बीबी भी भीतर दौड़ ग थी, ''रास-लीला तो इन दोनों को रचानी है और नाम अम्मा का लेकर देखो कैसे लोग-लुगा दिन-दहाड़े कमरे में बंद हो लिए, तुम भी सीखो कुछ ...'' बड़ी बहु मुरारी की तरफ आँख मारते हुए मुस्कुरा थी, ''चुहल आ रही तुमको, चलो नहाने का पानी गरम करके हमारा सिर धुलवा दो'' ''हाँ-हाँ जैसे हम समझती नहीं ? तुम्हारे ये चोंचले भी, वैसे ही तो हैं बहाने-बहाने से हमें सताने के, सिर धुलवाने के बहाने हमें....''

''अरे-अरे श....श...कुछ तो शर्म-हया रखो अब हम वह पहले वाले छोरे ना रहे और ना ही तुम न -नवेली छोरी'' मुरारी को अपने पुराने दिन याद हो आए थे, किन्तु बँटवारे और अम्मा का मसला उसके दिमाग में अब भी हावी था, अम्मा के पास गहने तो और होने चाहिए, कहीं ऐसा ना हो कि वह छुटके के प्रेम में उसे ही सारा ढंका-छिपा धन या गहने सपि दें ? को तरकीब तो चलानी पड़ेगी...क्यों ना अम्मा का बंटवारा ना किया जाए और पूरे बारह महीने अपने ही पास रख लिया जाए ? कम-अज-कम गहने की पोटली हाथ आने तक तो ये रस्म निभा ही जा सकती है, बाद में अम्मा की छह-छह महीने की किस्त बाँध लेंगें, ''क्यों जी क्या गुसलखाने में ही सो गए क्या ?'' बाहर से मुरारी की घरवाली सांकल पीटने लगी तो उसे ख्याल आया कि वह करीब एक घंटे से अपने ही विचारों में खोया बैठा था, पानी कब का ठंडा हो चुका था, उसने दो-चार लोटे उड़ेले और बाहर निकल आया था,दरअसल इन दो-चार लोटों में भरकर जल ही नहीं उसने वे विचार भी प्रवाहित कर लिए थे जो उसके दिमाग में फिलवक्त पनपे थे ...दृढ़निश्चय अब उसका सुकून बन चुका था। उसकी आँखे भारी होने लगी थी। उस रात वह जल्दी और गहरी नींद सोना चाहता था।

अगली सुबह कुछ अधिक ही नमी समेटे उगी थी, सूरज था कि निकलता ही नहीं था, हाँ...उसके चारों ओर लाल, पीले और नारंगी रंग के धधकती आभा से जान पड़ता था कि वहीं कहीं बादलों के पीछे से उकस के अभी हाल सूरज बाहर आकर झाँकेगा और जग पर छाए अंधियारे को परे धकेलकर कहेगा कि दूर हटाओ ये उदासी अरे...चलो देखो कि दिन चढ़आया है। बच्चे तैयार होकर स्कूल जा चुके थे, सबने नाश्ता निबटाकर चाय के झूठे कपों की मानिंद अपने-अपने हिस्से की चिंताएं भी आँगन पर रख दी थी, मुरारी और गोविंदा दुकान जा चुके थे। बहुए कपड़ों को पछीटते हुए आपस में रोजमर्रा की तरह बतियाने लगी थी,''अम्मा अभी तलक उठी नहीं आज ?''

''ना कान्हा-कान्हा की टेर ना उपरवाले से को शिकवा ना शिकायतें ?''

''तुमने चाय-नाश्ता तो पहुँचा दिया था न छुटकी ?''

''अ...अ... उ मोरी अम्मा मैं तो बिलकुल भूल ही गई जिज्जी'' छुटकी चिहुंकी तो किन्तु दोनों ही साथ में हाथ से धोंकना और पछीटे कपडे फेंककर एकसाथ भागी। बारह बजे और अम्मा की आवाज भी नहीं ? अजीब सन्नाटा कमरे के बाहर तक आकर फैला पड़ा था। दरवाजे को छूने भर से ही वह एक ओर लुढ़क गया था, भीतर अम्मा की सूनी खटिया त्योरियाँ चढ़ाए दोनों बहुओं की ओर ताक रही थी, दीवारों की भौहों पर रात भर का क्रोध जागकर अकड़ा पड़ा था।

''उई अम्मा जे क्या है जिज्जी ?''

फर्श में यहाँ से वहाँ सिन्दूर फैला पड़ा था मानो किसी ने सिन्दूर से होली खेली हो,

''अम्मा ओ अम्मा ....यहाँ तो को भी नहीं है जिज्जी''

''अम्मा के कान्हा भी गायब है छुटकी और वह देखो... उस संदूक का ताला भी खुला पड़ा है'' बडकी बहु के चेहरे से हवाइयाँ उड़ने लगी थी अब। बहुओं ने मुरारी और गोविंदा को बुलवा भेजा था।

''जांगे एक दिन तो हम जरूर जा के रहेंगे, देख लियो भैया, तुम सभी को सोते में छोर के कट लेंगे'' मुरारी के दिमाग में हथोड़े चलने लगे थे, हो न हो अम्मा पुरी गयीं होंगी, कागजात गहना-गाँठा सब गायब है, कहीं इसमें गोविंदा क को चाल तो नहीं ? तमाम सवालों से मन ही मन जूझते हुए उसने गोविंदा के साथ पुरी जाकर एक-एक धर्मशाला खँगाल डाली थी किन्तु अम्मा का कहीं को अता-पता न चला था। थक-हारकर वे दोनों घर लौट आए थे। दिन बीते, महीने बीते फिर एक रोज एक बेनामी पत्र ने उनके द्वार पर दस्तक दी थी, ''हमऊ ठीक हैं, अपना गुजारा खुद चलाना सीख ही लिया होगा अब तक तुम दोनों ने, हमने सारा रूपया-पैसा धर्मशाला में दान देकर अपने बचे-खुचे जीवन के लिए एक कमरे का इंतजाम कर लिया है। बच्चों को बहुत प्यार, छुट्टियों में उन्हें यहाँ लाना कभी। एक साथिन की कहानी सुनानी है।

साथिन कृष्णाप्यारी।

23/97 'आर्ष' स्वर्ण पथ, मानसरोवर
जयपुर 302020
मोबाइल -09824160612

समावर्तन की वार्षिक सदस्यता हेतु

- समावर्तन की वार्षिक सदस्यता ग्रहण करने हेतु रूपये 600/- (व्यक्तिगत सदस्यता) तथा रूपये 1500/- (संस्थागत सदस्यता) हेतु नियत है जो मनिआर्डर से अथवा चेक से भेजे जा सकते हैं। चेक पर केवल 'समावर्तन' लिखना होगा। चेक और मनिआर्डर डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य, माधवी, 129, दशहरा मैदान, उज्जैन 456010 के पते पर भेजना होगा।
- समावर्तन की वार्षिक व्यक्तिगत अथवा संस्थागत सदस्यता का शुल्क डिजिटल माध्यम से भी भुगतान किया जा सकता है। जिसके लिए बैंक डिटेल्स निम्नानुसार है।
  बैंक का नाम - आयडीबीआय, ब्रांच का नाम - फ्रीगंज ब्रांच, उज्जैन, खाता क्रमांक - 0088102000031620,
  आयएफएससी नं.- आयबीकेएल 0000088
- डिजिटल एवं चेक/मनिआर्डर से भुगतान करने पर तदनुसार पत्र द्वारा सूचित करने का कष्ट करें।

संपादक, समावर्तन, उज्जैन - संपर्क - 94259-15010

योगेन्द्रनाथ शुक्ल की तीन लघुकथाएँ

अपने-अपने पैमाने

कितनी धूमधाम से हमने तुम्हारी शादी की थी- क्या इसलिए? बड़ी किस्मत से ऐसा पति मिलता है, फिर वो तुम्हारी कितनी कद्र करता है। बंगला, गाड़ी सब कुछ है उसके पास! बाप-दादाओं की सम्पत्ति अलग...! फिर भी तू कहती है कि मुझे उसके साथ नहीं रहना! तू उसका आकलन किस पैमाने से कर रही?''

''मम्मा! सही बात तो यह है कि वो सब मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता ?''

''...अरे! तो ये बात है! बेटा! सारे जमाने में ऐसा ही तो होता है फिर तुम?''

''आप नहीं समझ सकती ?''

''...अरे बता...मुझे पूरी बात बता! दुनिया में ऐसी कौन सी समस्या है जिसे सुलझाया न जा सके!''

''मम्मा! मैं सारा जीवन अपनी बचपन की सहेली सुषमा के साथ बिताना चाहती हूँ...!''

''...हाय राम! तो...तू...तू! ओफ...!''

आकलन

तेजाजी चौक में जैसे ही नेताजी का भाषण शुरू हुआ, बरगद में रहने वाले दोनों गिरगिट ध्यान से उसे सुनने लगे!

''हम तो फिजूल में बदनाम हैं...रंग बदलने में तो इसने हमें पीछे छोड़ दिया!''

''सचमुच! हम गिरगिट होकर भी गिरगिट को नहीं खाते, लेकिन ये आदमी होकर भी आदमी को खा रहा! कितना खुंखार होता जा रहा है ये? मित्र! अब हम यहाँ सुरक्षित नहीं।''

''...तो फिर हम क्या करें''

''भाग चलो जंगल की ओर...!''

नेताजी का भाषण खतम होने के पहले वे दोनों पलायन कर चुके थे।

पनाह

''तुम सिया हो या सुन्नी ?''

''मियाँ! मैं सच्चा मुसलमान हूँ!''

''...तो फिर क्यों उस काफिर राधेश्याम को पनाह दे रखी है। उसका पूरा कुनबा तुम्हारे यहाँ है।''

''वो मेरा बचपन का दोस्त है...क्या मैं उससे गद्दारी करूँ?''

''समझते क्यों नहीं तुम...! इन लोगों ने कितने जुल्म ढाए है हमारी कौम पर...?''

''क्यों, क्या हम लोगों ने उन पर जुल्म नहीं ढाए?''

''तुम फिजूल में वक्त जाया कर रहे? क्यों नहीं निकाल रहे उन लोगों को?''

''...मैंने, तुम्हें पहले ही कह दिया कि मैं सच्चा मुसलमान हूँ। पाँच समय की नमाज पढ़ने वाला! कुरआन पढ़ने वाला ही नहीं, उसके एक-एक अलफाज़ को समझने वाला...!! तुम अपने मजहब को छोड़ो- दुनिया के किसी भी मजहब में नहीं लिखा कि किसी को पनाह देना गुनाह है...? बताओ...? बताओ..?''

हाथ में हथियार लिये वे सब शायर कुतुबुद्दीन के सामने सिर झुकाए खड़े थे। स

390, सुदामा नगर, अन्नपूर्णा रोड इन्दौर (म.प्र.)
मो.09977547030

कोमल वाधवानी की दो लघुकथाएँ

नंबर वाले ताले

''दीपा के रिश्ते की बात चल रही थी, कहाँ तक पहुँची, तुम्हें पता है?'' गीता ने पूछा।

''मुझे तो बस इतना पता है कि रिश्ता बहुत अमीर घर से था, पर बात आगे कहाँ तक पहुँची, यह नहीं मालूम।'' सरला ने कहा।

''भला क्यों? तुम्हारा बेटा ही तो देखने गया था लड़का। उसने तुम्हें नहीं बनाया?'' गीता ने अगला प्रश्न किया।

''छोड़ो भी इस बात को। सच तो यह है कि ताले की ओरीजनल चाबी खो जाने पर उसकी डुप्लीकेट चाबी बनवाई जा सकती है, किन्तु आजकल जो ताले लोगों ने अपने दिमाग.में लगा रखे हैं, वे कोड नंबर वाले होते हैं और ऐसे नंबरवाले तालों को वे खुद खोलें तो ठीक। हमारे पास वह कोड नम्बर तो है नहीं कि उनके दिमाग.में बंद सूचनाओं को बाहर निकाल सकें।''

लाड़ला

''तुम घर के सबसे छोटे और लाड़ले बेटे थे। तुम्हारे अचानक अलग हो जाने से भैया-भाभी कितने दुःखी हैं? तुम क्या जानो?'' बुआ ने भतीजे से मन का दुखड़ा कह डाला।

''बुआ, कौन कहता है, मैं उनसे दूर हूँ? एक ही तो सोसायटी है स्वर्ण वाटिका...सिर्फ़ कुछ घरों का ही तो फ़ासला है। वे जब चाहें, मेरे यहाँ आ सकते हैं... लेकिन आते नहीं। वैसे भी आजकल कौन साथ रहता है। उन्हें भी तो समझ लेना चाहिए...यह कोई नई बात नहीं। आप बेवजह चिंतित न हों।''

''कहना बहुत आसान है बेटा, सहना मुश्किल। जब तुम पिता बनोगे तो जानोगे।''

''आप मुझ पर बेबुनियाद आरोप लगा रही हैं।''

कहते-कहते उसने जेब से दूरबीन निकाली और बुआ का हाथ खींचकर बालकनी में ले गया, देखो, पापा-मम्मी आराम से चाय पी रहे हैं। विश्वास न हो तो खुद अपनी आँखों से देख लो, वे अपने घर की बालकनी में है या मेरी?'' स

'शिवनंदन' 595 वैशाली नगर उज्जैन-456010
दूरभाष - (0734) 2520001, 2525277

राजकुमार कुम्भज

समय के घूरे पर फेंक देने की सुविधा

अब अदृश्य कुछ नहीं रहा
आर्थिक-आतंक और वित्तीय-प्रलय के बावजूद
समय ने करवट लेना थी/ समय ने करवट ले ली
संसार ने बदलना था/ संसार बदल गया
और ये कहते हुए कि जिंदगी में कभी भी
प्रयोगों से घबराना नहीं चाहिए,
निष्कर्ष आने से पहले ही
कोई भी मनचाहा-अनचाहा निष्कर्ष
कभी भी निकालना नहीं चाहिए,
अंगूर खाने से पहले ही 'अंगूर खट्टा है'
कभी भी कहना नहीं चाहिए
खट्टे अंगूरों को
समय के घूरे पर फेंक देने की सुविधा
हर समय में उपलब्ध है।

सुख में सुख का समय नहीं था

दुःख में ढूंढा सुख
सुख में ढूंढा जीवन-मृत्यु का संशय
संशय में ढूंढा आशय प्रेम का
जनम-मरण का साथ था
जनम-जनम का साथ था
प्रेम नहीं था
एक हथकड़ी थी, पर्वतमालाओं जैसी
दो बूंद झरता झरना नहीं था
समुद्र में बाढ़ थी
पीने के पानी की तंगी थी
हिमनद पिघल रहे थे बड़ी तेज़ रफ्तार
और बड़ी तेज़ रफ्तार आग थी
किजम रही थी बर्फ जैसी सुबह-शाम/ लोगों में
दुःख में ढूंढा सुख
सुख में सुख का समय नहीं था
वहाँ, गाँधीजी थे, जो खा रहे थे गोली
और बोल रहे थे
हे! राम

भयंकर भूतहा

शोक का श्लोक
बहता है रेशे-रेशे में
आग जैसी आदमियत की तरह...
एक चवन्नी में
एक किलो नमक देगी सरकार
जिसकी नहीं साख चवन्नी पर...
बंद है खिड़की दरवाजे सब
एक भयंकर-भूतहा सन्नाटा है चतुर्दिक

सरकारी दमकलें बहा रही है पसीना
बुझाने को चिंगारी

भटकती कविता से बाहर

क्यों बैठी हो चुप
मेरे सिरहाने, रात जैसी तुम
लोकतंत्र का मुस्कुराता मिथक लिए?
क्यों बेशक्ल होती जा रही हैं
वे चीज़ें तक
जो, अभी-अभी,
कल तक भी, थीं
जानी पहचानी ?
भटकती कविता से
बाहर निकल कर देखो तो
बहुत कुछ बदलती है जिंदगी स

331, जवाहर मार्ग, इन्दौर-452002
फोन- 0731-2543380

दिनेश श्रीवास्तव

गायें

हे महामानव
हे अमृत के पुत्रों,

अवसर मिले तो नचिकेता से पूछना
कि क्यों उसके पिता वाजश्रवा
अपनी बूढ़ी, बाँझ, अंधी, और बीमार गायें
दान कर रहे थे.

फिर पूछना हरिशचन्द्र से
कि कैसे अजीगर्त हजार गायों के बदले
अपना बेटा शुनःशेप देने को राजी हो गये थे
बलि के लिए
और फिर राजी हो गए थे
हज़ार गायों के बदले
शुनःशेप की बलि भी देने को,
जिससे कि राजा का बेटा रोहिताश्व जी सके.

फिर पूछना दिलीप से
जिसने नंदिनी को बचाने के लिए
स्वयं को अर्पित कर दिया था,
बेटा पाने के लिए
कभी पूछ लेना विश्वमित्र से
कि कैसे हारे थे एक गाय के हाथों

फिर पूछना कृष्ण से
कि कैसे वे गायों के पीछे पीछे/वन वन भटके
उन्हें बांसुरी सुनाई

पूछना मेरी माँ से
जो सारी जिंदगी
पहली रोटी गाय को देती रही,

पूछना मेरी बुआ से
जो बिदाई के समय
सबसे ज्यादा गाय से लिफ्ट कर रोयीं थी

आज अघ्न्या गायें
शुनःशेप की तरह /बलि के खम्भे से बँधी
चीत्कार कर रही हैं-
मेरी माँ मुझे प्यार नहीं करती
मेरा पिता धन के बदले मुझे बेंच चुका है
मेरा राजा अपना बेटा बचाना चाहता है
और मेरा ईश्वर अपनी तृप्ति-

किस सुन्दर देवता का नाम पुकारूँ
किसे गुहारूँ,
कौन है ऐसा जो मुझे अदिति दे/ बुद्धि दे, शक्ति दे
कि मैं अपने पिता को देख सकूँ/ माँ को देख सकूँ।

इन्हे गाय न कहो
ये वृन्दावन और
काशी की विधवाएँ हैं
ये कामधेनु की पुत्रियां
ये कपिला की बहनें
ये नंदिनी की माताएं
बस दोहन के लिए हैं
बस शोषण के लिए हैं। स

shrivastavdineshkumar@gmail.com
कोलकाता (प.बं.)
मो.919836176868

साहित्य और संस्कृति का साझा सरोकार

'दस्तावेज' का दूसरा दशक

अभिषेक कुमार गौड़

दस्तावेज का दूसरा दशक अंक 39 से 75 तक माना जा सकता है। यह भी संयोग ही है कि अंक 39 महादेवी वर्मा पर केन्द्रित है, तो अंक 75 निराला पर। प्रथम दशक में संपादक की चिंता पत्रिका को स्थापित करने तथा नैतिक तरीके से इसे साहित्यिक पत्रिका बनाने की थी। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी का उद्देश्य 'धंधा' करने का नहीं, बल्कि शब्दों का वह माध्यम तैयार करना था, जो हिंसा का विकल्प बन सके। प्रथम दशक में जिस तरह से दस्तावेज ने राजनीतिक, सामाजिक, आर्थिक विषयों पर बात रखी है, उसमें साहित्यिक पत्रकारिता को एक नया पड़ाव दिया है। इस दशक के कई अंक तो पूरी तरह से संपादक ने अपने जोखिम पर निकाले हैं। एक तरफ जहाँ दस्तावेज ने नये कीर्तिमान स्थापित किये, वहीं संपादक के रूप में विश्वनाथ तिवारी ने एक लंबी लकीर खींच दी है। सीमित संसाधनों तथा गोरखपुर जैसी जगह से पत्रिका निकालकर उन्होंने साहित्यिक पत्रकारिता के लिए जरूरी संघर्ष को लोकतांत्रिक आवाजाही के रास्ते को तैयार किया है।

विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने स्वयं कहा है कि ''दस्तावेज मेरा स्वयं का चुना हुआ कर्म है, अतः उसमें जितना भी संघर्ष झेलना पड़े, मुझे संतोष ही होगा।'' अब तक दस्तावेज ने संघर्ष का ही रास्ता चुना है, आगे इससे ज्यादा और विविध स्तरों पर संघर्ष की गुंजाइश जिंदा रखना जरूरी है। दस्तावेज का अंक 39 महादेवी वर्मा ने छायावादी कविता में अपना विशिष्ट स्थान बनाया है। दस्तावेज की यह लोकतांत्रिक दृष्टि है कि उसने निराला, प्रसाद, पंत के बीच से महादेवी को प्रमुखता दी है। आपातकाल के उत्तर समय में नये-नये विमर्शों का उदय हुआ, ऐसे समय में स्त्री मुक्ति की वकालत भी हुई। महादेवी वर्मा के माध्यम से दस्तावेज ने नारी की मूक पीड़ा को अभिव्यक्ति दी है।

अंक 40 में दस्तावेज के 10 वर्ष पूरे होने पर विश्वनाथ प्रसाद तिवारी से बातचीत प्रस्तुत की है। इस बातचीत में दस्तावेज की दृष्टि भविष्य की योजना, आवश्यकता आदि पर संपादक ने विस्तृत चर्चा की है। 1975 की उथल-पुथल के बाद ऐसी पत्रिका की आवश्यकता थी जो समाज को आश्वस्त करे। दस्तावेज ने यह काम बखूबी पूरा किया है। इसी अंक में रचनात्मकता और प्रतिबद्धता तथा मुक्तिबोध पर नन्दकिशोर नवल का आलेख प्रासंगिक है।

अंक 42 में ब्रह्म स्वरूप शर्मा तथा वशिष्ठ अनूप के लेख आकर्षित करते हैं। दस्तावेज में नये लेखकों को भी बराबर मौका मिला है। वशिष्ठ अनूप आज साहित्य के चर्चित नाम हैं। 'विदुर' शीर्षक से अजित कुमार सिंह का आलेख काफी ज्ञानवर्द्धक है। दस्तावेज का अंक काफी विविधता लिए हुए है। इस अंक में जैनेन्द्र कुमार, प्रकाश जैन, सोमदत्त पर संयुक्त रूप से विशेष सामग्री प्रस्तुत की गई है। इस अंक में रामदरस मिश्र, ए. अरविन्दाक्षन तथा विष्णु प्रभाकर का लेख प्रशंसनीय है। यह अंक इस बात का उदाहरण है कि दस्तावेज ने सिर्फ चर्चित नामों पर ही अंक नहीं निकाले, बल्कि अपेक्षाकृत कम चर्चित नामों पर भी विशेषांक निकालने का साहस किया है।

अंक 44 छायावाद के शीर्ष कवि जयशंकर प्रसाद पर केन्द्रित है। यह अंक इस बात की ओर इशारा करता है कि आगे बढ़ने के लिए परंपरा और आधुनिकता दोनों आवश्यक है। प्रसाद ने अपनी रचनाओं में परंपरा और आधुनकता में अच्छी तरह से मिलाकर प्रस्तुत किया है। 90 के दशक में भूमण्डलीकरण प्रक्रिया शुरू हो चुकी थी। अतः यह द्वंद्व चरम पर था कि आधुनिक और परंपरा में ज्यादा आवश्यक क्या है? प्रसाद की भविष्यदृष्टि थी कि उन्होंने मानव मात्र के कल्याण की बात 1935 में ही कर दी थी। निश्चित रूप से आने वाले भविष्य की आहट उन्हें पहले ही महसूस हो गई थी।

''औरों को हँसते देखों मनु हँसो और सुख पाओ।
अपने सुख को विस्तृत कर लो सबको सुखी बनाओ।''

अंक 46 संग्रहणीय अंक है। अमृतलाल नागर की मृत्यु पर इस अंक में उनके जीवन पर विस्तृत संपादकीय लिखी गई है। दस्तावेज ने अपने साहित्यिक कर्म को निभाते हुए साहित्य की प्रत्येक चर्चित घटना को जगह दी। रमेश चन्द्र शाह, परमानन्द श्रीवास्तव, रामदरस मिश्र के लेख दस्तावेज को अलग मुकाम पर पहुँचाते हैं। इस अंक में राममूर्ति त्रिपाठी ने विद्यानिवास मिश्र के माध्यम से परंपरा एवं आधुनिकता के टकराव को तथा रामचन्द्र तिवारी ने परंपरा और इतिहास का गंभीरतापूर्वक विश्लेषण किया है। दरअसल इन आलेखों के माध्यम से पत्रिका ने समकालीन बहस को साहित्यिक मंच प्रदान किया है। इसी अंक में नन्दकिशोर नवल का आलेख ज्ञानात्मक संवेदन के कोमल पारिजात' (मुक्तिबोध विशेष) नई कविता के यथार्थ को प्रस्तुत करता है।

सन् 1990 की छमाही में अंक 48 प्रकाशित हुआ। यह वही दौर था, जब दुनिया बदल रही थी। इन बदलावों से साहित्य भी अछूता नहीं था। नई-नई धाराएँ तथा वाद साहित्य में उपस्थिति दर्ज करा रहे थे। इसी क्रम में अजय तिवारी ने हिन्दी कविता में 'यथार्थवाद' तथा अभयकुमार सिंह ने 'जादुई यथार्थवाद' शीर्षक से लेख लिखे हैं। इन नई साहित्यिक प्रविधियों से दस्तावेज ने परिचय करवाने का प्रयास किया है। कई बार जानकारी के अभाव में कोई विधा अलोकप्रिय हो जाती है। इसी अंक में राजी सेठ ने नरेश मेहता का मूल्यांकन किया है। ओम निश्चल ने रामदरस मिश्र की किताब 'जुलूस कहाँ जा रहा है', का मूल्यांकन इसी अंक में किया है। इसके अलावा इस अंक में कुछ गजलें प्रकाशित करके दस्तावेज ने अपना साहित्यिक दायरा विस्तृत किया है।

अंक 49-50 संयुक्त रूप से प्रकाशित हुए। 50 के बाद की हिन्दी कविता कई मोड़ों से होकर गुजरी है, अतः उसके सामाजिक संदर्भ कैसे थे 'यह प्रश्न महत्त्वपूर्ण है' विजय देव नारायण साही ने इसी की पड़ताल अपने लेख में की है। उनका मानना है कि आपातकाल पर लिखा साहित्य ऐसा है, जो अपने समय गर्व कर सकता है। कृष्णदत्त पालीवाल ने विजयदेव नारायण साही का मूल्यांकन 'दहाड़ते आतंक के बीच फटकार का सच' शीर्षक से किया है। साहित्यकार हर प्रतिमान पर वाद-विवाद, बहस तथा संवाद करता है। साही जी ने साहित्य की तमाम बुनियादी चिंताओं, सरोकारों को चर्चा के केन्द्र में लाने का कार्य किया है। इस अंक के सभी कवियों की कविताएँ आकर्षक हैं। विश्वनाथ प्रसाद तिवारी की 'माँ' पर लिखी गई कविताएँ बेहद मार्मिक हैं। ऐसे समय में जब परिवार टूट रहे हैं, संबंधों का अकाल सा है, कवि ने 'माँ' को याद किया है। कविता की कुछ पंक्तियाँ हैं -

''उड़ गयी माँ
जैसे उड़ जाती है गौरेया
अपने खोंते से।'' (पृ. 41, अंक 49-50)

दस्तावेज अंक 52 नामवर सिंह की आलोचना पर केन्द्रित है। नामवर सिंह समकालीन समय के सबसे बड़े एवं सबसे विवादास्पद आलोचक हैं। हर समय अपना साहित्य, साहित्य लेखन और साहित्य विधा का चुनाव खुद करता है। नामवर सिंह स्वतंत्रता के बाद लिखे गए साहित्य के आलोचक हैं, अतः आजादी की बाद की आलोचना तथा साहित्य को समझने के लिए यह महत्त्वपूर्ण अंक है। चूँकि नामवर सिंह मार्क्सवादी चेतना के आलोचक हैं, अतः मार्क्सवादी विचारधारा की प्रासंगिकता को समकालीनता में समझने में भी सहायक होते हैं। इसी अंक में परमानंद श्रीवास्तव का लेख 'नामवर सिंह' तथा 'आलोचना' के संपादक रूप में भी नामवर सिंह ने एक इतिहास रचा है। इतिहास की चुनौतियों का सामना करते हुए विश्वनाथ प्रसाद तिवारी तथा 'दस्तावेज' ने भी एक-दूसरे को स्थापित किया है। साठ के दशक में लिखे गए साहित्य का भी एक अलग स्थान है। अपने अलग मिजाज और तेवर के बल पर इस समय का साहित्य सत्य को रेखांकित करता है। 90 का दशक आते-आते साहित्य में कई परिर्वतन हुए। इसके फलस्वरूप लोक केन्द्र से परिधि की ओर चला गया। नये-नये विषयों के आकर्षण ने लोक को हाशिए पर ला दिया। दस्तावेज ने अंक 53 में डॉ. शिवप्रसाद सिंह को याद किया है। दरअसल 20वीं सदी की आहट ने आधुनिकता को ज्यादा महत्त्व दिया, ऐसे समय में गाँव-घर की याद करते हुए दस्तावेज में शिवप्रसाद सिंह को चुनाव किया है। अपने आलेख में अरूणेश नीरन ने शिवप्रसाद सिंह की 'वसन्त वन के कस्तूरी मृग' की संज्ञा दी है।

दस्तावेज ने अंक 56 में एक अभिनव प्रयोग किया है। इस अंक में 'हिमाचल के हिन्दी कवियों की कविताएँ' शीर्षक से पन्द्रह कवियों की कविताएँ छपी हैं। यह कौतूहल का विषय है कि हिन्दी के विषय में अन्य भाषा-भाषी कवि किस प्रकार सोचते होंगे? दस्तावेज के मूल्यांकन में मैंने एक बात समझी है कि बहुत से कवि जिनकी कविताएँ दस्तावेज में छपी थीं, आज वही कविता 'पोस्टर कविता' की तरह प्रयुक्त होती है। 'यात्रा संस्मरण' शीर्षक से विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने हिमाचल से कुछ चिट्ठियाँ प्रस्तुत की हैं। प्रभाकर श्रोत्रिय, कुमार अम्बुज तथा मिथिलेश्वर की किताबों की समीक्षा प्रस्तुत अंक में की गई है। यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि दस्तावेज ने विषयों की विविधिता तथा नवीनता पर विशेष ध्यान दिया है। संपादक की यह कोशिश रही है कि भिन्न-भिन्न क्षेत्रों तथा विधाओं से संबंधित साहित्य तथा साहित्यकारों को दस्तावेज में जगह दी जाये।

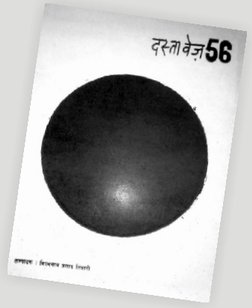

अंक 57 राहुल सांस्कृत्यायन पर केन्द्रित है। अपनी घुमक्कड़ तथा यायावर प्रवृत्ति से राहुल सांस्कृत्यायन ने विरला परिचय प्राप्त किया है। उनके जीवन का हर अनुभव भोगा हुआ यथार्थ है। उनका महत्त्वपूर्ण योगदान उस साहित्य को सामने लाने में है, जो अब तक छूटा हुआ था। राहुल की साहित्यिक दृष्टि जनसाधारण को केन्द्र में रखती है। इस अंक के माध्यम से दस्तावेज ने जनसाधारण की वकालत की है। इस अंक में 12 कवियों की कविताएँ शामिल हुई हैं। यद्यपि इनकी संख्या अधिक लगती है, किन्तु अपने विषय, शिल्प के कारण ये कविताएँ गतिशील रही हैं।

अंक 59 पूरी तरह से मराठी साहित्य पर केन्द्रित है। इस अंक के अंतर्गत मराठी कविता, उपन्यास, कहानी, नाटक, समीक्षा को शामिल किया गया है। यह दस्तावेज पत्रिका की लोकतांत्रिक चेतना है कि उसने हिन्दी से इतर अन्य भाषा के साहित्य को एक पूरा अंक समर्पित किया है। दलित विमर्श जैसे साहित्यिक लेखन में मराठी साहित्य, हिन्दी का पथ प्रदर्शक रहा है। इस तरह के प्रयास से अभिव्यक्ति के नये तौर तरीकों तथा विषयों की विविधता का ज्ञान होता है। मराठी नाटक पर लिखते समय श्रीधर तिलवे ने कहा भी है कि-''मराठी व्यावसायिक रंगमंच का भारतीय रंगमच के इतिहास में हमेशा एक अलग स्थान रहा है।''(अंक 59,पृ.29)

दस्तावेज ने बहुत सधे तथा व्यवस्थित ढंग से अपना निर्माण किया है। उसकी सफलता में बहुत हद तक उसकी वस्तुनिष्ठ दृष्टि का योगदान रहा है। 'रचना और आलोचना' शीर्षक से दस्तावेज ने एक परिचर्चा आयोजित की थी। इस चर्चा के दो प्रमुख बिन्दु थे- पहला श्रेष्ठ रचना की कसौटियाँ क्या हैं? दूसरा आलोचना का धर्म क्या है? इस परिचर्चा में विभिन्न विद्वानों, आलोचकों तथा प्रबुद्ध लोगों के मत को दस्तावेज अंक 62 में अक्षरशः प्रस्तुत किया गया है। इस अंक में कुल 51 विद्वानों के मत शामिल किये गये हैं। इस आयोजन के द्वारा दस्तावेज ने साहित्यिक कृतियों पर पड़े कुहासे को साफ किया है। इसके अलावा विभिन्न विद्वानों की साहित्यिक मान्यताओं का साक्ष्य भी प्रस्तुत किया है। इसी अंक में मधुरेश ने लिखा है कि ''आलोचना का कार्य रचना के माध्यम से अपने समय को परिभाषित करना है।''

दस्तावेज के माध्यम से विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लेखक और पाठक के मध्य संवाद की परिपाटी शुरू की है। दस्तावेज के अंको में पाठकों की सहमति-असहमति के बहुत से पत्र भी छापे गये हैं। कई बार तो इन पत्रों की बीच से ही एक 'विमर्श' तैयार हो गया है। हर विचार, अनुभव तथा तथ्यों के माध्यम से साहित्यिक लोकतंत्र का रास्ता दस्तावेज ने उपलब्ध कराया है।

दस्तावेज का अंक 63 अप्रैल-जून 1994 में प्रकाशित हुआ। यह अंक उपेन्द्रनाथ अश्क पर विशेष समाग्री के साथ प्रस्तुत हुआ। सही अर्थों में तो यह अंक अपने नये कलेवर में निकला। अश्क को समझने के लिए संपादक ने किन्हीं गंभीर एवं भारी-भरकम आलेखों का सहारा नहीं लिया है, बल्कि चर्चित लेखकों के द्वारा अश्क को लिखें पत्रों की सहायता ली है। इसका सीधा-सा अर्थ है कि पत्र साहित्य जैसी लुप्त होती जा रही विधा को केन्द्रियता देकर संपादक ने उसे बचाने का प्रयास किया है। इसके अलावा एक संदेश यह भी है कि पत्रों में किसी लेखक से संबंधित जो शोधपरक जानकारी उपलब्ध रहती है वह पाठकों की नजर में आ सके। इस अंक में आशुतोष दुबे की कुछ कविताएँ छपी हैं, जो आज के समय के चर्चित और समर्थ कवियों में गिने जाते हैं। पुस्तकों के मूल्यांकन खण्ड के अंतर्गत दस्तावेज का प्रयास अपने समय के चर्चित एवं जरूरी साहित्य से पाठक का परिचय करवाने का रहा है। अंक 63 में ही विष्णुकांत शास्त्री की चर्चित किताब 'सुधियाँ उस चन्दन वन की' समीक्षा प्रभाकर मिश्र द्वारा प्रस्तुत की गई है।

अंक 64 भी अपने पूर्ववर्ती अंकों की परंपरा को आगे बढ़ाता है। उमाशंकर जोशी ने 'उपन्यासकार द्वारा भारतीय की खोज' शीर्षक से उपन्यासों में भारतीयता की खोज की है। आधुनिक समय का महाकाव्य कहे जाने वाले उपन्यास ने अपनी भूमिका किस तरह निभाई है यह प्रश्न हमेशा उठाये जाते रहे हैं। इसी अंक में अजय तिवारी का आलेख 'मध्यकाल और भूषण की राष्ट्रीयता' शामिल है। रीतिकाल का सतही मूल्यांकन करने के क्रम में बहुत से आलोचकों ने उसमें शृंगार और मांसलता के तत्त्व ही खोजें हैं। ऐसे बहुत से उदाहरण हैं जिनमें रीतिकालीन कवियों ने सत्ता के खिलाफ संघर्ष की कविताएँ लिखी हैं। रीतिकाल के ही कवि ठाकुर ने अपने समकालीन कवियों को फटकारते हुए लिखा है-

''सीखि लीनो मीन मृग खंजन कमल-नैन
सीखि लीनो जस औ प्रताप को कहानौ है।''

इस आलेख में लेखक ने एक आवरण हटाते हुए भूषण की कविता में राष्ट्रीयता की खोज की है। साहित्यिक पत्रकारिता का काम भी है कि साहित्य के अंधेरे पक्ष को पाठक के सामने प्रस्तुत करे। इस अंक में 'आलोचना के हाशिए पर' विषय में संपादकीय लिखी गई है। इसके माध्यम से संपादक ने एक बहस शुरू की है कि क्या आलोचना पूर्णतः सत्य है? अगर पाठक ने किसी किसी कृति को नहीं पढ़ा, तो आलोचक की बनाई धारणा पर विश्वास करना कितना तर्कसंगत होगा? अशोक बाजपेयी ने एक वक्तव्य में कहा है- 'साहित्य का सच अधूरा होता है, उसमें लेखक अपना सच मिलाकर उसे पूर्ण बनाता है।' इसी क्रम मे विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने लिखा है- ''देखने वाले से अलग भी वस्तु की अपनी स्वतंत्र सत्ता होती है।'' कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि पाठक को अपनी स्वाधीन सत्ता रखनी चाहिए किसी विचारधारा का गुलाम नहीं होना चाहिए।

इस अंक में भी 'रचना और आलोचना' पर चल रही बहस को आगे बढ़ाया गया है। किसी भी तरह की केन्द्रीयता साहित्य के लिए नुकसानदेह है। केन्द्रीयता अन्ततः एक अनिवार्य हिंसा में बदल जाती है। साहित्य का कार्य हिंसा फैलाना

नहीं, बल्कि हिंसा का विकल्प प्रस्तुत करना है। साहित्य सच का दावा नहीं प्रस्तुत करता, किन्तु उसकी जिज्ञासा और 'सत्य की खोज' है। इस अंक में केदारनाथ अग्रवाल, विष्णु प्रभाकर, चित्रा मुद्गल, शैलेश मटियानी, गोपाल राय, सुमन राजे जैसे विद्वानों के हवाले से इस परिचर्चा को आगे बढ़ाया गया है।

दस्तावेज के अंक 66 ने पत्रिका के लोकतांत्रिक मिजाज को प्रस्तुत किया है। यह अंक भोजपुरी साहित्य पर केन्द्रित है। भोजपुरी भाषा का अपना एक इतिहास रहा है। अपने विकास क्रम में इस भाषा की पहचान आज अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बनी है। यह लोकजीवन की भाषा है। जिसमें संवेदना और अनुभूति सहज भाव से उपस्थित होते हैं। आधुनिक काल का साहित्य समाज आधारित है, अतः इसमें जन सामान्य की उपस्थित जरूरी हो गई। दस्तावेज साहित्य के जनतंत्रीकरण को बढ़ावा देने का कार्य करने वाली पत्रिका है। बहुत प्रचलित अथवा प्रसिद्ध भाषा साहित्य के अलावा ऐसी भाषा जिसमें भविष्य की आहटें थीं, उन्हें भी दस्तावेज में प्राथमिकता मिली है। जिसका परिणाम है कि दस्तावेज पत्रिका का जनसामान्य से सीधा संबंध बना। इस प्रकार यह पत्रिका अपने समकालीन प्रश्नों और समय से सीधे सम्बद्ध हो गई।

अंक 67 गीत तथा गजलों पर आधारित है। आधुलिक काल ने जहाँ साहित्य की नई विधा एवं शैली को जन्म दिया है, वहीं कुछ प्रचलित विधाएँ संकट में रही हैं। गजलों विधा में आधुनिक काल का साहित्य कम लिखा गया है। गहजहल का अपना अलहदा मिजहाज, संस्कार तथा शऊर रहा है। अभिव्यक्ति के अपने तरीके होते हैं, गजल विधा का जुड़ाव सीधे दिल से होता है। गजल का अर्थ है- प्रेम के बारे में माशूका से बातचीत। यह ऐसा समय है, जहाँ प्रेम का अकाल है। अतः गजल का खतरे में होना स्वाभाविक है। दस्तावेज की कोशिश उस संभावित खतरे को कम करना है। गजल की प्रसिद्धि आसमान पर रही, किन्तु उसका लिखित इतिहास मौजूद नहीं रहा। जमीनी स्तर पद उसे मजबूती देने के लिए इस तरह के विशेषांक महती भूमिका अदा करेंगे।

इस अंक में कविता शीर्षक के अंतर्गत भोजपुरी कविताओं को शामिल किया गया है। अंक का एक भाग गीतों पर केन्द्रित है। गीत और गजल ऐसी विधा है, जो सामान्य जन से सीधे-सीधे जुड़ी होती है। गीतकार नरेन्द्र शर्मा गीतों के पक्ष में अपना बयान कुछ इस प्रकार दर्ज करवाते हैं- जब गद्य असमर्थ हो जाता है तो कविता जन्म लेती है और जब कविता भी असमर्थ हो जाती है, तो गीत जन्म लेता है। कविता जहाँ आम आदमी की समझ से बाहर होती है। वहीं गीत का जुड़ाव आम आदमी से ज्यादा होता है। दस्तावेज के अंक 68 की संपादकीय गाँधी और उनके दर्शन पर केन्द्रित है। भारत के इतिहास में गाँधी को व्यापक सहमति और असहमति झेलनी पड़ी, किन्तु मेरी राय में भारत की स्वाधीनता के लिए गाँधी का रास्ता ही अंतिम रास्ता था। आज कई बार यह कहा जाता है कि मजबूरी का नाम महात्मा गाँधी, किन्तु आज के समय में गाँधी सबसे ज्यादा हमारे काम आए हैं। गाँधी ने अपने सामाजिक और निज का एकाकार किया था और अपने आत्म-सत्य को सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण मानते थे, इसीलिए उन पर लगे तमाम आरोपों के बावजूद कहा जा सकता है कि मजबूती का नाम महात्मा गाँधी। 90 का दशक जिस तरह की हिसंक घटनाओं का गवाह रहा है, ऐसे में दस्तावेज ने यह कहने की कोशिश की है कि गाँधी द्वारा दिया गया आहिंसा का दर्शन आज के समय की सबसे बड़ी मांग है। मनुष्यता के चरम तक पहुँचने के लिए हमें गाँधी का मार्ग चुनना पडेगा।अंक 69 में भी संपादकीय 'आलोचना के हाशिये पर' शीर्षक से क्रमशः चल रही श्रृंखला पर आधारित है। आलोचना महज शौक नहीं, बल्कि मनुष्य के अंदर की बेचैनी है। आलोचना अपने आप उपजती है। संपादकीय में एक महत्त्वपूर्ण बात लिखी है कि किसी कृति का सच्चा आलोचक उसका पाठक होता है। दरअसल यह पूरी श्रृंखला आलोचना के बँधे-बँधाये मिथकों परंपराओं केा पुनः प्राप्त करना है। आधुनिक समय बँधे-बँधाये मिथकों, परंपराओं के टूटने का है, इसीलिए आलोचना को भी तमाम पूर्वाग्रहों से मुक्त होना पड़ेगा। नन्द चतुर्वेदी ने 'साहित्य और बाजार' के संबंधों की पड़ताल इसी अंक में की है। आज हम सब बाजार की गिरफ्त में हैं। आज के समय में बाजार ने हमारे जीवन को 'उपभोक्ता' बनाकर रखा है। साहित्य ऐसे समय में कैसी भूमिका अदा करेगा 'बाजार के घटाटोप से वह आम आदमी को कैसे बचायेगा' इस आलेख में की इसी बहस को शामिल किया गया है। भोजपुरी भाषा पर मैनेजर पाण्डेय का लेख 'साँच को आँच क्या', इस अंक की शोभा है।

दस्तावेज के अंक 71 में रघुवंश ने 'समकालीनता की अवधारणा' पर चर्चा की है। यह प्रश्न हमेशा उठाया जाता है कि समकालीनता से क्या समझा जाये? लेखक का आशय है कि युग-परिस्थिति के परिवर्तन से अभिव्यक्ति के स्वर भी भिन्न-भिन्न होना चाहिए। लोकतंत्र के सशक्त 'पहरेदार कवि रामधारी सिंह दिनकर, सर्वेश्वरदयाल सक्सेना, रघुवीर सहाय के काव्य पर इस अंक में लेख शामिल है। इस अंक की सबसे विशेष बात इसमें शामिल दोहे हैं। इस अंक में कविता की जगह पर 10 लेखकों के दोहों को जगह मिली है। बिहारी के बाद दोहों को बहुत अधिक प्रसिद्धि नहीं मिली। दस्तावेज का प्रयास विलुप्त हो रही विधाओं को बचाने तथा उसके प्रति पाठकों में जागरूकता फैलाना का भी रहा है।

दस्तावेज ने आलोचना की बदली हुई चेतना का वहन किया है। इस पत्रिका ने बिना किसी नारेबाजी, फतवे के सवाल उठाये हैं। अंक 73 की संपादकीय भी आलोचना के हाशिए पर केन्द्रित है। इस अंक में विश्वनाथ प्रसाद तिवारी ने आलोचना के संदर्भ में प्रस्ताव दिया है कि-''सच्चाई यह है कि मुक्त मन का पाठक ही नई रचनाओं और नये नामों की तलाश कर सकता है।'' एक सच्ची आलोचना संकीर्णता के दायरे में नहीं हो सकती है।'' इसी अंक में बंग्ला भाषा के लेखक 'शक्ति चट्टोपाध्याय' पर विशेष सामग्री प्रकाशित की गई है। संपादक का मानना है कि हिन्दी का इतिहास महज खड़ी बोली तक नहीं, बल्कि अन्य बोलियों में भी बहुत समर्थ अभिव्यक्तियाँ हो रही हैं। अतः दस्तावेज ने अन्य भाषा साहित्य के साथ आवाजाही बनाई है। जिससे सच्ची आलोचना का मार्ग प्रशस्त हो सके। इसी अंक में आधुनिक काल के पाँच आलोचकों पर विशेष सामग्री प्रस्तुत की गई है। पिछले अंकों के संदर्भ में प्रकाशित पत्र भी दस्तावेज की गतिशीलता को बढ़ाने में सहायता करते हैं।

दस्तावेज का अंक 75, 1997 में प्रकाशित हुआ। यह दूसरे दशक का अंतिम अंक था और छायावाद के कवि सूर्यकांत त्रिपाठी निराला पर केन्द्रित अंक था। यह अंक पुस्तकाकार रूप में लोकभारती से प्रकाशित हुआ, जिसको लेकर संपादक पर कई तरह के आरोप भी लगे। निराला का लेखन उनके आत्मसंघर्ष का ही एक हिस्सा है। निराला कबीर और प्रेमचन्द की परंपरा के कवि है। गहरे संघर्ष के बावजूद उनका साहित्यकार मन अमर रहा। चूँकि यह वर्ष निराला की जन्मशती का रहा, अतः यह अंक आधुनिक कवियों में शीर्षस्थ निराला को समर्पित है। निराला अपने जीवन काल में ही मिथ बन गये थे, इस अंक में निराला के जीवन को विविध स्तरों पर समझा गया है। आधुनिक समय में निराला की प्रासंगिकता तथा उनके बहुआयामी व्यक्तित्त्व के साथ उचित न्याय के संदर्भ में दस्तावेज का यह अंक महत्त्वपूर्ण है। इस अंक में शिवमंगलसिंह सुमन, शिवकुमार मिश्र, चंद्रकांत, वांदिवडेकर, सूर्यप्रकाश दीक्षित, रेवतीरमण, रमेश चंद्र शाह, सुधीश पचौरी, नंदकिशोर नवल, विष्णुकांत शास्त्री सहित कुल 15 महत्त्वपूर्ण लेख शामिल हैं। निराला का प्रभाव परवर्ती काव्यधारा पर भी खूब पड़ा, अतः इस दृष्टि से भी निराला का मूल्यांकन किया गया है।

अगले अंक में निरन्तर....

प्रवक्ता (हिन्दी)
जनता इण्टर कॉलेज, झबीरन (सहारनपुर)
मो.नं.-9919973740
ई-मेल- gaur.abhishek2@Gmail.com

देश और काल का जीवन्त 'दस्तावेज़'

छबिल कुमार मेहेर

'कथा मध्यप्रदेश' का प्रकाशन हिन्दी साहित्य जगत के लिए एक ऐतिहासिक उपलब्धि है। छः खंडों और लगभग बाईस सौ पृष्ठों में व्याप्त इस कथा संचयन के प्रधान संपादक हैं यशस्वी कवि-कथाकार, आलोचक, विज्ञानी, कला चिन्तक, अनुसर्जक श्री संतोष चौबे। इसमें 228 कथाकारों की कहानियों के साथ-साथ 30 आलोचकों के शोधपरक आलेख भी संकलित है। दरअसल यह 'स्वतंत्रता और उसके बाद अविभाजित मध्यप्रदेश के आधुनिक कथाकारों का अप्रतिम कथा संचयन' है - एक खंड विरासत, तीन खंड समकालीन और दो खंड युवा कथाकारों पर केन्द्रित है। एक प्रकार से यह हिन्दी कहानी का एनासाइक्लोपीडिया बन पड़ा है जिससे पाठकों एवं अध्येताओं को सभी कथा प्रवृत्तियों का परिचय एक ही जगह मिल सके। इस महत योजना का दूसरा लक्ष्य है : 'कथा-संसार की एक ऐसी बानगी पेश करना, जो प्रदेश के पूरे कथा-परिदृश्य को तो प्रस्तुत करती ही हो, अपने देश और काल का भी एक जीवंत दस्तावेज हो' । यह महासंकलन बनमाली, मुक्तिबोध, परसाई से लेकर वंदना राग, सत्यनारायण पटेल, शम्पा शाह तक को समेटता है। इसके अलावा हमारे समय के महत्वपूर्ण कथा आलोचकों की जरूरी आलोचनाओं को भी शामिल कर संचयन को पूर्णता प्रदान करने के साथ-साथ इसे उपयोगी बनाने का यथा संभव प्रयास है। 'समावर्तन' में इससे पूर्व प्रकाशित इसके पाँचों खंडों की 5 सम्यक् समीक्षाओं से हम यह जान चुके हैं कि मध्यप्रदेश के कथाकार न सिर्फ सभी कथा आन्दोलनों और प्रवृत्तियों से भलीभाँति परिचित रहे हैं बल्कि कई परिवर्तनों एवं नवाचारों का तो उन्हें वाहक भी कहा जा सकता है।

//2//

'कथा मध्यप्रदेश-6' इस कथा संचयन का अन्तिम खंड है जो 'युवा कहानी-2' पर केन्द्रित है। प्रधान संपादक श्री संतोष चौबे जी की लम्बी प्रासंगिक भूमिका के अलावा इसमें बहुचर्चित, चर्चित, अल्पचर्चित, अचर्चित 24 युवा कथाकारों की कहानियों के साथ आठ विशिष्ट कथा आलोचनाएँ भी संकलित हैं। अपनी लम्बी भूमिका में श्री चौबे जी ने हिन्दी कहानी साहित्य को व्यापक परिप्रेक्ष्य में रखते हुए उसके लगभग हर पहलू पर सार्थक चर्चा की है। उनका मानना है कि युवा कहानी, यानी इक्कीसवीं शताब्दी के पहले दशक की कहानी आजकल खूब चर्चा में है। कहा जा रहा है कि वह बदले या बदलते हुये समय की कहानी है और अपने समय से बखूबी लोहा ले रही है। उसने अपने समय की गति, उसकी अंतर्लय तथा द्वंद्व को ठीक-ठीक पकड़ा है और अपने कथ्य में, विवरणों में, स्टाइल में इस नये समय को, एक कोण से प्रतिबिम्बित भी किया है। हम इस 'नये समय' की परिभाषा में आगे जायेंगे पर फिलहाल ये देख लें कि युवा कहानी के भीतर से उसे कैसे देखा-पहचाना जा रहा है।

अब हम संकलित 24 कहानियों की ओर रूख करते हैं। रंजना चितले की 'तृप्ति' इस खंड की पहली कहानी है। यह कहानी समय के खेल में अकेली पड़ गई माधवी के संघर्षशील व संवेदनशील व्यक्तित्व को दर्शाती है। सीधी सपाट होने के बावजूद यह कहानी बहुत कुछ कह जाती है चुपके-चुपके : 'यद्यपि हर इंसान के जीने का अपना तरीका होता है, जिन्दगी के एक

मुकाम के बाद उसे अकेला चलना ही होता है। अपनी आँखों से आसमान देखना होता है और अपने ही पाँव से धरती नापनी होती है।'(पृ.06) आधुनिकता के मोह में अंध पुत्र और आधुनिक संवेदनहीनता से त्रस्त पिता की व्यथा कथा को बयाँ करती है रमेश शर्मा की कहानी 'वे खुश होना चाहते हैं'। समकालीन समय को कहानीकार ने ठीक ही पहचाना है : 'आज अर्थ की दौड़ में वह सफल तो हो गया और उसी को सफलता का पर्याय मान लेने में नई पीढ़ी जो तर्क रखती है, वो सारे तर्क एक के बाद एक उसने इस तरह बिछा दिए कि उस बिछौने में रिश्तों के लिए कोई स्पेस ही नहीं रह गया था।'(पृ.11) 'लापता नत्थू उर्फ दुनिया ना माने' में रवि बुले ने (बकौल कथाकार) एक नई शैली में अपने दोस्त नत्थू की आधी खाली, आधी भरी डायरी के कुछ पन्नों को कहानी के रूप में परोसा है। दरअसल छोटे-छोटे उपशीर्षकों में बँटी यह कहानी एक कथा रिपार्ताज है- एक जटिल कहानी, जो एक स्तर पर सरकार, कांग्रेस, भाजपा, गोडसे, गांधी, महाराष्ट्र आदि के मार्फत समय के राजनीतिक ऊहापोह को दर्शाती है और दूसरे स्तर पर कहानी का नायक अपनी अस्मिता की पहचान के लिए गांधी और गोडसे के बीच झुलता रहता है। रवीन्द्र स्वप्निल प्रजापति की 'गाड़ी की स्पीड और सूखा' कहानी एक कथा रूपक है- एक युवा की नई नई आँखों से देखा हुआ सच्चा रूपक- यह युवक सूखे की चिन्ता को समाज में व्याप्त विरोधाभासों के साथ रख कर उसे देखता है, तोलता है, परखता है; पर हाथ कुछ नहीं लगता- जैसा कि बरसों से होता आ रहा है- सूखा, किसान कर्ज, पलायन, किसान आत्महत्या... : 'इसी साल हमारे गांव से चालीस-पैंतालीस लड़के शहर को चले गये ....कर्ज बड़ी तकलीफ बन गया।....आज उसकी जमीन बिक गई। बेटे ने आत्महत्या कर ली।'(पृ.35)

राकेश बिहारी की 'बिसात' एक मुकम्मल जज्बे की कहानी है- एक ऐसा जज्बा जहाँ खेल महज खेल नहीं रह जाता, धीरे-धीरे वह जीने का विकल्प बन जाता है। सारांश और अन्वेषा इसी राह के यात्री हैं। राजुला की 'पंजाब मेल' स्वप्नलोक सी धीरे-धीरे प्रेम, विरह, दर्द को अपने साथ समेटती हुई आगे बढ़ती जाती है- 'चिर विरह है, विरह होते हैं जिसे प्रेम करना आता है, प्रेम को कहाँ प्रेम करना आता है..... यह कैसी तड़प है, कैसी बिछड़न, कैसा दर्द है-

माए नी मैं केन्नू आँक्खा, दरद वछोड़े दा हाल
धुँआ तुखे मेरा मुरशदवाला, जाँ फोला ताँ लाल

और यात्रा खत्म हो जाती है- जबकि अरू का मन नहीं था- रूकने का जी नहीं था।' (पृ.48-49) 'लू में खिला फूल' बूढ़ी कुंती की कहानी बयाँ करती है जो जीवन भर पति की 'हाँ' में 'हाँ' और 'ना' में 'ना' मिलाने को ही अपना धर्म समझती है। उसकी मान्यता के अनुसार 'पति परमेश्वर होता है और परमेश्वरधाम पवित्र तीर्थ स्थल ।'(पृ.54) रेखा कस्तवार की 'तीन सौ साठ डिग्री का कोण' एक सशक्त कहानी है जो कन्याभ्रूण हत्या के खिलाफ आवाज उठाती है बेहतर ढंग से : 'बेटी हो तो दे देना मुझे... बेटा तुम्हारा। मारो मत उसे। किलकारियों पर उसका भी हक है।'(पृ.62) लता अग्रवाल ने 'गुनहगार' में एक शरारती बेटे की कामयाब-कहानी को दर्शाया है और साथ ही साथ उसके पश्चाताप को भी दर्ज किया है। 'बफलियाज की कनीज' में एक आर्मी अफसर की अधूरी प्रेम-कहानी का वर्णन है। नौजवान फौजी जवानी के जोश में अंधा होकर प्रेमिका के असली चेहरे को देख ही नहीं

पाता- यहाँ प्रेम तो अधूरा है ही, कहानी भी अधूरी सी प्रतीत होती है। वंदना देव शुक्ल की 'आवाजें' कहानी में गूँजती हैं उस्ताद हमीदुल्लाह खान उर्फ छुट्टन मियां की आवाजें। एक समय में ग्वालियर के तानसेन समारोह में हजारों की तालियाँ बटोरने वाली यह आवाज एक लम्बा अरसा गुजर जाने के बाद कहीं दब सी गई है, परन्तु उसमें अभी भी दम है। अपने पुराने दिनों को याद करते हुए आज उसी के बल पर जिंदा हैं छुट्टन मियां : 'कहाँ खो जाते हैं अब्बू!'- 'नहीं खोये नहीं थे'- छुट्टन मियां ने अस्पष्ट आवाज में कहा, 'बस जरा दूर तलक निकल गए थे।'(पृ.80) वन्दना राग अपनी 'विरासत' कहानी में जहाँ एक ओर एक कर्मठ पिता के आदर्श मान-मूल्य को दर्शाती है, वहीं दूसरी ओर दोस्तों के दुश्चक्र को भी रेखांकित करती है। विनोद कुशवाहा जी ने 'प्रथा' के मार्फत गाँव के अंधविश्वास को उजागर किया है। आज भी भारत के अनेकानेक गाँव में बलिप्रथा पर पूर्ण विश्वास है- 'देवी माँ की प्रसन्नता से ही हम सबकी खुशी है बेटा। अब तू अच्छा हो जाएगा।'(पृ.100)

शंपा शाह की 'छाया का रंग' कहानी कुछ नहीं कहती मन की कोमल प्रच्छन्न चाह के सिवा : 'आँखों को सिकोड़कर मैं और गौर से देखना शुरू करती हूँ। पर इस बार छाया की जगह वो धूप के गोल-गोल चकत्ते थे जो उलट दिशा में भाग रहे थे। नहीं, वह पेड़ की छाया ही तो थी जिसकी वजह से धूप के चकत्ते बन रहे थे। एक-दूसरे को ठेलते, एक-दूसरे से आँख-मिचौली खेलते, पीछे को सरकते जाते धब्बे-धूप, पीला, कत्थई, पीला। छाया हिल रही है, धूप की फुलकियाँ भी ज्यूँ इधर-उधर लुढ़क रही हैं। ऊपर कहीं पेड़ भी हिल रहा होगा पर अभी इस वक्त मैं उसे नहीं देखना चाहती। मैं एक बारगी सड़क के दोनों ओर फैले रंगों में छाया के रंग को पहचान लेना चाहती हूँ।'(पृ.103) शरद सिंह की 'छिपी हुई औरत' देवी मौसी और उनके अव्यक्त प्रेम को बहुत ही खूबसूरती के साथ बयाँ करती है। शीला मिश्रा की 'शहीद की माँ', जैसा कि शीर्षक से ही स्पष्ट है, एक शहीद की माता की करूण स्थिति को सार्थक ढंग से पाठक के समक्ष रखती है। संगीता गुंदेचा ने 'लकड़ी का बक्सा' में एक बच्चे के हृदय संवेदन को उजागर किया है। संतोष झाँजी की 'पराये घर का दरवाजा' एक बेबस औरत (रोदना) की मार्मिक स्थिति को दर्ज करती है जो पैसे की खातिर अपनी छाती के दूध को दूसरे बच्चे की परवरिश के लिए बेच देती है- और इस जद्दोजहद में उसका पति उसके हाथ से निकल जाता है; उसके अपने घर का दरवाजा अचानक पराये घर के दरवाजे में तब्दील हो जाता है। अमीरी-गरीबी की टकराहट को संगीता झा ने अपनी कहानी 'आँखों' में सुन्दर शैली में शब्दबद्ध किया है। सत्यनारायण पटेल की 'रंगरूट' कहानी प्रशिक्षु बुद्धिराम के एकतरफा किन्तु सच्चे प्रेम को रेखांकित करती है। सबसे अच्छी बात यह है

कि वह प्रेम में होशहवास नहीं खोता, बल्कि समझदारी से काम लेता है : 'सात महीने तो बीत गए हैं। दो माह और किसी तरह गुजर जाएँ। फिर ट्रेनिंग समाप्त होगी। तभी भेड़वाली से बात करना ठीक होगा। अभी उससे बात की और बात करते किसी ने देख लिया और खबर सी.डी.आई. को हो गई तो, वही, संजय जैसे हाल होंगे। नौकरी से भी हाथ धोना पड़ेगा। नौकरी चली जाएगी तो क्या खाऊँगा और उसे भी क्या खिलाऊँगा।'(पृ.140) सत्यम श्रीवास्तव की 'धर्मान्तरण' एक मुकम्मल कहानी है। इस कहानी में एक तरफ दलित(दुक्खी) है, तो दूसरी तरफ सवर्ण(रामदरश पाठक)। दुक्खी अपने हक की जमीन को कानूनन पाना चाहता है परन्तु पाठक जी उसके साथ टुच्ची राजनीति का खेल खेलते हुए, उसे ईसाइ घोषित कर बर्बाद कर डालते हैं। 'जटिंगा' कहानी में साधना सलवटे ने एक ऐसे धूर्त फादर का रेखांकन किया है जो गोंड की दुहाई देकर लोगों(नीरदचन्द्र) को क्रिस्चियन(जोसेफ) बन जाने के लिए उकसाता है। सुमन सिंह की 'बोम्म' कहानी किसी एक नौकरी और साथ ही साथ रतना को पाने की चाहत को दर्शाती है। परन्तु नौकरी पाकर भी उसके हाथ से निकल जाती है रतना। और 'बोम्म' की आवाज के साथ ही वह अपने आपको एक अलग दुनिया में खड़ा पाता है। इस खंड की अन्तिम कहानी है सुरभि पाण्डेय की 'डगलस का जमाना नहीं, इधर तुम हो प्रभाकर!'। दरअसल यह कहानी कुछ सार्थक बातों और बहुत सारी निरर्थक बहसों का पुलिंदा है। इन बहसों, प्रश्नों, प्रतिप्रश्नों, आत्ममंथनों के केन्द्र में है राधिका। राधिका की बायीं तरफ है प्रभाकर और दायीं तरफ कमलकान्त। अतिरिक्त बहसों और अनावश्यक विस्तार ने कहानी को बोझिल बना दिया है। परन्तु कुछ सार्थक बातें भी इन बहसों से ही निकलती हैं : 'क्या होती है आखिर जिन्दगी, आप ऐसा नहीं मानते कि यह एक यात्रा होती है, आप कहाँ-कहाँ, किस-किस स्टेशन से गुजरे ऐसी यात्रा से। पूरी जिन्दगी ही पात्र की अपनी यात्रा होती है...।' (पृ.173)

//3//

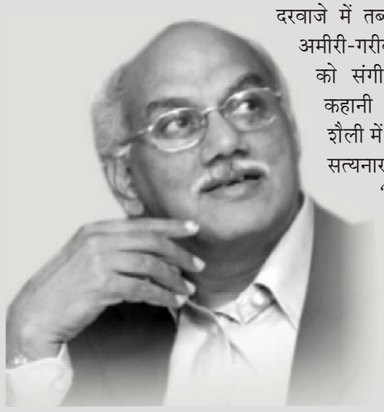

इस खंड में आठ समीक्षात्मक लेख भी संकलित है। सारे लेख अलग-अलग समय पर लिखे गये स्वतंत्र आलेख हैं। इन लेखों का सीधा सम्बन्ध संकलित कहानियों से नहीं है। कम से कम एक लेख इन्हीं कहानियों पर केन्द्रित होता! खैर, जो नहीं है, या जो न हो सका उसके लिए क्या गम! जो है वे भी कम नहीं हैं : विनोद तिवारी, प्रियम अंकित, पल्लव, राकेश बिहारी, वैभव सिंह, राहुल सिंह, अरूणेश शुक्ल, नीरज खरे। 'हिन्दी कहानी की नयी पीढ़ी और समकालीन सच' के मार्फत विनोद तिवारी जी ने स्वीकार किया है कि हिन्दी साहित्य के समकालीन परिदृश्य पर कहानी विधा के प्रति रचनात्मक-विश्वास बचा हुआ है। उन्होंने ठीक ही लक्ष्य किया है कि ग्लोबल साम्राज्यवादी अर्थ-तंत्र के प्रभाव में जो एक नया एकदम बदला हुआ, घनघोर रूप से क्रूर और जिस तरह से इसने राजनीतिक और सामाजिक तंत्र को पूरी तरह अपने गिरफ्त में ले लिया है, बदल डाला है, उस नये बदलते यथार्थ की कहानी नयी पीढ़ी की कहानी है। प्रियम अंकित के कथनानुसार आज कथाकार के सामने सबसे बड़ी चुनौती लोकतंत्र का मुलम्मा चढ़े सामन्ती मूल्यों के आह्वानों को पहचानने की है। वे यह भी स्वीकारते हैं कि आज की कहानी का यथार्थ तर्क और बुद्धि के पारम्परिक मूल्य का है। जो पारम्परिक मूल्य थे, वे अब काफी नहीं हैं नयी कहानी को समझने के लिए। आज का कथाकार यह महसूस कर रहा है। कथाकार विजय एवं कैलाश बनवासी पर केन्द्रित है पल्लव का आलेख 'कहानी में विचारधारा के इधर और उधर'। पल्लव जी के कथनानुसार विजय जी का संग्रह 'वंशबेल' और 'बाजार में रामधन' कठिन दिनों में कहानी की प्रतिष्ठा बढ़ाने वाले हैं। कैलाश बनवासी की कहानियाँ अपने आसपास के यथार्थ का उद्घाटन करती हुई बल्कि उस यथार्थ से मुठभेड़ करती हुई कहानियाँ हैं। राकेश बिहारी ने अपने छोटे से आलेख ('भूमंडलोत्तर कथा पीढ़ी : प्रस्थान और विकास') में बहुत बड़े विषय को समेटने प्रयास किया है। समकालीन पत्र-पत्रिकाओं के युवा पीढ़ी विशेषांकों की खोज खबर लेते हुए, काशीनाथ सिंह, प्रियम अंकित सरीखे कथाकार-आलोचकों की टिप्पणियों के आधार पर वे कुछेक सार्थक सवाल भी उठाते हैं : 'पुरानी पीढ़ी का शिथिल होना, नई पीढ़ी का आना और इस दौरान पीढ़ियों के बीच एक व्यावहारिक अन्तराल की उपस्थिति एक स्वाभाविक प्रक्रिया है। लेकिन यदि इस स्वाभाविक प्रक्रिया को किसी खास एजेंडे की शक्ल में पेश किया जाए तो '' इस सन्दर्भ में उनका यह आकलन भी उल्लेखनीय है : 'स्वाभाविक रूप से बढ़ती-पनपती एक कथा पीढ़ी, जिसमें स्त्री और दलित चेतना से सम्पन्न कथाकारों की भी महत्वपूर्ण उपस्थिति थी, को सीधे-सीधे नकारते हुए फसल की एक नई डाली को ही सम्पूर्ण पेड़ की तरह सुनियोजित रूप से प्रचारित-प्रसारित करने का यह एजेंडा एक तरह से अस्मिता विमर्श के महत्व को नकारने की एक अव्यावहारिक कोशिश थी।'....(और यह भी सच है कि) 'भूमंडलोत्तर समय में विकसित नई कथा-पीढ़ी की कहानियाँ बाजार और अस्मिता संघर्ष के विस्तार से उत्पन्न उन्हीं सामाजिक-आर्थिक परिणतियों के बहुकोणीय विस्तार की उल्लेखनीय गवाहियाँ हैं।' वैभव सिंह कथा, कथा-संवेदन, कथा-समय और कथाकारों के प्रति बहुत सजग आलोचक हैं। 'मुखौटों से लड़ रही हैं कथाएँ' में वे स्पष्ट कर देते हैं कि : 'कोई कहानीकार यह दावा नहीं कर सकता कि वह चूँकि समय के मामले में पहले के कहानीकारों से आगे का है, इसलिए उसकी कहानियाँ भी गुणवत्ता तथा पठनीयता के लिहाज से आगे की होंगी।.... .... केवल नए समय का कहानीकार घोषित करने से उनकी विश्वसनीयता कभी कायम नहीं हो सकती है। दुर्भाग्य से बहुत से कहानीकार अकारण ही इस दर्प से भरे घूम रहे हैं कि वे चूँकि सबसे आधुनिक समय में लिख रहे हैं, इसलिए उनकी कहानियाँ ज्यादा समर्थ व पठनीय स्वतः ही मान ली जानी चाहिए। उनका यह भ्रम प्रायः उनके विकास में बाधक हो जाता है।' राहुल सिंह का कहना है कि हिन्दी कहानी की यह युवा पीढ़ी मानवीय सम्बन्धों को लेकर चिन्तित है। इनकी कहानियों में मानवीय सम्बन्धों की अहमियत को सामने लाने की पुरजोर कोशिश लगातार देखने को मिल रही है। मानवीय सम्बन्धों के साथ-साथ इस पीढ़ी में एक नैतिक बोध भी क्रियाशील है। अरूणेश शुक्ल का आलेख 'अपने संघर्ष में अकेले लोगों की कहानियाँ' वंदना राग के कथा-मानस पर केन्द्रित है। वंदना की विशिष्टता को रेखांकित करते हुए अरूणेश लिखते हैं कि वंदना की कहानियों का यथार्थ अस्सी और खासकर नब्बे के बाद का है। सामाजिक-राजनीतिक परिवर्तनों व संघर्षों पर उनकी निगाह है। खासियत यह कि वह समकालीन यथार्थ व समय के जिन प्रश्नों से मुठभेड़ करती हैं, उसे विविध आयामी रूप में देखने-समझने की कोशिश करती है। अन्तिम आलेख 'कहानी 'होने' और 'कहने' का नया बोध' के मार्फत नीरज खरे ने हिन्दी कहानी के पिछले पन्द्रह बरसों पर अपनी सार गर्भित टिप्पणी प्रस्तुत की है : 'पिछले पन्द्रह साल की कहानियों में रचना-बोध का वैविध्य और जटिल संस्तरों पर यथार्थ के प्रगटन और उसे रचनात्मक आयाम देने के लिए कहानी ने विभिन्न फार्म स्वीकार किए हैं। कहानी की अन्तर्वस्तु ही

कथा मध्यप्रदेश भाग-6
प्रधान संपादक : संतोष चौबे
पहले पहल प्रकाशन, भोपाल
मूल्य रू.800/-

रूप(फार्म) भी तय करती है, पर आज की कहानियों में इन दोनों घटकों का 'भाषा' से अद्भुत संगठन है। कहना न होगा कि सामयिक परिस्थितियों के दबाव में कहानी की संरचना काफी प्रभावित हुई है- इधर की कहानी में सर्वाधिक महत्वपूर्ण बदलाव है- आकार में विशालता और औपन्यासिक कलेवर।' ... एक बडी संख्या में युवा कहानी की तस्वीर उभर रही है। यह अच्छा संकेत है कि अधिकांश कहानियाँ यथार्थ और कला के मिश्रण से तैयार हो रही हैं- इस पीढ़ी के यहाँ विचार या विचारधारा, उसके 'बोध' में बदल गयी है और अनुभव कहानी 'होने' की शर्तों को खोजता है।' निश्चय ही इन युवा कथा अलोचकों की उपस्थिति हमें आश्वस्त करती है कि युवा कहानी की भाँति युवा कथालोचना की एक व्यवस्थित पीढ़ी भी साथ ही साथ सक्रिय है। और यह हमारे लिए कोई छोटी उपलब्धि नहीं है।

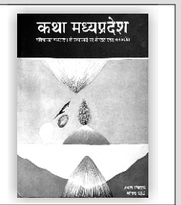

//4//

ऊपर की विवेचना से स्पष्ट है कि युवा कहानी में विषय की विविधता है। परन्तु अधिकतर कहानियों की भाषा सीधी सपाट है और वे विवरण स्फीति से आक्रान्त हैं। लगभग सारी कहानियों की कथावस्तु नई है, प्रतिपादन की शैलियाँ भी नई हैं; परन्तु कहानियों से गुजरते हुए ऐसा प्रतीत होता है कि कथाकार थोड़ी जल्दी में है; कथा, संवाद, घटना क्रम को सजाने-सँवारने का धैर्य लगभग गायब है इनमें। और इस कारण अधिकतर कहानियाँ पाठकों को बाँधे रखने में सफल नहीं होतीं। फिर भी बहुत कुछ है इन कहानियों में उल्लेखनीय। वंदना राग, शम्पा शाह, सत्यनारायण पटेल, वंदना देव शुक्ला, सत्यम् श्रीवास्तव को पढ़कर पाठक गौरवान्वित महसूस करता है। उनके पास कथा कहने की अच्छी शैली तो है ही और साथ ही साथ उसे परोसने की सशक्त भाषा भी। हिन्दी कहानी साहित्य को इन पर गर्व करना चाहिए। बकौल संतोष चौबे सबसे पहली बात जो आपको युवा कहानी में दिखेगी वह है स्त्री-पुरूष सम्बन्धों की, परत दर परत, गहरी पड़ताल और स्त्री का पक्ष का विशेष उभार, सम्बन्धों और विचार में खुलापन। लेकिन इसके एकदम बाद आप देखते हैं कि इन्हीं कहानियों में विद्रूपता, मन की भीतरी अस्थिरता, अकुलाहट और रूग्णता साथ-साथ उपस्थित है। इस क्रम में उनका यह प्रश्न भी महत्वपूर्ण है : इन कहानियों में बहुत सारी डिवाइसिस प्रयोगात्मक स्तर पर हैं लेकिन पठनीयता के स्तर पर भी क्या वे उतने ही आकर्षक हैं ? फिर भी योजना के अनुरूप यह खंड अपनी विविधता के बावजूद समकालीन युवा कथा परिदृश्य को प्रस्तुत करने के क्रम में देश और काल का भी एक जीवन्त दस्तावेज बन जाता है। सचमुच यह मध्यप्रदेश के कथाकारों का जगमग कथा संसार है और पाठक को इस संसार को अपने आसपास का संसार मानने को प्रेरित करता है। इसी में इस महत योजना की प्रामाणिकता व सार्थकता निहित है।

10, विश्वविद्यालय परिसर
डॉक्टर हरीसिंह गौर केन्द्रीय विश्वविद्यालय
सागर, मध्यप्रदेश-470003
मो. 08989154228

हमारे दौर के क्रूर समय के खिलाफ मनुष्यता की पैरवी करती कहानियाँ

मनीष वैद्य

पेड़ खाली नहीं है (कहानी संग्रह)
नरेन्द्र नागदेव
किताबघर प्रकाशन, नयी दिल्ली
कीमत-380 रूपये

करीब डेढ़सौ साल पहले एस्टरडम की बस्ती के बाहर फैले सरसों के पीले खेतों में नीदरलडि के चित्रकार वेन गॉग को एक दिन जख्मी हालत में एक परिंदा मिला था। इस परिंदे का कोई घोंसला नहीं रहा होगा और यह लगातार ऊँचे आसमान में उड़ते हुए थककर या किसी बाज के चंगुल से छूटकर वहाँ पीले खेतों में गिरा होगा। शीर्षक कहानी 'पेड़ खाली नहीं है' कहानी भी एक ऐसे ही परिंदे की कहानी है, जो बीती रात मौसम के खराब होने से दशहरा मैदान के भीगे हुए चबूतरे पर लेखक को मिलता है और जिसे देखकर लग रहा था कि जख्म मौसम के दिए हुए नहीं थे। आक्रामक कोई और था जिसके चंगुल से अंततः निकलकर वह यहाँ आ पड़ा था।

लेखक कहते हैं-'परिंदा हो या सृजनधर्मी-हरेक के साथ ऐसी दुर्घटना होने की संभावना बनी ही रहती है बंधु। अपनी सर्जन की' इनोसेंट'दुनिया में चाँद-सितारों तक आते-जाते आपको खयाल भी नहीं रहता कि न जाने कब से दुनिया की भौतिक, निर्मम सच्चाइयाँ आप पर घात लगा भी चुकी होती है।' कहानी आगे बढती है और लेखक इस जख्मी परिंदे का किसी पेड़ पर घोंसला बनाने के लिए प्रापर्टी डीलर से बात करते हैं लेकिन बहुत मुश्किलों और जद्दोजहद के बाद भी कोई पेड़, कोई टहनी खाली नहीं मिलती। कुछ खाली हैं भी पर उनके रेट्स इतने ज्यादा हैं कि उसकी रेंज से बाहर हैं। यहाँ पूरी कहानी प्रापर्टी डीलर और लेखक के बीच संवाद के रूप में बड़े ही रोचक ढंग से चलती है। इसका एक संदर्भ और जुड़ता है जिसमें नेहरू हार फूलों की बरसात और स्वागत गान और जय-जयकारों के कोलाहल के बीच इसी परिंदे को यहीं दशहरा मैदान के चबूतरे पर आसमान में छोड़ते हैं, लेकिन तब यह परिंदा जवान हुआ करता था। वह जिंदगीभर ऊँचे सपनों और आदर्शों की हवा में ऊँचाई पर उड़ता रहा। उसने कभी यह नहीं सोचा कि उसे होश आने पर कभी एक घोंसले की भी जरूरत होगी। कोई आखिर कब तक हवा में उड़ते हुए रह सकता है।

हमारे दौर के महत्त्वपूर्ण कथाकार नरेन्द्र नागदेव का नौवां कहानी संग्रह 'पेड़ खाली नहीं है' इधर काफी चर्चा में रहा है। अपने कहन की खास शैली, समय और समाज की सरोकारी चिंताओं और गहरी संवेदना से पगी उनकी कहानियों से गुजरना एक अलग तरह के रोमांच से भर देता है। इनमें समाज से घटते मानवीय मूल्यों से उपजती संवेदनहीनता, उनकी पुनर्प्रतिष्ठा का आग्रह और एक भरा-पूरा खास किस्म का नजरिया मिलता है। इधर की अधिकांश कहानियों में ऐसी सघनता कम ही दिखाई पड़ती है। ये तेरह कहानियाँ पक्षधरता के साथ एक आम ईमानदार आदमी के पक्ष में आज के बेहद क्रूर समय के खिलाफ पैरवी करती हैं। संग्रह का आवरण सुंदर और चित्ताकर्षक है। इसे चित्रकार सच्चीदा नागदेव ने उकेरा है।

इनमें कहानी की बुनावट के स्तर पर आन्तरिक कलात्मक 'रिदम' -सी महसूस होती रहती है। बुनियादी बात है कि जो कला जीवन से जुड़कर रचना के सामाजिक हस्तक्षेप को बढ़ाती है और सामाजिक सक्रियता को भी गति देती है, रचना में उस कला की महत्ता बढ़जाती है। ये अतीत की ठंडी सुरंगों से होती हुई वर्तमान की चुनौतियों से जूझते हुए भविष्य को भी लेखक की अंतरात्मा की आँख से देख कर हमें सचेत करती हैं। इस तरह वे सतत हमारी चेतना पर ठक्क-ठक्क करते हैं। इनमें बेहद कठिन और क्रूर होते जा रहे आज के समय की तल्ख सच्चाइयों, सिकुड़ती जा रही संवेदनाओं के साथ अकेले होते जा रहे आदमी, उसके मनोविज्ञान, विडम्बनाएँ, समाज के संत्रास और पीडाएँ तो हैं ही, राजनीतिक और पर्यावरणीय सवालों से भी रूबरू कराती है।

उनकी कहानियों में जो सबसे खास बात है, वह उनकी अपनी खास किस्म की कहन की शैली। किस्सागोई की आमफहम शैलियों से इतर वे अपनी कहानियाँ इस तरह कहते चलते हैं जैसे दो मित्र आपस में बात कर रहे हों। वे बंधु कहते हुए किस्से की पगडंडी पर अपने पाठक को साथ ले लेते हैं। एक बार उनके साथ हुआ पाठक मंत्रबिद्ध-सा उनके पीछे-पीछे चल पड़ता है। आगे-आगे किस्सागो और पीछे उसका पाठक। बतरस इतनी कमाल की है कि 30-35 पेज की कहानी कब पढ़ा ले जाती है, पता ही नहीं चलता। कथा की बुनावट महीन रेशमी धागों से गूंथी-सी लगती है। कुछ जगह वे खूबसूरत फंतासियों और ताजा बिम्बों से बात को रेलेवेंट करते हैं। उनका कल्पना लोक भी हमें यथार्थ की तरह ही दिखने और महसूस होने लगता है। सहज, चित्रात्मक, सधी हुई शानदार और मन मोह लेने वाली भाषा का फ्लो जबर्दस्त है। कई शब्दों में गहरी व्यंजना है। उनकी केन्द्रीय दृष्टि में बड़े सवाल हैं, जो कहानियो में वे बड़े ही 'हिडन फॉर्म' में साधारण तरीके से छोड़ देते हैं, जो देर तक पाठक के भीतर खलबली मचाते रहते हैं। कल्पना और यथार्थ के बीच वे बड़ा मजबूत पुल बनाते हैं।

संग्रह की पहली कहानी 'तंबाकू लाना जरा' लंबी होते हुए बेहतरीन है। कहानी की किस्सागोई बाँधती है। यह दो सौ साल पुराने भारत (सन 1829) के कुछ ग्रामीण इलाकों में यात्रियों के साथ ठगों की लूटपाट और लूट के शिकार की नृशंस हत्या कर जमीन में गाड़ दिए जाने की घटनाओं की अद्भुत किस्सागोई है। तब आज की तरह बढिया रास्ते नहीं हुआ करते थे। लोग अपना माल -असबाब लेकर पैदल या घोड़ों पर जंगली और अस्पष्ट रास्तों से गुजरने को मजबूर थे। नायक नेकसिंह उसी ठग परिवार से आता है लेकिन वह इस ठगी के प्रपंच के खिलाफ नरसिंहपुर के अंग्रेज मजिस्ट्रेट विलियम स्लिमेन के अश्वारोही अंगरक्षक की भूमिका में उनके साथ यात्रा पर निकलता है। लेखक ने नर्मदा किनारे नरसिंहपुर के दो सौ साल पहले के जन जीवन की अच्छी बानगी दिखाई है। यह एक अपराधी पिता और उसके नेकदिल पुत्र के मनोविज्ञान को भी महीन स्तरों पर छूती चलती है।

इसी तरह 'दाराशिकोह की उपनिषद' भी चार सौ साल पहले के मुगलिया सल्तनत के औरंगजेब के जमाने की एक बहुचर्चित कहानी को नई किस्सागोई के साथ पेश करती है। इस मुख्तसर से किस्से को जिस तरह कहानी अपने रचाव में कहती है, वह पढने लायक है। यह कहानी मौजूं धार्मिक उन्माद के परिवेश की जरूरी चिंताओं को भी बखूबी बयान करती चलती है। एक तरफ क्रूर और कट्टर औरंगजेब है तो दूसरी तरफ उसका भाई दाराशिकोह, जो संवेदनशील, भावुक तथा सभी धर्मो का आदर करने वाला है। हारे हुए अपमानित दारा और उसके महावत मोहरसिंह का दुखद अंत दिल में हुक पैदा करता है। इसमें बड़ा संकेत आता है कि दारा के लिखे उपनिषद का एक पन्ना हवा में ही उड़ता रह जाता है। क्या वह आज तक जमीन पर नहीं उतर पाया।

'कवच' कहानी एक निहायत आम आदमी की कहानी है जो दूसरों के अपराध की कई बार सजा भुगतता है। एक दिन अनायास उसके मन में खयाल आता है कि क्यों न अपराध कर ही लिया जाए. वह कचहरी के नियमों के मुताबिक बकायदा गवाह रखकर उनके सामने अपराध करता है लेकिन आश्चर्यजनक रूप से अपराधी उसे हवालात में नहीं ले जाने देते। उनकी चिंता है कि यह हवालात में चला गया तो वे अपने अपराध किसके मत्थे मढ़ेगें। वे इस बात से दरोगा को भी सहमत कर लेते हैं। यही व्यक्ति उनका कवच है। हमारे आज की व्यवस्था को यह कहानी शिद्दत से सामने लाती है।

'गिद्ध' अकाल के बहुचर्चित उस चित्र की कहानी है, जिसमें दरकती हुई जमीन के एक पेड़ के सूखे ठूंठ पर गिद्ध बैठा है। गिद्ध की धैर्यपूर्वक नजरें कथा नायक पर है, जबकि नायक और लेखक की नजरें तपते हुए आकाश की ओर है, गाँव के सारे लोग पलायन कर जाते हैं। नायक को यह सूना गाँव ज्यादा अपना-सा लगने लगता है कि अब वहाँ उससे घृणा करने वाला कोई नहीं बचा। वह अकाल से लड़ते हुए कुआं खोदता है लेकिन जब पानी निकलता है तो गाँव वाले लौटकर कुँए को हथिया लेते हैं और नायक पर चोरी का इल्जाम लगा जेल भेज देते हैं। वह गिद्ध अनायास मुखिया में बदल जाता है। यह कहानी हमारे समाज में व्याप्त शोषण की परत दर परत उधेड़ती चलती है। कुछ और कहानियाँ उल्लेखनीय है। इनमें 'गुमशुदा' , 'अब हँसी नहीं आती' और 'ताला खुल गया' शामिल हैं। ये कहानियाँ प्रेम और मनुष्यता के पक्ष में सदियों से चल रहे शोषण और उसके भिन्न-भिन्न चेहरों को बेनकाब करती हैं। इनकी सबसे बड़ी विशेषता यह है कि इनका अर्थ सिर्फ कहानी के किरदारों तक ही सीमित नहीं है, इसकी व्यंजना में कई-कई परतें खुलती है, कई-कई पाठ हैं, जिन्हें पाठक अपनी समग्र चेतना में पकड़ता है। व्यापक कैनवास पर ये कहानियाँ सैकड़ों सालों से चलती हुई आज तक पहुंचती है और आगे की दिशा का हल्का-सा संकेत भी करती है। इस अर्थ में वे बहुत बड़ा और महत्त्वपूर्ण काम करती है।

11 ए, मुखर्जी नगर
पायनियर स्कूल चौराहा, देवास (म.प्र.)
मो. 08989154228
E-mail : manishvaidya1970@gmail.com

हिन्दी पत्रकारिता को समृद्ध करता एक उपयोगी ग्रंथ

रेखा प्रियश्री

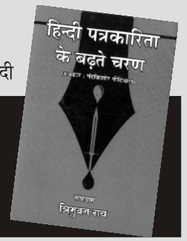

हिन्दी पत्रकारिता के बढ़ते चरण
पत्रकार नंदकिशोर नौटियाल
संपादक : डॉ.त्रिभुवन राय
प्रकाशक : अमन प्रकाशन कानपुर
मूल्य रू.695/-

पत्रकारिता विधा का ऐतिहासिक सिंहावलोकन प्रस्तुत करता 'हिन्दी पत्रकारिता के बढ़ते चरण' ग्रंथ भारतीय पत्रकारिता का एक प्रामाणिक दस्तावेज है। हिन्दी के वरिष्ठ और शीर्षस्थ पत्रकार नंदकिशोर नौटियाल के संदर्भ में लिखित यह कृति अनेक वैशिष्ट्य को तो रेखांकित करती ही है, उनके माध्यम से भारतीय पत्रकारिता, विशेषतः हिन्दी पत्रकारिता के निरंतर प्रगतिशील चरण-चिह्नों की मीमांसा भी है। स्वतंत्रतापूर्व मिशनरी पत्रकारिता की प्रकृति-प्रवृत्ति का आकलन करने के क्रम में समर्पित पत्रकार नंदकिशोर नौटियाल का योगदान अविस्मरणीय है और इसे नई पीढ़ी के दिशा निर्देश के लिए प्रस्तुत करना हिन्दी के लेखकों का एक आवश्यक कर्म एवं दायित्व था। डॉ.विनय ने इस दायित्व को आवश्यक मानकर इस ग्रंथ की योजना बनाई थी और निज जीवनकाल में वे, इस कार्य के प्रति सक्रिय भी रहे। दुर्भाग्यवश उनका निधन हो गया। हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार डॉ.त्रिभुवन राय ने संपादकीय के अन्तर्गत लेत उठावत खैंचत गाढ़े' की भाँति भूतों की तरह उनके काम करने की शैली को स्मरण किया है। आरंभ से संलग्न डॉ.राय 'मर्यादाओं के बीच रहकर काम करने की शैली' के विश्वासी रहे हैं। पत्रकारिता की परंपरा के कालजयी मूल्यों को नौटियालजी के माध्यम से रेखांकित करने में संपादक त्रिभुवनजी सफल सिद्ध हुए हैं। आरंभ में ग्रंथ रचना का प्रयोजन स्पष्ट करते हुए डॉ.राय ने साधन और साध्य दोनों को सम्मुख रखा है- ''मूल योजना थी कि हिन्दी पत्रकारिता की यात्रा को केन्द्र में रखकर ऐसा ग्रंथ तैयार किया जाए जो आज की दुनिया में भी पत्रकारिता को मिशन के रस में लेकर चलने वाले पुरानी पीढ़ी के वरिष्ठ पत्रकार नंदकिशोर नौटियाल के व्यक्तित्व के अनुरूप हो और जिसे उनके अमृत महोत्सव वर्ष के अवसर पर उन्हें समर्पित किया जाय।''

इस ग्रंथ की परिकल्पना में डॉ.विनय के योगदान को डॉ.राय ने सराहा है। स्वयं डॉ.रायजी के धैर्य, लगन और कर्मठता से यह महत कार्य संपन्न हो पाया है।

वस्तुतः नंदकिशोर नौटियाल एक सांस्थिक व्यक्तित्व के स्वामी रहे हैं। अजातशत्रु, ऊर्जावान, मधु-मिश्री घुली वाणी के नौटियालजी ने भारतीय जनजीवन की स्पंदनशील चेतना को समझा है और उस चेतना में निज स्वर मिलाकर हिन्दी पत्रकारिता के मानक मूल्य स्थिर किए हैं, जो सर्वदा के लिए दिशा-निर्देशक बन गए हैं। 'निर्भीक, निष्पक्ष और निर्वैर' का मूलमंत्र पत्रकारिता की सफलता का अनिवार्य-तत्व है। पत्रकार भी वह, जो बिना लाग-लपेट के खाँटी सत्य का आग्रही है।

नौटियालजी के समय तक विकसित पत्रकारिता और उसके समकालीन प्रगति तत्त्वों को जानना विधागत इतिहास को तो जानना ही है, साथ ही भारतीय राजनीतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक विकास-क्रम का भी अवलोकन है। इस दृष्टि से यह ग्रंथ काल का प्रतिबिंब है, ऐतिहासिक सिंहावलोकन है और भारतीय मानवीय मूल्यों में घटित परिवर्तनकामी सोच की परिचिति भी है। नौटियालजी केंद्र बिन्दु हैं और हैं माध्यम पुरुष भी। 'हिन्दी पत्रकारिता के बढ़ते चरण' तीख खंडों में विभक्त है। तीन सौ बारह पृष्ठों की पुस्तक के बासठ आलेखों में विद्वानों ने प्रभूत सामग्री उपलब्ध कराई है। प्रथम खंड 'व्यक्तित्व', द्वितीय खंड 'हिन्दी पत्रकारिता' और तृतीय खंड 'नंदकिशोर नौटियाल : कुछ चुनी हुई रचनाएँ' हैं।

प्रथम खंड 'व्यक्तित्व' के अन्तर्गत नौटियालजी के परिजनों, पुरजनों और सुधी विद्वानों के आलेख प्रस्तुत हें। मूलतः व्यक्तित्व और कृतित्व के विविध पक्षीय रेखांकन में उनके दिये पक्षों का प्रकाशन इस दृष्टि से महत्त्वपूर्ण है कि उनकी रचना-प्रक्रिया को जानना सरल हो जाता है। उनकी जीवन-दृष्टि के निर्माण-तत्वों की विश्वसनीयता विवृति हो जाती है। आरंभिक जीवन की क्रिया-प्रतिक्रिया के आत्मकथा के अभाव की पूर्ति भी होती है।

रुक्मिणी नौटियाल रचित आलेख 'नौटियालजी : निश्छल स्वभाव तथा संकल्पित व्यक्ति' में पत्नी की दृष्टि से मधुर दाम्पत्य जीवन के विविध रंगी चित्र अंकित हैं और युवा नौटियालजी के कर्मठ जीवन का परिचय भी है। भारत नौटियाल लिखित 'मेरे पापा' उनके पारिवारिक व्यक्तित्व का मधुर चित्र है।

नौटियालजी हिन्दी 'ब्लिट्ज' के संपादक रहे हैं। डॉ.राममनोहर त्रिपाठी उनके अभिन्न मित्र हैं।

उन्होंने 'हिन्दी पत्रकारिता की मशाल नंदकिशोर नौटियाल' लेख में आरंभिक इतिहास को खँगाला है। 1962 ई. में स्वर्गीय ख्वाजा अहमद अब्बास और त्रिपाठीजी ने 'ब्लिट्ज' के संपादक और स्वामी आर.के.करंजिया को हिन्दी संस्करण निकालने का सुझाव दिया था। प्रधानमंत्री नेहरू की नीतियों के समर्थनवश समाचार पत्र की आवश्यकता थी। 1962 ई. में हिन्दी 'ब्लिट्ज' पत्र का अनेक शंकाओं के बाद प्रकाशन आरंभ हुआ। श्री मुनीश सक्सेना संस्थापक संपादक और श्री नंदकिशोर नौटियाल संस्थापक - सहायक संपादक बने। हिन्दी पत्रकारिता जगत में हिन्दी 'ब्लिट्ज' की लोकप्रियता लोकविश्रुत है। राष्ट्रहित में नौटियालजी की बेबाक ध्वनि सत्ता एवं धर्म के प्रति निष्पक्ष थी। वे राष्ट्रीय और सामाजिक दायित्व का निर्वाह कर रहे थे। उनका ध्यान जनभाषा की प्रतिष्ठा पर था। साथ ही भाषिक स्तर पर वे नई लीक बना रहे थे। पत्रकारिता की भाषा इसके पूर्व अनुवादजनित क्लिष्ट थी, तत्समयुक्त थी। त्रिपाठीजी स्मरण करते हैं- उर्दू के शब्द अपने वास्तविक तलफ्फुज़ के सौंदर्य के साथ हिन्दी में विराजे रहें, इसका भी ध्यान हिन्दी 'ब्लिट्ज' में किया जाता था। भाषा तथा समसामयिकता जागरुकता का स्तर ऊँचा होने के कारण यह पत्र उनके संपादनकाल में तीन लाख से ऊपर तक पहुँच गया था। उनकी भाषा-नीति के अंतर्गत हिन्दी-उर्दू समन्वय को पत्रकारिता में बल मिला। डॉ.त्रिभुवन राय का आलेख विचार दृष्टि और भाषा' समकालीन पत्रकारिता के संदर्भ में नौटियालजी के कृतित्व का तात्त्विक विवेचन है। साथ ही उनके जीवन मूल्यों का महत्त्व सिद्ध करता है कि प्रतिकूल परिस्थितियों में भी निज वैचारिक पक्ष को किस प्रकार संप्रेक्षित करते रहना है।

नौटियालजी का जागरूक पत्रकार अपने समसामयिक परिदृश्य, जीवन-प्रवाह एवं सांस्कृतिक चक्र को खुली आँखों से देखता है। उनके समर्थनीय तत्त्वों का पुरजोर समर्थन करता है, परंतु अस्वस्थ जीवन प्रवृत्तियों, घातक राजनीतिक हथकंडों और मानवीय स्वतंत्रता, समानता एवं बंधुता के मार्ग में काँटे बिछाने वाली दुष्टताओं के विरुद्ध खुलकर प्रहार भी करता है।

डॉ.त्रिभुवनजी ने उनकी भाषिक समृद्धि का वर्गीकृत सोदाहरण परिचय दिया है। तत्सम प्रधान भाषा, उर्दू प्रधान भाषा रूप, अंगरेजी प्रधान भाषा रूप के अन्तर्गत नौटियाल-साहित्य का आकलन उत्तम सामग्री प्रस्तुत करता है।

डॉ.सुशील गुप्ता का लेख 'परिप्रेक्ष्यः विसंगतियों पर प्रहार' में रचना के माध्यम से लेखकीय पत्रकारिता की रीतियों-नीतियों की समीक्षा है। मृगेंद्र राय नौटियालजी की सतत जागरूक सोच को सम्मुख रखते हैं। डॉ.राजम नटराजन पिल्लै व्यक्तित्व के उदार पक्षों की व्याख्या करती है। 'नंदकिशोर नौटियालः संघर्षशील कालखंड में एक जीवन' लेख वस्तुतः डॉ.वसुधा सहस्रबुद्धे द्वारा लिखित जीवनी है, जिसमें भारतीय राजनीति, समाज साहित्य और उससे प्रभावित-परिचालित जागरूक नौटियालजी का कर्मठ जीवन उद्घाटित है। हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक कन्हैयालाल नंदन कृत 'विचारों के बीज बोने वाला आला दोस्त!' मित्र के कोमल-कठोर पक्षों का संस्मरण है। 'समाज को लिखकर और बोलकर बदलना नौटियालजी का सपना है। कहने का आत्मविश्वास तार्किक है। व्यक्तित्व के नवीन सत्य का प्रकाशन है। डॉ.महावीर अधिकारी, बालकवि बैरागी प्रभृति लेखकों ने उनके अवदान को स्मरण किया है।

प्रस्तुत ग्रंथ का एक महत्त्वपूर्ण आलेख शब्दशिल्पी और कर्मठ पत्रकार अरविंद कुमार लिखित 'नंदकिशोर नौटियालः क्या हैं तुम्हारे हाल?' प्रकारांतर से हिन्दी पत्रकारिता के दीर्घकाल का अवलोकन है। विकास की दृष्टि से वह समय 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान', 'दिनमान', 'सरिता', 'पराग', 'माधुरी' इत्यादि की उपस्थिति के कारण पत्रिकाओं का स्वर्णकाल था। अरविंदजी कम्युनिस्ट पार्टी से नौटियालजी और स्वयं के जुड़ाव की घटनाओं का स्मरण करते हुए मित्र के पत्रकार व्यक्तित्व को लक्षित करते हैं, किन्तु इस रचना की विशेषता लेखकीय दूरदृष्टि और समालोचकीय चेतना को लेकर है। हिन्दी पत्रकारिता के आरंभिक दिन, तकनीकी विकास, पाठकीय चेतना, संपादकीय प्राथमिकताएँ और प्रकाशन के प्रयोजन का यथार्थ विश्लेषण इस रूप में है कि उस युग का पूर्ण सत्य शब्दबद्ध हो गया है। सामाजिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक बदलावों के बीच हिन्दी पत्रकारिता के लिए कितना स्थान बचा था और उन संकीर्ण अथवा प्रतिरोधी शक्तियों सो लोहा लेकर वह किन-किन उतार-चढ़ावों से निकली सिमटी है, इसका सप्रमाण विवेचन है। 'धर्मयुग' 'दिनमान', 'सारिका', 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' 'माधुरी', 'पराग' इत्यादि के आरंभ और अंत का आकलन चिंतन के लिए अपेक्षित सामग्री जुटाता है और प्रश्न छोड़ जाता है। आज बहुत कम पाठक जानते हैं कि 'माधुरी' का पूर्व नाम 'सुचित्रा' था और स्वर्गीय मोहन राकेश ने 'सरिता' के एक अंक का संपादन किया था। यह आलेख उस कालखंड का वातायन है। कतिपय कसौटियाँ हैं, प्रश्न भी है और सांस्थिक व्यक्तित्व के प्रभाव-वृत्त के लाभ-हानि का परीक्षण भी है, जिससे हिन्दी एवं अंग्रेजी पत्रकारिता के आरोह-अवरोह को समझा जा सकता है। अंग्रेजी-पत्रों के लिए वे कहते हैं- ''जितना पैसा इनके एक अंक के मुद्रण पर खर्च किया जाता है, उतना किसी हिन्दी पत्रिका पर पूरे समय में भी नहीं होता। व्यावसायिक प्रयोजन को लेकर उनका प्रश्न विचारणीय है - ''हर व्यवसायी पहले व्यवसायी होता है। तत्काल लाभ कमाना उसके लिए प्राथमिकता है। अन्यथा वह ज्यादा दिन टिक नहीं सकता, लेकिन भविष्य के बाजारों को पहले से तैयार करना और साधना भी व्यावसायिकता है और दूरदर्शी व्यावसायिकता है। आलेख अनेक विचारोत्तेजक प्रश्न छोड़ जाता है। भारतीय विद्या भवन से प्रकाशित 'नवनीत' के संपादक विश्वनाथ सचदेव 'एक लापरवाह उदारता' के अंतर्गत अपने मित्र 'पर्वत पुत्र' नौटियालजी की सहृदयता, विनम्रता, उदारता और मधुभाषिता का स्मरण करते हैं। संपादक त्रिभुवनजी ने सर्वपक्षीय आलेखों का संचयन कर ग्रंथ का संतुलन बनाए रखा है। नौटियालजी के वामपंथीय विचारों और धर्मनिरपेक्ष लोकतांत्रिक क्रियाकलापों का विवरण है। आलोक भट्टाचार्य (जनवादी हिन्दी पत्रकारिता का हलधर), ओमप्रकाश मंत्री (व्यक्ति नहीं संस्था है यह व्यक्ति), रामगोपाल इगलसिया (संपादन कला का उस्ताद) लेख ध्यातव्य हैं। गोपाल शर्मा कृत 'तुम विषपायी जनम के!' आलेख में वे उनकी संपादकीय नीति के संदर्भ में उनके लेखकीय व्यक्तित्व को आगे रखते हैं-

'लेखक क्या कहना चाहता है, पत्रकार क्या खबर लिखना चाहता है, पत्र लेखक ने अपने पत्र में क्या कहने की असफल कोशिश की है, इसे यह समय की टेबल पर, संपादक की कुर्सी पर बैठकर नहीं संपादित करता, बल्कि लेखक की सोच में डूबकर संपादित करता है। तब यह निरा लेखक होता है। इसका संपादक जैसे ही कलम हाथ में थामता है लिखने वाले लेखक में 'डिजाल्व' हो जाता है।

नौटियालजी वामपंथ के सक्रिय समर्थक थे, कालांतर में उनका मोहभंग हुआ। जनवादी लेखक संघ और कामरेडों के प्रति उनकी सहानुभूति किस सीमा तक थी, यह जानना रोचक है। साहित्यकार जगदंगा प्रसाद दीक्षित की गिरफ्तारी पर वे पुलिस व्यवस्था और सरकार की नाक में दम कर देते हैं। एक व्यक्ति अनेक मान्यताओं, व्यक्तियों, स्थितियों, आग्रहों से टकराता और उसे सुलझाता अपनी राह बनाए चल रहा हो तो इसे उसका विरोधाभासी व्यक्तित्व मात्र न कहकर पत्रकारिता में महापरंपरा स्थापित करना कहेंगे। सन 1948 ई. से आरंभ उनका पत्रकार जीवन 'नवभारत' (मुंबई) से होता हुआ मुंबई से प्रकाशित 'लोकमान्य' (दैनिक, 'लोकमत' (नागपुर) तक जाता है। आगे यह दिल्ली 'मजदूर जनता', 'सरिता', 'नयी कहानियाँ', 'हिन्दी टाइम्स', 'पर्वतीय जन', 'हिमालय टाइम्स' तक धारा जाती है। हिन्दी 'ब्लिट्ज' के उपरांत 1993 ई. से 'नूतन सबेरा' साप्ताहिक का प्रकाशन आरंभ है।

'वैचारिक संघर्ष का दस्तावेज' आलेख में डॉ.विनय नौटियाल रचित 'परिप्रेक्ष्य' पुस्तक की रचनाओं का सार-भाव प्रस्तुत करते हैं। लेखों की समकालीनता और उसके वैशिष्ट्य का परिचय देते हैं। यहाँ सामाजिक, राजनीतिक आदि प्रश्न उठाकर तत्कालीन जीवन में उसकी महत्ता पर विचार है।

डॉ.विनय लेखकीय प्रयोजन को प्रभावशाली ढंग से रखने के समर्थक हैं- *'बातें इतनी अधिक गहराई से और समस्या इतनी अधिक विराट रूप साक्षात्कारों तथा लेखों में उभरी कि बार-बार किर्चे-किर्चे होता यथार्थ हमारे सामने आता है।'* समय को समय से पूर्व लक्षित करने वाले नौटियालजी का साहित्य भारतीय राजनीति और समाज के निरीक्षण-परीक्षण में सहायक है।

ग्रंथ के द्वितीय खंड 'हिन्दी पत्रकारिता' के ग्यारह लेख हिन्दी पत्रकारिता के उद्भव और विकास का आकलन है। मिशनरी पत्रकारिता की राह कभी सरल नहीं रही है। मार्ग की कठिनाइयों और चुनौतियों के मध्य इस यात्रा की सफलता प्रेरणाबोध है। डॉ.राजम नटराजन पिल्लै रचित 'हिन्दी के सूर्यधर्मी साहित्यकारः अग्निधर्मी पत्रकार' (1857-1947) आलेख आरंभिक पत्रिकाओं की राष्ट्रसेवा और क्रांति की अग्नि प्रज्वलित करने वाले संपादकों-प्रकाशकों के अविस्मरणीय योगदान का परिचय है। सही मानो में हिन्दी पत्रकारिता का इतिहास राजनीतिक इतिहास भी है- *'पत्रकार बनने का अर्थ होता था 'क्रांतिकारी' बनना। संपादकीय लिखने का अर्थ होता था एक पैर जेल की ओर बढ़ा देना।'* अतीत एक सीख है और प्रेरणा भी है। प्राणोत्सर्ग करने वाले क्रांतिकारी संपादकों ने पत्रकारिता की नींव रखी थी, जिसका प्रयोजन व्यावसायिक नहीं हो सकता था।

डॉ.त्रिभुवन राय लिखित 'पत्रकारिता की चुनौतियाँ' आलेख तथ्यात्मक और विश्लेषणात्मक है। पत्रकारिता सदा से एक चुनौती रही है। 30 मई 1826 ई. को कलकत्ता से प्रकाशित होने वाला हिन्दी के प्रथम पत्र 'उदन्त' मार्तंड' को निकालने वाले पंडित युगलकिशोर के समक्ष जितनी और जैसी चुनौतियाँ थीं, प्रकारांतर से समयभिन्नता और स्थानभिन्नता के बावजूद बाद के समयों में भी वैसी ही चुनौतियाँ रही हैं। अंग्रेजों के स्थान पर पूँजीपति आए। बस कार्यशैली बदली है। विद्वान समालोचक त्रिभुवनजी ने विस्तार से उन चुनौतियों को उठाकर सार्थक समाधान भी प्रस्तुत किए हैं। मिशन से व्यवसाय में परिवर्तित पत्रकारिता समाज और राजनीति से जब-तब टकराती ही है, अब विश्व के ग्लोबल गाँव बनने के उपरांत तथा सूचना के महाविस्फोट वाले वर्तमान समय में पत्रकारिता के महत्त्व और उसकी कल्याणकारी शक्ति को बनाए रखना कठिन से कठिनतर हो रहा है। विधागत समस्त पक्षों पर विचार है। पत्रकार की योग्यता एवं अधिकार, भारतीय मौलिक परिवेश, लोकमानस की सांस्कृतिक रुचि, भाषागत विशेषता और राष्ट्रीय-अंतरराष्ट्रीय प्रभावों से टकराती युवा-शक्ति की अपेक्षाओं के मध्य मिशन रूप में पत्रकारिता को विकसित करना चुनौतीपूर्ण कार्य है। लेखकीय अपेक्षा सजग भारतीय पाठक की अपेक्षा - 'पत्रकारिता की श्रेष्ठ की कसौटी आज असल में व्यवसाय के साथ-साथ मानवीयता को साधने और उसके संरक्षण में निहित है। इसी में उसकी गरिमा है।...

डॉ.राममनोहर त्रिपाठी 'हिन्दी पत्रकारिता, आधी सदी की विचार यात्रा' के अन्तर्गत पौने दो सौ वर्षों की हिन्दी पत्रकारिता की तुलना में विगत पचास वर्ष की महत्त्वपूर्ण उपलब्धियों का खाका खींचते हैं। चुनौतियों के बावजूद व्यावसायिकता के प्रवेश होने पर भी नई तकनीकी उपलब्धियों के साथ अंग्रेजी और भाषायी पत्रकारिता का स्वरूप सम्मुख आया है। हिन्दी पत्रकारों का समर्पित भाव आज पूर्ववत नहीं है, कम है, और न ही गणेश शंकर विद्यार्थी, पराड़कर, द्विवेदी जैसे क्रांतिधर्मा लोग हैं। सम्प्रति समाचारों-विचारों के स्थान पर विज्ञापन प्रधान पत्रकारिता के अंदर-बाहर का सच जानना चौंकाता नहीं है। कृष्ण वात्स्यायन 'भविष्य तो उज्जवलतम है बशर्ते' में हिन्दी की लोकप्रियता एवं निरंतर वृद्धिशील प्रसार संख्या के बाद भी बलात उत्पन्न की गई बाधाओं पर प्रश्न उठाते हैं। नंदकिशोर नौटियाल लिखित 'हिन्दी और हिन्दी के पत्र-पत्रिकाएँ' में उसकी वर्तमान स्थिति, समस्याएँ और गैर व्यावसायिक छोटे अखबारों की चुनौतियों पर विचार है। संपादक के रूप में उनके द्वारा किए गए भाषागत प्रयोग का उल्लेख है।

तृतीय खंड 'नंदकिशोर नौटियाल : कुछ चुनी हुई रचनाएँ' के अन्तर्गत-नौटियालजी के लेख सम्मिलित हैं। रचनाओं के द्वारा संपादक ने अपनी विचार-दृष्टि, जीवन-दर्शन और रचनात्मक कौशल का दर्शन कराया है। इस ग्रंथ में उनकी पंद्रह रचनाएँ सम्मिलित हैं। संपादक ने रचना-चयन के समय विषय-वैविध्य और विधा-वैविध्य का ध्यान रखा है। आलेख संक्षिप्त है, तथ्य पर्याप्त हैं। सरल-सामान्य भाषा-शैली में अभिव्यंजना का कौशल प्रशंसनीय है। व्यक्तिपरक रचनाओं में नेहरू और राजेंद्र बाबू जैसे राजनेताओं, माखनलाल चतुर्वेदी, विश्वंभरनाथ उपाध्याय जैसे साहित्यकारों और साध्वी पन्ना देवी की संक्षिप्त जीवनी प्रस्तुत है। जीवनी के अन्तर्गत देशकालादि के संदर्भ में व्यक्तित्व को समग्रतः दिखाने का सफल प्रयास है। वे वैचारिक निबंधों में साम्प्रदायिकता, राजनीति में आदर्शों का पतन, अमर्यादित आचरण, निर्धनता और अशिक्षा से ग्रस्त समाज, उत्तराखंड का विकास जैसे गंभीर विषयों को लेकर चिंता प्रकट करते हैं। वे कभी परंपराओं को स्मरण कराकर और कभी कटाक्ष करते हुए विषय का प्रतिपादन करते हैं। संस्मरणात्मक अंश भी हैं। यात्रा-संस्मरण के दो लेख अमरीका और कनाडा प्रवास की देन हैं। नौटियालजी तटस्थ भाव से स्थानगत विशेषताओं का परिचय देते हैं, यहाँ तुलनात्मक दृष्टि सर्वोपरि है। अमरीका और कनाड़ा की समृद्धि सभी देखते हैं और उनकी प्रशंसा करते नहीं थकते, किन्तु सत्य का दूसरा पहलू भी है। वैभव के मध्य निर्धनता है। 'संपन्न अमरीका : विपन्न अमरीका' और 'कनाड़ा : जहाँ आजादी का पहला बिगुल बजा' सच की पड़ताल है।

डॉ.भागीरथ दीक्षित कृत 'भगवदगीता : एक नया अध्ययन' भाष्य ग्रंथ है। नौटियालजी के मन में पुस्तक को लेकर जाग्रत प्रश्नों पर आधारित साक्षात्कार है। गीता का प्रयोजन, महत्त्व, गीता-परंपरा के ग्रंथों से इनकी मौलिकता इत्यादि पर तात्त्विक संवाद है। प्रश्नोत्तरी के द्वारा भगवद्गीता की पुनर्व्याख्या का महत्त्व है। हिन्दी की वर्तमान स्थिति, उसकी समस्याओं और सरकारी नीतियों कों लेकर उनकी चिंता से सम्बद्ध रचना है। 'राष्ट्रीय एकता में हिन्दी पत्रिका का योगदान' आलेख परंपरा की समझ और उनकी समकालीन सोच का परिणाम है। अरविंद कुमार और कुसुम कुमार लिखित 'समांतर कोष' (1996 ई.) के निर्माण के लिए प्रशंसनात्मक भाव व्यक्त हैं। श्री रमाकांत शर्मा उदभ्रांत कृत 'त्रेता' काव्यकृति की समीक्षा है।

वस्तुतः संपादक त्रिभुवनजी ने रचनाओं के माध्यम से नंदकिशोर नौटियालजी की सर्वपक्षीय सर्जनात्मक प्रतिभा का परिचय कराया है। हिन्दी भाषा के प्रति उनके विचार उनके द्वारा व्यवहृत भाषिक प्रयोगों से स्वतः समझा जा सकता है। मौलिकताओं के कारण वे सफल सांस्थिक व्यक्तित्व कहलाए। हिन्दी 'बिल्ट्ज' तथा अन्यान्य पत्रों के माध्यम से इनका योगदान पत्रकारों के लिए प्रेरणा है। हिन्दी पत्रकारिता में सुर्खियाँ देने की कला की प्रतिष्ठा ध्यातव्य है। संपादक और लेखक के मेल में लिखित समाचारों की पाठक-के मध्य विश्वसनीयता इतनी थी कि पत्र लगातार लोकप्रिय होते गए। उसका स्वरूप राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर मान्य हुआ।

डॉ.त्रिभुवन राय ने 'हिन्दी पत्रकारिता के बढ़ते चरण' का संपादन कर संचार-संप्रेषण-संसार को समृद्ध किया है। प्रस्तुत ग्रंथ के माध्यम से हिन्दी पत्रकारिता को तो समझा ही जा सकता है, साथ ही समकालीन हिन्दी-साहित्य की दशा-दिशा का भी ज्ञान मिलता है।

रेखा प्रियश्री द्वारा डॉ.नीरज कुमार सिन्हा
खजांची रोड, (महावीर स्थान के सामने)
पटना - 800004 (बिहार)

प्रकाशकों/लेखकों से अनुरोध

समावर्तन के सम्पादक मण्डल के अध्यक्ष वरिष्ठ कथाकार, आलोचक प्रो. रमेश दवे (भोपाल) के अनुसार उन्हें समीक्षार्थ पुस्तकें सीधे नहीं भेजी जाकर 'समावर्तन' के उज्जैन कार्यालय को ही भेजना सुनिश्चित करें।

- संपादक

संवेदना का सटीक उपयोग : संकल्प और सपने

संतोष सुपेकर

विदाई और खुशी के पलों में जो स्थान भावनाओं का होता है, वही स्थान साहित्य में संवेदनाओं का है। साहित्यकार का संवेदनशील होना अति आवश्यक है या कहा जाए कि जो संवेदनशील हो वही साहित्य हो सकता है, या ग्लोबल हो सकता है तो गलत न होगा। साहित्य का कोई भी रूप हो, कोई विचारधारा हो पर उसके साथ-साथ हृदय को स्पर्श करती संवेदना होना आवश्यक है। वरिष्ठ लघु कथाकार श्री सतीशराज पुष्करणा के अनुसार बिना संवेदना, रचना, रचना नहीं एक वैचारिक नारा भर बनकर यह जाती है। अस्सी के दशक से निरन्तर सृजनरत, वरिष्ठ साहित्यकार, कवि, गीतकार श्री सदाशिव कौतुक ने अपने सद्यः प्रकाशित प्रथम लघुकथा संग्रह 'संकल्प और सपने' के द्वारा यह सिद्ध करने का प्रयास किया है कि संवेदना का सटीक उपयोग लघुकथा को श्रेष्ठता की ऊंचाई तक ले जाने में समर्थ होता है। कौतुक जी उस पीढ़ी के रचनाकार हैं जिसने प्राचीन परम्परा को निष्ठा के साथ नए आयामों की ओर अग्रसर किया है। समाज में बढ़ती संवेदनहीनता, निष्ठुरता के कारण लघुकथा में संवेदनात्मक विचारों की संभावनाएँ बढ़ी हैं और इस तथ्य का भरपूर उपयोग कौतुकजी ने अपनी रचनाओं के लिए किया है। वे चीज़ों और घटनाओं को सिर्फ देखने के नहीं, उनके पार्श्व में झाँकने के पक्षधर रहे हैं।

संग्रह की भूमिका वरिष्ठ लघुकथाकार श्री प्रतापसिंह सोढ़ी ने लिखी है जिसमें उन्होंने इन लघुकथाओं को 'पूर्ण सत्य को जीती अंतर्मनों की गाथाएँ' निरूपित किया है, वहीं श्री माधव नागदा ने अपने आलेख में इन रचनाओं को निम्न वर्ग की बेहतरी और उसके स्वाभिमान को अखण्ड बनाए रखने की चिंताएँ बताया है। पर अपने आत्मकथ्य में कौतुकजी ने एक अत्यन्त ज्वलंत चिंता व्यक्त की है जो कि उल्लेखनीय है, उन्होंने लघुकथा को चुटकुला बताए जाने पर तीव्र आपत्ति ली है और चुटकुलापन को लघुकथा के लिए सबसे बड़ा खतरा बताया है, उनकी यह सृजनात्मक चिंता उचित भी है और लघु कथा के हित में भी। इस संदर्भ में वरिष्ठ लघुकथाकार श्री रामेश्वर कांबोज 'हिमांशु' की टिप्पणी प्रासंगिक है और कौतुक जी जैसे चिंतकों के लिए राहतभरी भी कि 'जो अनुभूतिजन्य संवेदना को नहीं समझते, संकेतितार्थ को नहीं पकड़ पाते, उन्हें कोई लघुकथा, चुटकुला लगे तो क्या किया जा सकता है।

88 पृष्ठों और 71 लघुकथाओं के इस संग्रह में कौतुकजी ने आज के जीवन के विभिन्न पहलूओं, विद्रूपताओं, विसंगतियों को करीब से छुआ है। 'संकल्प' में संबोधन के तरीके को रेखांकित करते हुए उसके माध्यम से जीवन में आगे बढ़ने का संदेश है। 'युक्ति' में भ्रष्टाचार की दलदल में मजबूरन फंसी नौकरानियों को चरित्रहीन मालिकों से 'खतरे' का चित्रण है। 'संवेदनहीन' में रहमदिल नर्स की संवेदना प्रभावित करती है। 'परिवर्तन' पढ़े लिखे, पर भटके हुए युवाओं का मास्टरजी के एक वाक्य द्वारा हृदय परिवर्तन का उलटफेर है। पेट भरने को मोहताज, नेत्रहीन महिला, निःशुल्क ऑपरेशन द्वारा भी अपने आँखें चाहने की इच्छुक नहीं है क्योंकि उसका अंधत्व ही उसके परिवार का पेट भर सकता है, 'नहीं चाहिये आँखें' में सिस्टम की ऐसी 'नेत्रहीनता' मन को उद्वेलित कर देती है। 'संस्कार' में शराबखोर पिता को देख बच्चों के बिगड़ जाने का सजीव चित्रण है तो 'उल्टी गंगा' में आज के विवाह समारोहों में 'दुल्हा-दुल्हन के बहुत देर से मंच पर पहुँचने की एक नई सामाजिक विसंगति पर प्रश्न चिह्न लगाया गया है। माँ के ममत्व को दर्शाती 'प्रतिध्वनि' एक मार्मिक रचना है। 'चिंगारियाँ', में भ्रष्ट व्यवस्था की पोल खोलते हुए लेखक ने

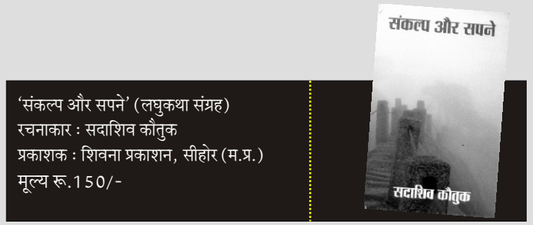

'संकल्प और सपने' (लघुकथा संग्रह)
रचनाकार : सदाशिव कौतुक
प्रकाशक : शिवना प्रकाशन, सीहोर (म.प्र.)
मूल्य रू.150/-

पात्र से एक कटुसत्य कहलवाया है- पसीने के पैसे की तो सीमा होती है पर रिश्वत के पैसे की कोई सीमा नहीं है।' पूँजीवादी सोच, सस्ते श्रम को पैदा करने का कैसे जुगाड़ करती है इसका चिट्ठा खोलती है 'चातुर्य'।

व्यक्तिवाद, पूंजीवाद और यंत्रवाद के कारण आज मनुष्य के जीवन में अपनापन, प्रेम स्नेह, संस्कार समाप्त होते जा रहे हैं, अपनों को धोखा देना, एहसानफरामोश बन जाना आम शगल हो गया है, 'छलावा' संग्रह की एक ऐसी ही सशक्त और झकझोर देने वाली रचना है जिसमें निष्ठुर बेटा-बहू वृद्ध माँ को धोखे में रख, मकान बेचकर, उसे हवाअ अड्डे पर छोड़कर अमेरिका के लिए उड़ जाते हैं। अनुभूति की गहराई, परिवेश,पात्र, अपनों से धोखा इस लघुकथा में तीव्र रूप से प्रकट होते हैं। 'धुआँ', ग्राहक की तलाश' तथा 'समानता' जैसी कुछ रचनाओं में लेखकीय उपस्थिति एवं अतिशय स्पष्टीकरण है जो लघुकथा की मारक क्षमता को कम करता है, वहीं शीर्षक लघुकथा का न होना दुविधा उत्पन्न करता है। बहरहाल, विभिन्न विधाओं में 50 कृतियों के लेखक सदाशिव कौतुक जी वैश्विक चेतना के समर्थ लघुकथाकार हैं, शिल्प भाषा और कथानक के स्तर पर उन्होंने अपनी अधिकांश लघुकथाओं के द्वारा सार्थक संदेश देने का प्रयास किया है, अपने लेखन से मूल्य जनित पात्रों की नई मर्यादाएँ गढ़ी हैं' और उम्मीद है कि उनकी इन रचनाओं से लघुकथा की विस्फोटक शक्ति एक नई करवट लेगी।

31, सुदामानगर, उज्जैन (म.प्र.)
मो.9424816096

वाणी दवे शर्मा की पुस्तक पुरस्कृत

सिरसा (हरियाणा)। गत दिनों हरियाणा प्रादेशिक हिन्दी साहित्य सम्मेलन सिरसा द्वारा संचालित तथा हरियाणा प्रादेशिक लघुकथा मंच द्वारा आयोजित अखिल भारतीय हिन्दी एकल लघुकथा संग्रह प्रतियोगिता 2017 में समावर्तन की सह संपादक **श्रीमती वाणी दवे शर्मा** को उनके लघुकथा संग्रह 'अस्थायी चार दीवारी' को **श्री खुशीराम देवगुण स्मृति द्वितीय पुरस्कार** स्वरूप प्रशस्ति पत्र एवं 3100/- की धनराशि प्रदान कर पुरस्कृत किया गया। यह पुरस्कार श्रीमती वाणी दवे शर्मा की अनुपस्थिति में वरिष्ठ लघुकथाकार श्री प्रतापसिंह सोढ़ी (इन्दौर) ने देश के कई ख्यात लघुकथाकारों की उपस्थिति में ग्रहण किया। ज्ञातव्य है कि इस महत्त्वपूर्ण आयोजन के मुख्य संयोजक ख्यात लघुकथाकार श्री रूप देवगुण तथा संयोजक शील कौशिक ने वाणी दवे शर्मा के उज्ज्वल भविष्य की कामना की है। 'समावर्तन' परिवार द्वारा भी वाणी दवे शर्मा को इस उपलब्धि पर हार्दिक बधाई दी गई।

रवीन्द्र भवन में 'दृश्यांतर'

भोपाल। गत दिनों रवीन्द्र भवन का सभागार 'दृश्यांतर' की नायाब छवियों के बीच अनूठे और रोचक अनुभव की मिसाल बना। जब साहित्य, संस्कृति और विज्ञान के क्षेत्र में समान रूप से सक्रिय संतोष चौबे के बहुचर्चित और पुरस्कृत उपन्यास 'जलतरंग', उनकी कहानी 'एक विचित्र प्रेम कथा' तथा चेखव की अनुवादित कथा 'तम्बाखू के खतरों' पर एक बयान' के आसपास नाटकीय ताने-बाने को दर्शकों ने भरपूर सराहा। टैगोर विश्वविद्यालय के विश्व कला और संस्कृति केन्द्र द्वारा संयोजित यह आयोजन उपन्यास और कहानी की नाट्य संभावनाओं तथा नई शैलियों के रूबरू होने का भी दुर्लभ अवसर बना। वरिष्ठ रंगकर्मी असीम दुबे ने चौबे की कहानियों का सुन्दर नाट्य शिल्प तैयार किया।

इस अवसर पर अपने रचनात्मक अनुभव साझा करते हुए संतोष चौबे ने बताया कि वे अपने उपन्यास और कहानियों में सदा ही नाटकीय आरोह-अवरोह के हिमायती रहे हैं। टैगोर कला केन्द्र के निदेशक और कला समीक्षक विनय उपाध्याय ने उपन्यास और नाटक के बीच कलात्मक आपसदारी के लहलुओं पर प्रकाश डाला। मंचन से पूर्व 'जलतरंग' पर केन्द्रित समीक्षा पुस्तक 'संगत' का लोकार्पण हुआ। मोहन सगोरिया ने विभिन्न आलोचकों के आलेखों और टिप्पणियों को अपने संपादन में संग्रहित किया है। रंगकर्मी असीम दुबे के निर्देशन में चौबे की कहानी 'एक विचित्र प्रेम कथा' को रंगमंच पर देखना दर्शकों के लिए अल्हदा सा अनुभव था। एंटोन चेखव की मूल रशियन कहानी 'तम्बाखू के खतरों पर एक बयान' को भी असीम दुबे ने मंच पर उसकी मौलिकता में बरतने की पहल की। संतोष चौबे ने इस कहानी का हिन्दी में अनुवाद किया है। समारोह का आयोजन वनमाली सृजनपीठ, आईसेक्ट स्टुडियो, रंग संवाद और इलेक्ट्रॉनिकी के सहयोग से किया गया।

टैगोर विश्व कला एवं संस्कृति केन्द्र द्वारा जारी

सदाशिव कौतुक को सम्मान

इंदौर। गत दिनों खरगोन में 'अखिल निमाड़ लोक परिषद (पंजी.) द्वारा वरिष्ठ साहित्यकार श्री सदाशिव कौतुक को वरिष्ठ निमाड़ी गीतकार स्व. राजाबाबू डोंगरे की स्मृति में 'संत ब्रह्मगीर सम्मान' से अलंकृत किया गया। ज्ञातव्य है कि श्री कौतुक को यह सम्मान निमाड़ और हिन्दी में उनकी सतत साहित्य साधना हेतु निमाड़ एवं मालवा के असंख्य रचनाकरों की उपस्थिति में एक भव्य समारोह में प्रदान किया गया।

सूर्यबाला पर केंद्रित 'समीचीन' का अंक

पिछले दिनों सोमैया कॉलेज के सभागार में अर्द्धवार्षिक पत्रिका 'समीचीन' के वरिष्ठ रचनाकार सूर्यबाला पर केंद्रित अंक का लोकार्पण संपन्न हुआ। पत्रिका के इस अंक के अतिथि संपादन का दायित्व डॉ.सतीश पांडेय तथा डॉ.प्रवीणचंद्र विष्ट ने उठाया है। अंक में सर्वश्री नंद भारद्वाज, डॉ.श्यामसुंदर पाण्डेय, डॉ.नीरा नाहटा, चित्रा देसाई, गंगाचरण सिंह,

डॉ.सतीश पांडेय, डॉ.शशि मिश्र आदि के अलेख शामिल हैं।

सूर्यबालाजी की उपस्थिति में हुए लोकार्पण के उपरांत प्रायः सभी वक्ताओं ने सूर्यबाला के कृतित्व की मार्मिकता, उनके स्त्री पात्रों की आत्मविवेकी दृष्टि, समायिक उछालों से बचकर लिखने की उनकी प्रवृत्ति तथा उनके फार्मूला मुक्त लेखन की चर्चा की। चर्चा के अंत में सूर्यबाला ने कहा कि एक मनमुताबिक लिखकर पूरी हुई रचना से मिली खुशी और सुख से बड़ा कोई पुरस्कार लेखक को नहीं मिल सकता।

प्रस्तुति : सूर्यबाला

असगर वजाहत की चित्र प्रदर्शनी का उद्घाटन

नई दिल्ली। गत दिनों विख्यात कला समीक्षक और लेखक प्रयाग शुक्ल ने कथाकार, नाटककार असगर वजाहत के चित्रों की प्रदर्शनी के उद्घाटन समारोह में कहा कि असगर विनम्रता से कहते हैं कि मैं चित्रकार नहीं लेखक हूँ, लेकिन उन्होंने रंगों के प्रयोग और प्रस्तुतीकरण की विविधता से चौंका दिया है। ऑल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफट्स सोसायटी की कला वीथी में आयोजित इस प्रदर्शनी के उद्घाटन समारोह में पंखुरी सिन्हा, सीरज सक्सेना,

विष्णु नागर और मंगलेश डबराल के काव्यपाठ को कला वीथी में चित्रों के बीच सुनना दर्शकों के लिए नया और आह्लादकारी अनुभवथा। प्रदर्शनी के क्यूरेटर तथा काव्यपाठ का संयोजन कर रहे प्रयाग शुक्ल ने दिल्ली के सांस्कृतिक परिदृश्य में इसे यादगार अनुभव बताया।

ज्ञातव्य है कि भारत में असगर वजाहत के चित्रों की प्रदर्शनी पहली बार लगी है यद्यपि पिछले माह ही हंगरी के शहर बुदापेश्त में उनके चित्रों का प्रदर्शन हुआ था। आयोजन में नया पथ के सम्पादक मुरली मनोहर प्रसाद सिंह, आलोचना के सम्पादक संजीव कुमार, आलोचक रेखा अवस्थी, कथाकार वंदना राग, कवि लीलाधर मंडलोई, कथाकार मधुसूदन आनंद, बनास जन के सम्पादक पल्लव, समीक्षक श्याम सुशील, लेखक मधुकर उपाध्याय, प्रकाशक मीरा जौहरी सहित बड़ी संख्या में साहित्य और कलाप्रेमी उपस्थित थे।

प्रस्तुति : हैदर अली

बिलासपुर में राष्ट्रीय व्यंग्य महोत्सव

बिलासपुर। गत दिनों राष्ट्रीय व्यंग्य महोत्सव का उद्घाटन स्थानीय अटलबिहारी वाजपेयी विश्वविद्यालय के सभागार में कुलपति प्रो.डॉ.गौरीदत्त शर्मा और डॉ.प्रेम जनमेजय ने किया। विशिष्ठ अतिथि हरीश पाठक, धीरेन्द्र अस्थाना, गिरीश पंकज, नीलकंठ पारटकर थे। महोत्सव की प्रस्तावना एवं स्वागत उद्बोधन बिलासा कला मंच के संस्थापक डॉ.सोमनाथ यादव ने किया। विमर्श-सत्र में व्यंग्य से मुठभेड़ की रचनात्मकता पर विमर्श और छत्तीसगढ़ी व्यंग्य का परिदृश्य विषय पर सर्वश्री डॉ.अजय पाठक, रमेश सोनी, विनोद साव, सुनील जैन राही ने अपने वक्तव्य प्रस्तुत किये। आयोजन में गद्य व्यंग्य पाठ तथा काव्य पाठ के सत्र भी हुए जिनमें दिल्ली, मुम्बई, उत्तराखण्ड, मध्यप्रदेश, उत्तरप्रदेश, हरियाणा, छत्तीसगढ़ आदि प्रदेशों के व्यंग्यकार कथाकार कवि एवं रचनाकार सम्मिलित हुए।

सम्मान समारोह में छः रचनाकारों को व्यंग्य यात्रा एवं शेष सहभागी साहित्यकारों को बिलासा सम्मान प्रदान किया गया। सांस्कृतिक संध्या में हिलेंद्र ठाकुर, ओमशंकर लिबर्टी एवं कलाकारों द्वारा छत्तीसगढ़ी बारहमासी की रंगझाझर प्रस्तुति से सबका मन मोहन लिया, संचालन डॉ.सोमनाथ यादव तथा आभार राजेंद्र मौर्य ने किया।

प्रस्तुति : रणविजय राव

छबिलकुमार मेहेर को हिन्दी सेवी सम्मान

हिन्दी माह में आयोजनों की शृंखला के अन्तर्गत मध्यप्रदेश राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, भोपाल की ओर से वर्ष 2018 का 'हिन्दीतर भाषी सेवी सम्मान' विश्वविद्यालय के हिन्दी अधिकारी डॉ.छबिल कुमार मेहेर को प्रदान किया गया है। 2 अक्टू 2018 को हिन्दी भवन, भोपाल में आयोजित एक भव्य समारोह में मध्यप्रदेश सरकार के लोकप्रिय राजस्वी मंत्री श्री उमाशंकर गुप्त ने शाल, श्रीफल एवं प्रशस्ति पत्र प्रदान कर डॉ.मेहेर को सम्मानित किया। उल्लेखनीय है कि डॉ.मेहेर को हाल ही में संस्कृत विभाग की ओर से 'हिन्दी भाषा-हिन्दी सेवी सम्मान' से भी सम्मानित किया गया है। डॉ.छबिल वर्तमान में डॉ.हरीसिंह गौर विश्वविद्यालय, सागर से प्रकाशित 'भाषा भारती' के सम्पादक एवं 'मध्यभारती' के प्राबंध सम्पादक भी हैं।

क्षितिज द्वारा रचनापाठ का आयोजन

इन्दौर। गत दिनों इंदौर के सृजनशील लेखकों की संस्था क्षितिज द्वारा रचनागोष्ठी का आयोजन वरिष्ठ साहित्यकार कांतिलाल ठाकरे की अध्यक्षता तथा डॉ.ओम ठाकुर के प्रमुख आतिथ्य में संपन्न हुआ। कार्यक्रम का संचालन डॉ.पुरुषोत्तम दुबे ने किया तथा आभार माना संस्था अध्यक्ष सतीश राठी ने। इस अवसर पर सर्वश्री राममूरत राही, जितेन्द्र गुप्ता, देवेन्द्र सिसौदिया, चैतन्य त्रिवेदी, प्रदीप नसीन, अरुण ठाकरे, वसुधा गाडगिल, ब्रजेश कानूनगो, किशन शर्मा कौशल आदि ने अपना प्रभावी रचना पाठ किया।

प्रस्तुति : क्षितिज, इन्दौर

कृष्णमंगलसिंह कुलश्रेष्ठ का अमृताभिनंदन

उज्जैन। वरिष्ठ गांधीवादी, शिक्षाविद और समाजसेवी श्री कृष्णमंगलसिंह कुलश्रेष्ठ के जीवन के ८०वें वर्ष में प्रवेश के अवसर पर भारतीय ज्ञानपीठ उज्जैन में आयोजित अमृत महोत्व में मुख्य अतिथि के रूप में वरिष्ठ गांधीवादी डॉ.एस.एन.सुब्बाराव ने कहा कि कर्मयोगी वह होते हैं जो कर्मफल की चिन्ता किये बिना निरंतर समाज हित में कर्म करते रहते हैं। श्री कृष्णमंगलसिंह जी कुलश्रेष्ठ भी एक ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने शैक्षणिक और सामाजिक उत्थान की दिशा में अपना संपूर्ण जीवन समर्पित कर दिया है। ऐसे व्यक्तित्व वर्तमान समाज की आवश्यकता है जो गांधी के विचारों को आज भी अपने

कृतित्व के युवा पीढ़ी तक पहुँचा रहे हैं।

इस अवसर पर शहर की विभिन्न ८० से अधिक संस्थाओं द्वारा श्रीकृष्णमंगल सिंह कुलश्रेष्ठ अमृताभिनंदन किया गया एवं विभिन्न गणमान्य नागरिकों के द्वारा सार्वजनिक अभिनंदन भी किया गया। संभागीय सतर्कता समिति के अध्यक्ष श्री शशिमोहन श्रीवास्तव, अ.भा.कायस्थ महासभा के कार्यकारी अध्यक्ष श्री अशोक श्रीवास्तव, आयुर्वेद महाविद्यालय के पूर्व प्राचार्य डॉ.यू.एस.निगम, वरिष्ठ स्वतंत्रता सेनानी श्री प्रेमनारायण नागर एवं सांई फाउण्डेशन ट्रस्ट के अध्यक्ष के.पी.डोगरा जी ने भी शुभकामना व्यक्त की। समावर्तन हिन्दी मासिक के संस्थापक डॉ.प्रभातकुमार भट्टाचार्य की ओर से समावर्तन के सम्पादक श्रीराम दवे द्वारा भी श्री कुलश्रेष्ठ का अभिनंदन किया गया। इस अवसर पर श्रीकृष्णमंगलसिंह कुलश्रेष्ठ के जीवन चरित्र पर आधारित एक ग्रंथ 'कर्मयोगी कृष्णमंगल' का लोकार्पण भी किया गया। अमृत पुरुष कुलश्रेष्ठजी को लोकार्पित ग्रंथ, अभिनंदन पत्र एवं शाल श्रीफल से सम्मानित किया गया। पश्चात ग्रंथ के सम्पादक मंडल में से उपस्थित सर्वश्री श्रीराम दवे, डॉ.पिलकेन्द्र अरोरा, डॉ.चंदर सोनाने, अक्षय आमेरिया, पुष्कर बाहेती, राजेन्द्र सक्सेना, विनोद बैरागी, अनिल गुप्ता को भी सम्मानित किया गया।

प्रस्तुति : गिरीश पण्डया, उज्जैन

डॉ.सुमन स्मृति व्याख्यानमाला में दो कृतियों का लोकार्पण

उज्जैन। गत दिनों भारतीय ज्ञानपीठ महाविद्यालय, उज्जैन में आयोजित डॉ.शिवमंगलसिंह सुमन स्मृति षोड़श व्याख्यानमाला में वरिष्ठ पत्रकार राजेश बादल ने 'गांधी जी की पत्रकारिता कल और आज तथा माखनलाल चतुर्वेदी पत्रकारिता वि.वि.के कुलपति श्री जगदीश उपासने ने 'मीडिया और भारतीयता' विषय पर सारगर्भित और चिंतनपरक उद्बोधन देकर व्याख्यानमाला को संस्मरणीय बना दिया। इस अवसर पर श्री संदीप कुलश्रेष्ठ द्वारा लिखित पुस्तक 'भारत में प्रिंट, इलेक्ट्रॉनिक और न्यू मीडिया' तथा डॉ.चंदर सोनाने द्वारा लिखित पुस्तक 'देश, समाज और संस्कृति' का विमोचन वरिष्ठ पत्रकार द्वय राजेश बादल एवं श्री जगदीश उपासने द्वारा किया गया। समारोह के मुख्य वक्ता श्री राजेश बादल ने कहा कि श्री संदीप कुलश्रेष्ठ में समय से पार देखने की क्षमता है जो एक पत्रकार का प्रमुख गुण है। सच को समाज के सामने रखने की कला और साहस एक पत्रकार में होना चाहिए जो श्री संदीप कुलश्रेष्ठ में है। ज्ञातव्य है कि श्री संदीप कुलश्रेष्ठ द्वारा लिखित पुस्तक की भूमिका भी श्री राजेश बादल ने ही लिखी है। अतिथि द्वय ने डॉ.चन्दर सोनाने की कृति का भी लोकार्पण किया तथा उन्हें बधाई दी।

व्याख्यानमाला के आरंभ में संस्था की छात्राओं ने सर्वधर्म प्रार्थना प्रस्तुत की। अतिथि स्वागत नगर निगम सभापति श्री सोनू गेहलोत, इंडिया टूडे के पत्रकार श्री महेश शर्मा, टाईम्स ऑफ इंडिया के श्री संदीप वत्स, श्री भूपेन्द्र भूतड़ा, समावर्तन के संपादक श्री श्रीराम दवे, व्यंग्यकार डॉ.पिलकेन्द्र अरोरा, श्री शैलेन्द्र राठी, श्री योगेन्द्र कुल्मी, श्री शैलेन्द्र कुल्मी, श्री अजय पटवा, श्री महेश परियानी आदि ने किया। स्वागत उद्बोधन वरिष्ठ स्वतंत्रता सेनानी श्री प्रेमनारायण नागर ने दिया। कार्यक्रम का संचालन महाविद्यालयीन निदेशक डॉ.गिरीश पण्डया ने किया।

अनंतिम

पिछले अंक में हमने पत्रकारिता के अर्थ और आशय के साथ उसके ऐतिहासिक महत्व और संस्कृति से उसके संबंध को लेकर चर्चा की थी और आजादी के आंदोलन के के दौरान के उन साहित्यकारों का उल्लेख किया था जिन्होंने पत्रकारिता को भाशाई और वैचारिक संस्कार दिए तथा आम जन में विश्वसनीयता पैदा की। ये पत्रकारिता के स्वर्णिम दिन थे।

लेकिन जैसा कि समय हमें बताता रहता है कि अच्छे दिन ज्यादा देर तक नहीं रहते, आजादी के बाद का माहौल लम्बे अरसे तक टिक नहीं सका। विदेशी लूट की जगह देसी लिप्सा और लालच ने ले ली और समाजवादी कल्याणकारी राज्य की स्थापना करने की शपथ लेने वाले देश में पूँजीवादी समूहों ने जल्द से जल्द अमीर होने की महत्वाकांक्षाओं को हर क्षेत्र में आगे बढ़ाया। धीरे धीरे हर प्रकार की, यहाँ तक की साहित्य की पत्र-पत्रिकाओं से भी आर्थिक रूप से निरन्तर सफल और सक्षम होने की अपेक्षा की जाने लगी क्योंकि बाजार का स्वरूप तेजी से बदल रहा था। एकमात्र लक्ष्य पैसा कमाना केन्द्र में आ चुका था। अब ऐसी पत्र-पत्रिकायें आगे बढ़कर अपना स्थान बनाने लगी थीं जो या तो चटखारेदार और तीखे मसालों से भरपूर सत्य घटनाओं की कहानियाँ उत्तेजक और आकर्षक ढंग से पेश कर रही थीं या सनसनीखेज राजनीतिक-सामाजिक समाचार और हैरत-अंगेज भंडाफोड़ में मुब्तिला थीं। इनमें विचार और साहित्य की जगह सिमटने लगी थी और अंततः उन्हें रविवारीय परिशिप्टों की विभिन्न गतिविधियों के बीच अपना आखिरी बसेरा जैसे तैसे मिल पाया, जहाँ से भी कोई बड़ा रंगीन पिज्ञापन उन्हें कभी भी लतियाकर बाहर निकाल फेकता। युवाओं को लुभाने वाली कामुक सामग्री और मदमस्त रंगीन चित्रों के अलावा घर-गृहस्थी, ज्योतिष, फैशन, सट्टा-बाजार, चुटकलों को ज्यादा तरजीह दी गई। फलस्वरूप उत्कृप्ट साहित्य और समाज तथा राजनीति की बेहतर समझ देने वाली पत्र-पत्रिकाओं की संख्या घटने लगी और उनमें से कुछ विलुप्त ही हो गईं कि सार्वजनिक वाचनलयों की पिछली अल्मारियों में भी वे अब नहीं पाई जातीं।

लेकिन इस झंझावात में, इस बात पर खुश हुआ जा सकता है कि हिन्दी अखबारों का राप्ट्रीय स्तर पर प्रभुत्व बढ़ा है। आजादी के बाद कुछ दशकों तक देश में अंग्रेजी भाषा के समाचारपत्र प्रकाशन संख्या में अव्वल नंबर थे। हिन्दी और अन्य भारतीय भाषाओं के अखबारों के प्रति उपेक्षा, उपहास और दयनीयता का रवैया था, लेकिन आज देश में सर्वाधिक बिकने वाले प्रमुख तीन अखबार हिन्दी के हैं जो मैरिट सूची में लगातार अपना स्थान बनाये हुये हैं। उनके ग्राहकों की संख्या भी निरन्तर बढ़रही है। साथ ही दीगर भारतीय भाषाओं के दैनिक और साप्ताहिक समाचारपत्र भी अपने क्षेत्रों में महत्वपूर्ण हुये हैं। उनकी पाठक-संख्या भी तेजी से बढ़रही है। निस्संदेह इसका कारण राजनीति, आर्थिकी और सामाजिक मामलों में लोगों की रूचि और जागरूकता बढ़ना है और भारतीय भाषाओं के अखबार अपने पाठकों को उनके मनपसंद विषयों और मुद्दों पर रोचम और विचारोत्तेजक सामग्री देने में खासे कामयाब हुये हैं।

लेकिन यह तस्वीर का एक रूख है। दूसरा चेहरा गर्व और गौरव पैदा नहीं करता बल्कि कहीं गहरे में आतंकित करता है क्योंकि एक बड़ा खतरा सामने आ चुका है। आधुनिक पत्रकारिता अपने मूल मार्ग से च्युत होकर पथ-भ्रप्ट् हो गई है। दरअसल, बाजारवाद की ताकतें इस कदर हावी हो चुकी हैं कि अब पत्रकारिता की बागडोर संपन्न और शक्तिशाली घरानों और उपक्रमों के हाथों में आ गई है। अखबार और पत्रिकायें 'प्रोडक्ट' बन गई हैं। उनका संचालन बेहद व्यावसायिक तरीकों से होने लगा है। लाभ-हानि के तराजू में उन्हें पूरे समय अपनी उपादेयता सिद्ध करना पड़ती है। संपादकों के दिन पूरे हुये और अब प्रमुख के पद पर प्रबंधक बैठे हैं। बड़ी बड़ी तनख्वाहों और विलासी सुविधाओं पर छोटे-बड़े-मंझोले व्यवसाय-दक्ष कार्मिक दफ्तरों में डटे हैं और इसी तरह के भरे-पूरे दलाल सत्ता के गलियारों और बड़े बाजारों में घूम रहे हैं जिनका एकमात्र काम येन-केन-प्रकारेण धन बटोरना और मालिकों को खुश रखना है। अब पत्रकारिता की नकेल मानवी हाथों में नहीं मशीनों के पंजों में है। फलतः सैद्धांतिकी और आदर्शवाद कूड़े की टोकरी में आखिरी सांसें गिन रहे हैं लेकिन नेम-प्लेट हर तरफ अभी भी उन्हीं की लगाई गई है। पाखंड का यह एक नया रूप सामने आया है। अब पत्रकारिता उच्च आदर्शों और लोक-लुभावन मूल्यों की बातें जोर-शोर से करती है। जनता के प्रति वह अपने दायित्व और मीडिया की रचनात्मक भूमिका की रह रहकर बांग देती है और भीतर ही भीतर उनके हाथ राजनैतिक दलों, औद्योगिक घरानों और माफिया के साथ सांठ-गांठ में सने हुये हैं। अपने मार्मिक संपादकीयों में जिन पूँजीवादी घरानों के शोषण और बढ़ती गरीबी का रोना नियमित रूप से रोया जाता है, उन्हीं की कम्पनियों और माफियों के विशाल विज्ञापन मुखपृप्ठ पर छापे जाते है। एक किस्म की अद्भुत नूरा कुश्ती देश के रजत-पट पर चल रही है। एक ऐसा अय्याश मध्य वर्ग केन्द्र में आ गया है जो हर प्रकार की लूट में सक्रिय है और अब तक पूजित मूल्यों को उसने लात मारकर घर से हँकाल दिया हैं। यही वर्ग अब पत्रकारिता का 'टारगेट' है और इसी को फोकस में रखकर जनतंत्र के ढोल पर आज की पत्रकारिता नाच रही है और नचा रही है। उन्मत्त मध्यवर्ग 'इंडिया' के शीघ्रातिशीघ्र विश्वशक्ति बनने के ख्याली नशे में चूर है। देश में जातिवाद, प्रांतवाद, भाषावाद, साम्प्रदायिकता का नंगा नाच चल रहा है। असमानता, गरीबी और शोषण की धूम मची है। सरकार और जनता के धन को हर प्रकार के हथकंडों से लूटा जा रहा है। भारत की दुर्दशा के बारे में पत्रकारिता मगरमच्छ के आंसू बहाती मौज उड़ा रही है। जनता के जागरण का दायित्व कपूर की तरह उड़ गया है और आमरण अमर्यादित कदाचरण की बू पत्रपत्रिकाओं के भीतरी-बाहरी पन्नों से हर सुबह आने लगती है।

यह तय हो चुका है और कोई भोला-भाला भी यकीन नहीं करेगा कि पूँजीवाद और उसके द्वारा पोषित बाजारवाद के इस सरल समय में जब सारी चीजें अपने असली चेहरों के साथ साफ-साफ नजर आ रही हैं, तब बड़े अखबारों और पत्रिकाओं से पत्रकारिता के आदर्श और जनपक्षधर आचरण की अपेक्षा की जा सकती है। किसी भी बुनियादी परिवर्तन की उनसे उम्मीद रखना निरी मूर्खता और आत्म-प्रवंचना है। देश की सामूहिक लूट के अलावा, पत्रकारिता के इस व्यवसायीकरण के और भी कई खतरे सामने आये हैं। अपसंस्कृति का जितना भीषण विस्तार इन दिनों पत्रकारिता के हाथों हुआ है, उसकी मिसाल इतिहास में नहीं मिलती, शायद भविप्य में भी न मिल सके। युवाजन की पसंद की आड़ में शर्मनाक विवरण और कामोपद्दीपक तस्वीरें धड़ल्ले से छापी जा रही हैं। हुसैन के चित्रों पर बवाल मचाने वाले भारतीय संस्कृति प्रेमी संगठन इस अपसंस्कृति के प्रदर्शन पर आंख-कान दबाये चुपचाप मठों में दुबके हैं। नारी-शक्ति की पावनता और गरिमा का नारा बुलंद करने वाले महिला संगठनों की बोलती बंद है, क्योंकि वे ठीक-ठीक जानते हैं कि मीडिया से टकराना समझदारी नहीं है, आखिर उनके मामूली प्रदर्शनों और निरर्थक बयानों को मीडिया ही प्रमुखता से छापकर महिमा-मंडित करता है। ऐसी ही बुद्धिमत्ता अमूमन लगभग सभी बुद्धिजीवियों में गहराई से पाई जाती है।

पत्रकारिता के कुछ अहम मुद्दों पर हम अगले अंक में फिर बात करेंगे। उम्मीद करता हूँ कि हमेशा की तरह आप तरो-ताजा मिलेंगे। आपके अच्छे समय के लिए हम दुआ करते हैं। आमीन।

मोबाइलः 94250-14166

Follow us on /RNTUniv www.rntu.ac.in

Rabindranath TAGORE UNIVERSITY™

MADHYA PRADESH, BHOPAL *(Formerly known as AISECT University)*

AN AISECT GROUP UNIVERSITY

Approved by : AICTE, NCTE, BCI, INC, M.P. PARAMEDICAL COUNCIL | Recognized by : UGC | Member of : AIU, ACU

Where **aspirations** become **achievements!**

nirf
INDIA RANKINGS 2017
(Ministry of Human Resources and Development, Govt. of India)
Among all Central, State, Private and Deemed universities

Ranked amongst Top 20 Engineering Universities in India — competition success review

Ranked amongst India's Top 30 Private Universities 2018 — INDIA TODAY

Awarded ★★★★ Rating for Best University of India 2018 — CAREERCONNECT

BEST ENGG. COLLEGE WITH AAA RANKING 2018 — करियर्स 360

Recognised as one of the Leading Private Universities of India — OUTLOOK

Ranked Number 2 in Madhya Pradesh 2018 — competition success review

COURSES OFFERED 2018-19

Engineering & Technology | Management | Arts | Commerce Computer Science & IT | Paramedical | YogaScience | Agriculture | Mass Communication | Law | Nursing | Education | Ph.D. & M.Phil. in selected subjects through separate entrance tests

AWARDS AND ACCOLADES

- Most Innovative University of Central India" by News 18
- RNTU awarded Madhya Pradesh Gaurav Samman 2018
- RNTU Awarded as India's first Skill based University by Career Connect Magazine 2018
- ASSOCHAM INDIA Excellence in Education, Training & Development Award 2018
- World Education Summit 2017 & 2017 (Dubai)

A UNIT OF AISECT™ GROUP OF UNIVERSITIES
India's Leading Higher Education Group

CHHATTISGARH | MADHYA PRADESH | JHARKHAND | BIHAR

Contact us :
9893350135, 8085384458, 9826812783

UNIVERSITY CAMPUS : Bhopal-Chiklod Road, Near Bangrasia Chouraha, Bhopal, MP, India, Ph.: 0755-6766100, 6766113
City Office : 3rd Floor, Sarnath Complex, Board Office Square, Shivaji Nagar, Bhopal - 462016,
Ph.: 0755-4289606, 8109347769, Email : info@rntu.ac.in